सपादक
श्री गोपालप्रसाद व्यास

लेखक
श्री सन्तप्रसाद टंडन
श्रीमती रानी टंडन

हमारे दो शब्द

वावूजी की जीवनी लिखने मे हमारे सामने कई कठिनाइया थी। वावूजी ने कभी नियमित रूप से अपनी डायरी नही रखी जिससे हमे उनके क्रिया-कलापो की जानकारी क्रमानुसार ज्ञात हो सकती। उनकी आरभ-काल की डायरियां सभवत उनके जेल जाने-आने मे अस्त-व्यस्त हो गई। उनके पास कभी कोई ऐसा सहायक भी आरभ से अत तक नही रहा जो उनके समस्त कार्यों का विवरण लिख कर तथा उनके पत्रो और वक्तव्यो आदि को क्रमवद्ध प्रवधित कर रखता। हम भाइयो मे से भी उन्होने कभी किसी को अपने साथ इन कार्यों के लिए नही रखा। जव कभी हम लोग उनके कार्यों मे सहायता देने की इच्छा भी प्रकट करते तो वे उदासीनता ही व्यक्त करते थे जिससे हम लोगो को कभी उनके पत्रो तथा पत्रावलियों को देखने ओर नियमित क्रम से सुरक्षित रखने का अवसर नही मिला। इसके विपरीत उनकी लिखने-पढने की सामग्री सदा अस्तव्यस्त ही पडी रहती थी। उनके पास लोगो की भीड लगी रहती थी। अनेक ने उनसे पुस्तकें ली और फिर कभी वापस नही की। ऐसा लगता है कि उनके महत्व के पत्र आदि भी घर से उनके कुछ सहायक तथा आने-जाने वाले अन्य लोग उठा ले गए। वावूजी के अतिम महीनो मे उनके पास लोक सेवक मंडल के एक सदस्य, लक्ष्मीनारायण सिंह, रहते थे जो उनके पत्रो के उत्तर उनके निर्देश के आधार पर लिखते थे। वावूजी की समस्त पत्रावलिया लक्ष्मीनारायण सिह के पास ही रहती थी। यह सव सामग्री वह लोक सेवक मडल की स्थानीय शाखा के पुस्तकालय मे रखते थे। वावूजी के निधन के वाद यह सव सामग्री लोक सेवक मडल के मत्री दिल्ली से आकर ले गए और वाद मे हमे ज्ञात हुआ कि इस सवको राष्ट्रीय अभिलेखागार (National Archives) में उन्होंने भेज दिया। इस प्रकार घर के हम लोगो को न तो वावूजी की पुस्तकें मिली और न उनके पत्र तथा पत्रावलिया। राष्ट्रीय अभिलेखागार मे जाकर देखने पर पता चला कि उनके वहुत से पत्र आदि वहा पर हैं किंतु वे क्रमबद्ध अभी तक प्रवधित नही किए जा सके है। यदि उन सवको क्रमवद्ध

बधित कर लिया जाय तो सभवत उनके जीवन-कार्यों से सबधित कुछ अधिक महत्त्व की जानकारी प्राप्त हो सके।

समय-समय पर बाबूजी के जीवन के सबध की जो कुछ सामग्री हमने एकत्र की थी वह सब भी हमसे श्री अलगूराय शास्त्री माग कर सन् १९५५ मे यह कह कर ले गए थे कि बाबूजी की जीवनी लिखने का काम लोक सेवक मडल ने उनके सुपुर्द किया है और वह इस सामग्री का उस कार्य के लिए उपयोग कर हमे वापस कर देंगे। किंतु न तो उन्होने उनकी जीवनी लिखी और न वह सब सामग्री ही हमे वापस की। इस प्रकार जो कुछ सामग्री हमने सन् १९५५ तक सकलित की थी उससे भी हाथ धोना पडा।

सन् १९६२ मे बाबूजी के निधन के पश्चात् कुछ लोगो ने हमसे आग्रह किया कि हम ही उनकी जीवनी तैयार करें। अत हम दोनो ने पुन नये सिरे से सामग्री जुटाने का काम आरभ किया। परिवार के सबध की बातें तो हमे अपनी मा से तथा कुटुब के वरिष्ठ सदस्यो से ज्ञात हो गई किंतु विभिन्न क्षेत्रो मे उन्होने जो-जो कार्य किए थे उन सबका विवरण ज्ञात करने मे बहुतकठिनाई उठानी पडी। हिंदी प्रदीप, अभ्युदय, भारत, लीडर, अमृत पत्रिका, हिंदुस्तान टाइम्स, स्वतत्र भारत आदि समाचारपत्रो की पुरानी फाइलो से, विधान सभा, लोक सभा तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन के कार्य विवरणो से और काग्रेस कार्यालय मे सुरक्षित पत्रावलियो से जो सामग्री मिल सकी उस सबको एकत्र करने की चेष्टा हमने की। बाबूजी के जो मित्र और सहयोगी जीवित थे उनसे भी जो जानकारी प्राप्त की जा सकी प्राप्त की गई। इस प्रकार कई वर्षों के प्रयत्नो के फलस्वरूप हम जो कुछ सामग्री सकलित कर पाए उसके आधार पर बाबूजी की यह जीवनी हमने तैयार की है। अपने जीवन के अतिम वर्षों मे जब बाबूजी रोगग्रस्त होने के कारण इलाहाबाद मे ही रह रहे थे और हम लोग उनके पास बैठते थे तब उनके जीवन की अनेक महत्त्व-पूर्ण बातें हमने उनसे ही पूछकर ज्ञात की थी। दो-एक बार हमने उनसे यह भी इच्छा व्यक्त की थी कि वह स्वय बोलकर हमे अपनी आत्मकथा लिखा दें अथवा कम से कम विभिन्न घटनाओ पर अपनी प्रतिक्रिया ही लिखा दें, किंतु उन्हे यह सब रुचिकर नही लगा। एक कठिनाई यह भी थी कि उनके अधिकाश भाषण मौखिक ही होते थे, लिखित बहुत ही कम। इस प्रकार समाचारपत्रो मे उनके भाषण जिस रूप मे छपे उन्ही से हमने सहायता ली। जो तथ्य हमने दिए हैं वे सब प्रामाणिक हो इस बात का पूरा ध्यान हमने रखा है।

बाबूजी के सबध मे प्राय आधारहीन बातें भी लोगो ने लिखी हैं। एक सज्जन ने एक बार यह लिखा था कि बाबूजी ने अपने किसी पुत्र के घर भोजन इसलिए नही किया क्योकि उसके यहा काले बाज़ार से अन्न मगाया जाता था। बाबूजी के सभी पुत्रो के सामने उनके जीवन का आदर्श रहा है और सभी ने यथाशक्ति यह

चेष्टा की है वे उसी नैतिकता का निर्वाह करें जिसकी शिक्षा उन्हे वाबूजी से प्राप्त हुई थी। उनके किसी पुत्र ने कभी अनैतिकता का मार्ग नही ग्रहण किया, काले बाज़ार से अन्न खरीदना तो दूर की बात है। हम सभी भाई उनके द्वारा दिखलाए शुद्ध मार्ग का ही अनुसरण करने की चेष्टा करते रहे हैं। अपने स्वार्थ के लिए कभी किसी ने न तो किसी राजनीतिक नेता की सहायता की याचना की और न गलत मार्ग से कोई लाभ उठाने का यत्न किया। अपनी-अपनी योग्यता के आधार पर तथा अपने-अपने भाग्य से जो कुछ मिला उसी मे हम लोगो ने सतोप किया।

इस जीवनी को तैयार करने मे हमे अपने कुटुव के वरिष्ठ सदस्यो से तथा वाबूजी के समकालीन अनेक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओ से बड़ी सहायता मिली है। हम उन सबके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं। श्रद्धेय वियोगी हरि तथा श्रद्धेय डा० वाबूराम सक्सेना ने आदि से अन्त तक पाडुलिपि को ध्यान से देखा और अपने वहुमूल्य सुझाव दिए। हरिजी ने तो इसकी प्रस्तावना भी लिखी है। इन दोनो का ही वाबूजी से वहुत निकट का सवध रहा था और हरिजी तो एक प्रकार से हमारे परिवार के ज्येष्ठ सदस्य के रूप मे रहे हैं। इन दोनो के प्रति आभार प्रदर्शन करना तो औपचारिकता मात्र लगेगी। इनके आशीर्वाद पर तो हमारा अधिकार रहा है और हमे वह सदा मिलता भी रहा है। दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन के महामत्री श्री गोपालप्रसाद व्यास के प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होने इसकी पाडुलिपि को पूरा सुना और अपने अमूल्य सुझाव दिए तथा साथ ही सम्मेलन की ओर से इस जीवनी को प्रकाशित करने का भार लिया। दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन ने ही वाबूजी को सन् १९६० मे अभिनदन ग्रथ भी भेंट किया था। यह भी एक अच्छा सुयोग है कि इसी सस्था से उनकी जीवनी भी प्रकाशित हो रही है। व्यासजी की वाबूजी के प्रति जो श्रद्धा और उनके हिंदी कार्य के प्रति जो निष्ठा रही है उसी से प्रेरित होकर हमने इस पुस्तक को दिल्ली सम्मेलन को समर्पित किया है। हमारा यह विश्वास है कि पुस्तक मे चित्रित वाबूजी का जीवन-वृत्त यद्यपि सक्षिप्त है पर पूर्णत प्रामाणिक है।

वाबूजी के जीवन-वृत्त से पाठको को स्पष्ट हो जायगा कि किन आर्थिक तथा पारिवारिक कठिनाइयो का सामना करते हुए उन्होने देश और समाज-सेवा का कार्य किया। किसी भी परिस्थिति मे वह अपपे सकल्प से विचलित नही हुए।

'पुनर्वसु'
१५, वैंक रोड, इलाहावाद-२

संतप्रसाद टंडन
रानी टंडन

प्रस्तावना

स्वभाव मे खरापन, टेक पर अड जाना, अपनाये हुए सिद्धात के साथ किसी भी प्रकार का समझौता न करना, ऊपर से कठोरता किंतु अतर मे मृदुता, नेत्रो मे तेजस्विता, वाणी मे ओजस्विता और दृढता तथा चरित्र मे प्रामाणिकता, करुणा और निर्मलता—यह रेखाचित्र है एक ऐसे राष्ट्र-पुरुप का जिसका स्मरण करते हैं, तो क्षणमात्र के लिए ही सही, हृदय-पटल पर जैसे पुण्य-कण विखर जाते हैं। भारत-राष्ट्र के उत्तम पुरुषो मे जिसकी गणना सदा होती रहेगी, वह उत्तम पुरुष था पुरुषोत्तमदास टडन।

टडनजी वस्तुत त्यागमूर्ति थे, नीतिनिष्ठ थे और धर्मपरायण थे। यही कारण है कि वे विराट् राष्ट्रीयता अर्थात् मानवता के प्रतीक वन गए थे। स्वार्थ की गध उन्हे छू नही गई थी। जीवन उनका समर्पित हो गया था। तथाकथित राजनीति उनके समीप जाते हुए झिझकती थी। जव और जहा भी वे जाते, उनके तप पूत जीवन से कुछ-न-कुछ प्रेरणा मिलती थी।

सन् १६१८ से लेकर उनके अतकाल तक मुझे टडनजी के सम्पर्क मे रहने का सद्भाग्य मिला था। कितने ही सस्मरण हठात् सामने आ जाते हैं। एक-के-वाद दूसरी स्मृति आखो के आगे उतर आती है। स्मृतिया इस प्रकार ओतप्रोत हो गई है कि उनका अलग-अलग करना कठिन लगता है। सभव है कि अति परिचय शायद ऐसा न करने देता हो। स्वीकार करता हू कि मैं स्वभाव से भावुक रहा हू, इसलिए समीक्षक वन नही पाया हू। समीक्षा मे गुणो के साथ दोषो का भी दिखाना आवश्यक माना जाता है। गुण-दर्शन स्वभाव मे रहने के कारण यदि महापुरुपो के दोपो की ओर दृष्टि न जाती हो, तो देखने वाले का क्या दोष? भगवान् वुद्ध की एक गाथा के अनुसार न तो कोई ऐसा हुआ, न कोई ऐसा होगा और न ऐसा कोई विद्यमान है, जो सर्वथा निंदित हो अथवा प्रशसित। टडनजी इसके अपवाद कैसे हो सकते थे? उनकी भी किसी-न-किसी वात को लेकर कभी-कभी आलोचना की जाती थी, पर सतुलन उसमे वहुत कम रहता था। भारत की मिट्टी के साथ जनमी सस्कृति के प्रति उनकी जो निश्छल प्रीति थी उसने उन पर एक 'साप्रदायिक व्यक्ति' होने तक का आरोप लगा दिया था। अफवाह यहा

तक फैला दी गई थी कि टंडनजी जनसघ के अध्यक्ष होने जा रहे है। इसपर उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा था कि, 'मेरे जनसघ का सभापतित्व करने की बात एकदम अनर्गल है। काग्रेस के वर्तमान क्रम से सतुष्ट न होते हुए भी जनसघ मे सम्मिलित होने का विचार मैंने कभी नही किया। यह बात बिल्कुल निराधार है।'

टडनजी ऐसे आदमी नही थे कि उनके मन मे कुछ और हो और जवान पर कुछ और। वे किसी दाव-पेंच और छिपाव-दुराव से काम नही लेते थे। राजनीति के क्षेत्र मे वहुतो की तरह वे अपने विचारो पर 'मुलम्मा चढाना' नही जानते थे। यह सही है कि वड़ो-वडो के साथ उनका 'मतभेद' हो जाता था, पर 'मनभेद' कभी नही। महात्मा गाधी को वे 'प्रात स्मरणीय' कहकर याद किया करते थे, परतु अहिसा के वारे मे उनके साथ भी टडनजी का कुछ-कुछ मतभेद था।

यह वात जग-जाहिर है कि टडनजी हिंदी के परमभक्त थे। लेकिन उनकी यह भक्ति विशुद्ध राष्ट्रीयता पर अवलवित थी। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को अपने रक्त से सीचते हुए भी एक अवसर पर उन्होने कहा था कि 'यदि सम्मेलन राष्ट्र के विरुद्ध कोई काम करेगा, तो उसमे अपने हाथ से मै आग लगा दूगा।' हिंदी के प्रति उनका प्रेम राष्ट्रीयता का एक अभिन्न अग था। टडनजी को मात्र 'हिंदी का आदमी' कहना उनके प्रति अन्याय है।

संस्कृति और साहित्य की जड़ें टडनजी की दृष्टि मे वहुत गहरी थी। वे मानते थे कि राष्ट्र की निर्मिति और उसकी स्थिरता उसकी अपनी सस्कृति और अपने साहित्य के उपादानो से होती है। असकीर्ण सस्कृति और सात्विक साहित्य के दर्पण मे टडनजी ने अपने-आपको सदा देखा व परखा था। देशी एव विदेशी साहित्य-रत्नो के वे अच्छे पारखी थे। किंतु सत-वाणी पर इतने अधिक मुग्ध थे कि उसकी साखिया और सवद अपने भाषणो मे वे वडे कौशल से जड़ देते थे। कहना चाहिए कि सत्यमूलक सत-वाणी की बुनियाद पर उनका जीवन अडिग खड़ा था। इस राष्ट्र-रथ को भी वे सत्य के पथ पर चलते हुए देखना चाहते थे। उनके ऐसे विचारो को कई तथाकथित राजनीतिज्ञो ने गलत या सनकभरा समझा। यदि आज वे जीवित होते तो उन्हे और भी ज्यादा गलत समझ लिया गया होता। असल वात यह है कि नीति को कूटनीति, सचाई को वनावट और त्याग को स्वार्थपरता या तो देखना पसद नही कर रही, या फिर अपने ताने-वाने से वुना हुआ काला पर्दा नैतिकता, सत्य और त्याग पर कौशलपूर्वक डाला जा रहा है। मगर काल ऐसे पर्दे को हसकर फाड देता है और महापुरुषो की कीर्ति जगमगा उठती है। हमारा विश्वास है कि राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन की कीर्ति राष्ट्र-पट पर सदा स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगी और उससे हमे उत्सर्ग और लोककल्याण की प्रेरणा मिलती रहेगी।

राजर्षि का सारा जीवन सत्य के प्रति, राष्ट्र के प्रति और भारतीय सस्कृति

के प्रति सर्वभावेन समर्पित था। उनकी स्वय की रची निम्न पक्तिया सिद्ध करती हैं उनके आत्म-समर्पण को —

भाग्यवान हू इस ही मे,
यह विजन कुटीर करू सुरभित,
नही तनिक भी इच्छा मुझको—
मधुकर - मडित आरामो की।
दुर्बल अग, स्वल्प सौरभ,
मम कामस्थल यह कोना है,
इसे सजाऊ, इसे रिझाऊ,
केवल यही कामना है।
यही लालसा हिय मे इसका
एक दिन विध गलहार वनू,
अपना सब सौरभ समाप्त कर
रज - कण मे वस वास करू।

राजर्षि टडन के पुनीत जीवन पर, और उनके विविध कार्यों पर यदा-कदा जो लिखा गया, और जो कुछ कहा गया वह पर्याप्त नही है। जीवन-चरित लिखने का भी प्रयास हुआ था, पर वह पूरा नही हो सका। उनकी जीवनी का अभाव हम सवको खटक रहा था। यह देखकर बडा हर्ष होता है कि टडनजी के सुपुत्र डॉक्टर सन्तप्रसाद तथा उनकी पत्नी रानी टडन ने खटकने वाली इस कमी को दूर कर दिया है। वडे परिश्रम और खोज के साथ यह जीवनी लिखी गई है। स्वाभाविक भक्ति-भावना के साथ-साथ तथ्यो और तत्कालीन परिस्थितियो के विश्लेषण से काम लिया गया है। लेखको ने अपने पूज्य बावूजी का सच्चे अर्थों मे यह श्राद्ध किया है, पितृ-ऋण से बहुत-कुछ वे उऋण हो गये हैं। इसमे सदेह नही कि यह ग्रथ बडा लोकोपयोगी होगा, और जीवन-चरित साहित्य मे इसे आदर का स्थान मिलेगा।

दिल्ली-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन इस ग्रथ को प्रकाशित कर रहा है। उसका यह एक ऐसा कार्य है, जिसे अव तक किसी भी हिंदी-सस्था ने हाथ नही लगाया था। अत उसका यह प्रकाशन-कार्य सर्वथा स्तुत्य और अनुकरणीय है।

वियोगी हरि

सम्मेलन, न्यास और यह पुस्तक

दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना टडनजी के आशीर्वाद से हुई है। वह चाहते थे कि भारत की राजधानी हिंदी का भी एक सुदृढ केन्द्र वने। वह देश भर में जिला-स्तर पर हिन्दी केन्द्रो की स्थापना चाहते थे। दिल्ली के सम्मेलन को वह वहुत महत्त्व देते थे। उनका निर्देश था कि हम केवल प्रादेशिक स्तर पर ही कार्य न करें केन्द्रीय स्तर पर भी हिंदी के लिए अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते रहें। हमने उनके आदेश का यथासभव पालन करने की चेष्टा की है। वृहतर दिल्ली मे इस समय हमारे ३१ मडल हैं। इनमे वने हुए सम्मेलन के लगभग ५ हजार सदस्य है। ये सभी मडल टडनजी की अभिलाषा के अनुसार भारत की राजधानी मे इस समय हिंदी की पताका को दृढता से धारण किए हुए हैं।

जव टंडनजी रोगशय्या पर थे, तव उन्होने इन पक्तियो के लेखक को अपने पास वुलाया और भरे हुए गले से कहा—मैं हिंदी का और हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का भविष्य डगमगाता हुआ अनुभव कर रहा हू। अव कुछ ही दिन का जीवन शेष है। आपसे अनुरोध है कि दिल्ली से हिंदी के काम को दृढता से चलाते रहना। दिल्ली मे हिंदी चलेगी तो देश मे हिंदी चलेगी। आपकी तो नियमावली अलग है। पजीकरण भी अलग है। अगर आवश्यकता पडे और दिल्ली की प्रादेशिक सीमाओ को छोडना भी पडे तो संकोच न करना। मुझे दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन (तव दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन का नाम यही था) से वडी आशाए हैं।

मैं पशोपेश मे पड गया। मुझे चुप देखकर राजर्षि की आखें गीली हो आई और मैं भी भावविन्हल हो उठा। मैंने स्वीकृति मे सिर नीचे झुका लिया। लेकिन वावूजी पक्का वायदा चाहते थे। उन्होने अपना शरीर छूकर मुझसे हा करने को कहा। मैंने उनके घुटने छूकर वचन दिया और अपने आदर्श और कर्मठ साथियो के सहयोग से इसे यथाशक्ति निवाह रहा हूं। इस समय दिल्ली हिंदी साहित्य, सम्मेलन का काम सातो हिंदी राज्यो मे फैला हुआ है। दिल्ली को छोडकर शेष ६ राज्यो के प्रादेशिक सम्मेलन अव दिल्ली के साथ सम्वद्ध हैं और नियमावली मे सर्वसम्मति से परिवर्तन करके पुराना दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन अव दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन वन गया है। यह परिवर्तन केवल

नाम के लिए ही न हो, इसके द्वारा हिंदी प्रदेशो मे हिंदी के लिए स्वस्थ रचनात्मक कार्य हो सके इसकी चेष्टा मे हम लोग लगे हुए हैं। हिंदी राज्यो की समस्त हिंदी सस्थाए इस कार्य मे हमारे साथ हैं। जहा तक प्रयाग के हिंदी साहित्य सम्मेलन का सम्बन्ध है, वह राजर्षि टडनजी का पवित्र हिंदी स्मारक है और हमारी मातृ सस्था है। हमारी प्रभु से यही प्रार्थना है कि वह शीघ्र-से-शीघ्र अपने पुराने तेज को धारण करे और समस्त हिंदी जगत का नेतृत्व करे।

दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन ने यो तो अनेक उल्लेखनीय कार्य किए है, परन्तु उन सवमे राजर्षि अभिनदन ग्रथ का प्रकाशन और प्रयाग पहुच कर राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी द्वारा राजर्षि को उसका ऐतिहासिक समर्पण तथा राजधानी मे श्री पुरुषोत्तम हिंदी भवन न्यास समिति का निर्माण ऐसे कार्य हैं जिनका इस पुस्तक से सीधा सबध है। जव टडनजी को ग्रथ भेंट किया गया तो उसके भारी भरकम आकार को देखकर उन्होने कहा था कि इसका एक छोटा सस्करण निकलना चाहिए। उसी आज्ञा के परिपालन मे उनके आदर्श और कर्मठ जीवन पर यह पुस्तक प्रकाश मे आ रही है। उनके सुयोग्य पुत्र और पुत्रवधू ने प्रामाणिकता के साथ वर्षों के परिश्रम से इसे तैयार किया है। यद्यपि परिवार के जनो द्वारा ऐसे अवसरो पर मोह का त्याग और अपने पूज्य के प्रति निसग भाव रखना प्राय कठिन हो जाया करता है, फिर भी इस ग्रथ के लेखक द्वय ने टडन जी के प्रति श्रद्धाभाव का निर्वाह करते हुए जीवनी-लेखन की प्रामाणिकता को वनाए रखा है। इसकी पाडुलिपि को आदरणीय वियोगी हरि तथा डा० बावूराम सक्सेना ने ध्यान से देखा है और मैंने इसे कई बार सुनकर स्थान-स्थान पर कुछ सशोधन-परिवर्द्धन करने का परामर्श श्रीमती रानी टडन को दिया है। इसका सपादन करते समय मैंने इस वात का ध्यान रखा है कि कोई बात या घटना अथवा शब्द यथासभव इस ग्रथ मे ऐसे न आने पाए जो टडनजी की प्रवृत्ति के अनुकूल न हो। मेरे विचार से यह पुस्तक टडनजी के जीवन पर एक ऐसा प्रामाणिक दस्तावेज वन गई है' जो स्वतत्रता सग्राम, राष्ट्रभाषा और राजभाषा के लिए किए गए आदोलनो और कार्यों तथा टडनजी के व्यक्तिगत जीवन, रचनात्मक कार्यों और आदर्शों का सही रूप मे परिचय करा सकेगी। यह पुस्तक केवल एक महापुरुष की उल्लेखनीय जीवनी ही नही है, अपितु राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक एव भाषायी कार्यकर्ताओ और नेताओ के लिए कर्मगीता भी है। अगर पाठको ने इस रूप मे इसे ग्रहण किया तो श्री पुरुषोत्तम हिंदी भवन न्यास समिति, जिसकी उदार सहायता से इस ग्रथ का प्रकाशन हुआ है, अपने को कृतकृत्य अनुभव करेगी।

अन्त मे एक वात और। श्री पुरुषोत्तम हिंदी भवन न्यास, जो दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा गठित किया गया है, उसका प्रमुख उद्देश्य राजधानी मे टडनजी के नाम पर पुरुषोत्तम हिंदी भवन का निर्माण करना है। इसके लिए भूमि

आवटित हो चुकी है। उसको क्रय करने के लिए रुपया भी जमा करा दिया गया है। भूमि पर कब्जा मिलने मे कुछ सरकारी अडचनें हैं। जैसे ही वे दूर हुई दिल्ली मे टंडनजी का एक भव्य स्मारक बनते देर नही लगेगी। दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन इस ग्रथ के प्रचार और बिक्री का प्रबध करेगा, लेकिन इसकी समस्त आय श्री पुरुषोत्तम हिंदी भवन न्यास समिति को दे दी जाएगी। इसलिए हिंदी प्रेमियो का यह कर्तव्य है कि इस पुस्तक की बिक्री मे वे जितना भी योगदान दे सकते हो, अवश्य देकर इस पुण्य कार्य के भागी बनें।

इसी १ अगस्त १९८१ से राजर्षि टडनजी के शताब्दी समारोहो का शुभारभ हो रहा है। यह पुस्तक उसी कडी मे श्रद्धाजलि का पहला पुष्प है। हम आशा करते हैं कि शताब्दी के आयोजनो मे हमारे देशवासी इसी प्रकार के सहस्राधिक पुष्प राजर्षि की स्मृति मे अवश्य अर्पित करेंगे, जिससे राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के लिए समर्पित साधुमना टडनजी की ज्ञानज्योति युग-युग तक हमारे पथ को आलोकित करती रहे।

दिनाक ७ जुलाई, १९८१

गोपालप्रसाद व्यास
सपादक
महामत्री श्री पुरुषोत्तम हिंदी भवन न्यास समिति
एव दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन

पुरुषोत्तमदास टंडन मेरे पुराने साथी हैं। हम वर्षो तक साथ-साथ काम करते रहे हैं। मेरे जैसे ही वह ईश्वर के भक्त हैं।

—महात्मा गांधी

रार्जाष टंडन जी की विविध सेवाओं को कौन नही जानता? पर उन्होने जितनी सेवाएं की, उन सबमे मेरी निगाह मे बड़ी सेवा यह है कि जो नैतिक मूल्य उन्होंने माने, उनपर वह हर हालत मे डटे रहे। यह गुण इन दिनो कुछ दुर्लभ हो गया है।

जय जगत
—विनोबा भावे

जो भी व्यक्ति टंडनजी के सम्पर्क मे आए, सबने उनसे कुछ-न-कुछ सीखा। यह महापुरुषो की निशानी है। जो उनसे मिले, लेकर गए। हमने भी उनसे लिया, जिससे दिल और दिमाग की दौलत बढी। वह ऐसे व्यक्ति हैं, जो अपने सिद्धान्तो पर अटल स्तम्भ की तरह डटे रहते हैं।

—जवाहरलाल नेहरू

क्रम

परिवार का परिचय

इस देश मे समय-समय पर दूसरे देशो से आर्य जातिया आयी और उन्होने यही अपना निवास स्थान वनाया। इतिहासज्ञो का कहना है कि खत्री जाति ग्रीस देश से आकर पजाव मे वसे आर्यों की एक शाखा है। सिकदर के आक्रमण के वाद समय-समय पर ग्रीस से आये आर्य लोग पजाव तथा अफगानिस्तान मे धीरे-धीरे वमने लगे थे। इन्ही को खत्रियो का मूल वशज माना जाता है। पजाव प्रदेश मुख्य रूप से खत्रियो का गढ रहा है और यही से खत्री समाज भारत के दूसरे प्रदेशो मे धीरे-धीरे फैला है।

खत्रियो की अनेक उपजातियां हैं। हमारी वशगत उपजाति टडन है। खत्री समुदाय अपने को सूर्यवशी क्षत्रियो का वशज मानता है। वावूजी ने हम लोगो को वतलाया था कि सस्कृत, प्राकृत और हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान् प० गोविंद नारायण मिश्र के अनुसार टडन शब्द 'मार्तण्ड' शब्द का अपभ्रश है। मार्तण्ड सूर्य का पर्यायवाची है और इससे भी टण्डन खत्रियो के सूर्यवशी होने के विश्वास की पुष्टि होती है।

हमारे पूर्वज कहा के मूलनिवासी थे और उनका क्या इतिहास है इसकी पूरी जानकारी हमे नही है। किंतु ऐसा अनुमान है कि वे किसी समय पजाव से ही आकर इस प्रदेश मे वसे होंगे। इतना हमे अवश्य ज्ञात है कि पाच-छ पीढी पूर्व हमारे पूर्वज इलाहावाद जिले के आलमचन्द गाव मे रहते थे। यह स्थान इलाहावाद नगर से लगभग ५० किलोमीटर दूर शुजातपुर रेलवे स्टेशन के पास है।

वावूजी के प्रपितामह चुन्नीलालजी* थे और चुन्नीलालजी के पिता सिद्धगोपालजी थे। इन दोनो के सवध की विस्तृत जानकारी तो हम लोगो को

---

* वशवृक्ष परिशिष्ट १ में दिया गया है।

नही है, किंतु इतना ज्ञात है कि ये अधिकतर गाव मे ही रहते थे। चुन्नीलालजी के पाच पुत्र थे। इनकी चतुर्थ सतान फकीरचन्दजी बाबूजी के पितामह थे। फकीरचन्दजी रेलवे मे क्लर्क थे और ४०) रु० मासिक वेतन पाते थे। इनकी शिक्षा बहुत कम थी, किंतु अनुभव से अग्रेजी का भी साधारण ज्ञान इन्होंने प्राप्त कर लिया था। ठीक ठीक तो नही पता कि किस समय ये लोग आलमचन्द छोड़कर इलाहाबाद नगर आए किंतु अनुमानत फकीरचन्दजी की नौकरी लगने पर ही आए होगे। यहा आने पर इन लोगो ने इलाहाबाद नगर के खुशहाल पर्वत अचल मे रहना आरम्भ किया। धीरे-धीरे फकीरचदजी के अन्य भाई भी यहा आकर रहने लगे और इस समय प्राय. सभी के वशज यहा है। इस वश का सबसे पुराना घर आज भी खुशहाल पर्वत मे है और अब भी उसमे इस वश की दूसरी शाखाओ के परिवार रहते है। परिवार मे सदस्यो की सख्या बढने पर इस पुराने छोटे घर मे निवास की कठिनाई होने लगी, तब बाबूजी के पितामह फकीरचन्दजी ने इस पुराने मकान के समीप अहियापुर मे एक खाली पडी भूमि को खरीद कर उस पर अपने परिवार के लिए अलग मकान बनवा लिया और अपने तीनो पुत्रो तथा उनके परिवारो सहित इस नये घर मे रहने लगे। इस नये घर मे बाबूजी के पितामह ने बाबूजी के जन्म के बाद से रहना आरम्भ किया था।

बाबूजी का जन्म खुशहाल पर्वत वाले पुराने घर मे ही हुआ था। फकीरचन्द जी के तीनो पुत्रो का देहात कम आयु मे ही—४५ और ५० वर्ष की आयु के बीच मे—हुआ। स्वय फकीरचन्दजी की आयु भी लम्बी नही रही थी।

फकीरचन्दजी के सबध मे प्रसिद्ध है कि वह बड़े सत्यवादी और सच्चरित्र थे। अपनी साधारण आय मे ही वह घर का सब खर्च चलाते थे। इनके तीन पुत्र हुए—सालिगराम, अनन्तराम तथा मूलचन्द। सालिगरामजी अर्थात् बाबूजी के पिता (हमारे बाबा) ने मैट्रिक तक शिक्षा पाई थी और महालेखाकार (एकाउटेंट जनरल) के कार्यालय मे क्लर्क थे। उस समय इस पद का वेतन लगभग ८० रुपये से १०० रुपये मासिक तक होता था। बाबूजी के पिता बहुत ही शुद्ध आचार-विचार के तथा सरल प्रकृति के साधु पुरुष थे। अपने सीधे-सादे स्वभाव, उच्च आचार-विचार, सत्यवादिता, कर्त्तव्यनिष्ठा और परिश्रमशीलता के कारण वह अपने कार्यालय मे एक प्रतिष्ठित कर्मचारी माने जाते थे और सब उनका बड़ा आदर करते थे। मोहल्ले और पास-पडोस मे भी उनका बडा सम्मान था। उनका अपना एक उच्च व्यक्तित्व था। वह सत्य पर सबसे अधिक बल देते थे। उनके लिये यह प्रसिद्ध है कि यदि कुटुम्ब के किसी बच्चे ने भी कभी कोई बात झूठ कही तो इसके लिए वह उसे बहुत कडी सजा देते थे। बाबूजी को भी एक बार, जब वह लगभग पाच-छ वर्ष के थे, उनके पिता ने झूठ बोलने के लिए कड़ी सजा दी थी।

हमारे वावा की आरंभ से ही धार्मिक प्रवृत्ति थी। सतो की वाणियो से वह वहुत प्रभावित थे। राधास्वामी मत ने इन्हे अपनी ओर आकर्षित किया। आगरा मे इस मत का केंद्र था। उस समय इस मत के गुरु अवकाश-प्राप्त पोस्ट मास्टर जनरल सालिगरामजी थे जिन्हे भक्तगण हुजूर महाराज पुकारते थे। राधास्वामी मत के प्रवर्तक और प्रथम गुरु, स्वामीजी महाराज, के देहात के वाद इन्होंने ही गुरुपद स्वीकार किया था और आगरा के पीपलमडी अचल मे अपने निवासस्थान पर सत्सग करते थे। हमारे वावा ने आगरा जाकर हुजूर महाराज से राधास्वामी मत मे दीक्षा ली। वाद मे हमारी दादी ने भी दीक्षा ली। महालेखाकार के कार्यालय के वावा के दो सहयोगियो, प० व्रह्मशकर और श्री माधोप्रसादजी, ने भी इनके साथ ही राधास्वामी मत मे दीक्षा ली थी और ये तीनो मित्र एक साथ ही समय-समय पर आगरा सत्सग मे सम्मिलित होने जाया करते थे। सत्संग मे हमारे वावा का नाम 'प्रेमसरन' और दादी का नाम 'शरणप्यारी' रखा गया था। १२ वर्ष की आयु मे वावूजी ने भी हुजूर महाराज से दीक्षा ली थी। सत्सग मे इनका नाम 'अगमसरन' रखा गया था। इसी से अभ्युदय आदि मे यह ए० एस० (A S) के नाम से लिखा करते थे।

खत्री समाज मे पुरुषवर्ग सामान्य रूप से मासाहारी रहा है। हमारे परदादा के अन्य भाइयो और उनकी सतानो को इस भोजन से परहेज नही था किंतु हमारे परदादा ने स्वय मास खाना वहुत वचपन मे ही छोड दिया था। राधास्वामी सत्संग मे सम्मिलित होने के वाद से हमारे वावा और उनके परिवार का रहन-सहन तो और भी अधिक सात्विक हो गया।

फकीरचन्दजी के देहात के समय तक हमारे वावा के अतिरिक्त उनके दोनो छोटे पुत्र—अनन्तराम और मूलचन्द—जीविकोपार्जन के कार्य मे नही लग सके थे। मूलचन्दजी तो आयु मे उस समय काफी छोटे थे। इन्हे हमारे वावा और दादी ने पुत्रवत् पाला था और इनकी शिक्षा पूरी कराई थी। उस समय डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए मूलचन्दजी को लाहौर जाना पडा था। इतना सव व्यय भी हमारे वावा ने अपने शिक्षा-प्रेम के कारण ही किया था। मूलचन्दजी का विवाह भी विद्यार्थी अवस्था मे ही हो चुका था। अत इनकी शिक्षा के अतिरिक्त इनके परिवार का पूरा दायित्व भी हमारे वावा पर ही था।

हमारे वावा की पहली सतान एक पुत्री थी। उसके वाद कई सतानें जन्म लेने के कुछ ही दिनो वाद कालकवलित हो गईं। वावूजी का जन्म अपनी वडी वहिन के कई वर्षो वाद हुआ। कुटुम्वी जनो से हमने सुना है कि हमारी दादी तथा वावूजी की दादी ने इनके लिए वडी मानता-मनौती की थी। जव हमारी दादी की कई सतानें कालकवलित हो गयी तो उन्हे किसी ने परामर्श दिया कि वह चित्रकूट जाए। वहा एक सिद्ध वावा रहते हैं। वह उनका आशीर्वाद प्राप्त

करके आए। हमारी दादी अपनी सास तथा अन्य कुछ लोगो के साथ चित्रकूट गई और उन सिद्ध महात्मा के पास पहुचकर उनसे विनती की तो उन्होने दादी को काष्ठ का एक टुकडा दिया और उसे वरावर शरीर पर धारण किये रहने का आदेश दिया। यह भी कहा कि पुत्र-जन्म के वाद वह काष्ठ नवजात शिशु को पहना दिया जाय। सवका विश्वास था कि इन महात्मा के वरदान से ही वावूजी का जन्म हुआ।

वावूजी के एक छोटे भाई राधानाथजी थे जो वावूजी से लगभग ६ वर्ष छोटे थे। इस प्रकार हमारे वावा का निजी परिवार वहुत छोटा था, किंतु परिवार मे सबसे वडे होने के नाते अन्य छोटे भाइयो के परिवारो का भार भी उनके ऊपर ही था। जव अनन्तरामजी वैंक मे नौकर हो गये तव उनके परिवार की ओर से वावा निश्चित हो गये थे, किंतु अपने कनिष्ठ भाई मूलचन्दजी की शिक्षा और उनके परिवार का भार तव भी उन पर ही था। वावा अपने कुटुम्व के अन्य बच्चो को भी आवश्यकता पडने पर शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता देते थे। उनके वेतन से परिवार के भरण-पोपण और शिक्षा का यह व्यय पूरा होना सभव नही था। अत उन्हे ऋण लेना पडता था। उन्होने अपने भाई और पुत्र को पढाने के लिए ऋण लेना अधिक ठीक समझा इसकी अपेक्षा कि इन दोनो की पढाई न हो सके। उनका यह विश्वास था कि ये दोनो पढने के वाद ऋण चुकता कर देंगे।

हमारे वावा का जब सन् १९०३ मे स्वर्गवास हुआ तब वावूजी वी० ए० मे पढते थे। वावूजी का विवाह हो चुका था और उस समय तक दो सतानें भी हो चुकी थी—सवसे बडी पुत्री जो लगभग ३ वर्ष की थी और पुत्र जो लगभग १० माह के थे। वावा कुछ ऋण भी छोड गये थे। कुटुम्बीजनो का वावूजी पर वहुत दवाव पडा कि वह पढाई छोड कर नौकरी कर लें और घर का भार सभालें। पिता का देहात हो जाने के कारण महालेखाकार के कार्यालय मे, जहा इनके पिता कार्य करते थे, इन्हे नौकरी भी तुरत मिल सकती थी, किंतु वावूजी ने पढाई छोडकर नौकरी करना स्वीकार नही किया। उनमे आत्मविश्वास था। उन्होने कहा कि वह अपनी पढाई के साथ-साथ दूसरे विद्यार्थियो को पढाकर आवश्यक धन अर्जित कर लेंगे और अपनी पढाई का व्यय वहन कर लेंगे। वावूजी ने इन्ही दिनो सैन्य विभाग के अग्रेज अधिकारियो को कुछ समय तक हिन्दी पढा कर अपनी पढाई के लिए धन अर्जित भी किया। मूलचन्दजी, जिन्हे हम डाक्टर वावा कहते थे, उस समय डाक्टरी आरम्भ कर चुके थे। उन्होंने उस समय परिवार को सभालने का भार अपने बडे भाई के स्थान पर अपने ऊपर ले लिया और वावूजी की शिक्षा का क्रम टूटने नही दिया। इन दोनो चाचा-भतीजे की आयु मे वहुत कम अतर था और इसी कारण इनमे परस्पर मैत्री और प्रेमभाव बहुत

था। बावूजी उन्हे वहुत आदर देते थे और प्रेम भी करते थे। यही कारण है कि जव सन् १९१७ मे डाक्टर वावा वीमार पडे तव वावूजी ने अपनी वकालत की चिंता छोडकर उनकी वड़ी सेवा-सुश्रूषा की। डाक्टर वावा अपनी वीमारी से अच्छे न हो सके और लगभग एक वर्ष रुग्ण रहने के वाद सन् १९१८ मे उनका निधन लगभग ४६ वर्ष की आयु मे हो गया। डाक्टर वावा की नगर मे अच्छी प्रतिष्ठा थी। इलाहावाद नगरपालिका के वह उपाध्यक्ष रह चुके थे। चिकित्सक के रूप मे उनकी अच्छी ख्याति थी और अच्छी आय भी थी जिससे समस्त सम्मिलित परिवार का भार वह सरलता से वहन कर सके थे। उनके देहात के वाद उनके परिवार का दायित्व वावूजी पर ही आया जिसमे डाक्टर वावा की पत्नी, उनके तीन पुत्र और एक पुत्री थी।

हम वच्चो को अपने पितामह को देखने का सौभाग्य तो नही मिला, क्योकि उनका देहात कम आयु मे ही हो गया था, किंतु अपनी दादी का लाड-प्यार पाने का पूरा सौभाग्य हमे मिला। वह विशेप गुणो से सपन्न महिला थी और वहुत निर्भीक तथा दृढ प्रतिज्ञ स्वभाव की थी। साधारण महिलाओ से वह इन गुणो मे वहुत ऊची थी। भय क्या वस्तु है यह वह जानती ही नही थी। कैसी भी कठिन परिस्थिति उपस्थित हो वह निर्भीकता से उसका सामना करती थी और तनिक भी विचलित नही होती थी। वह दृढप्रतिज्ञ भी इतनी थी कि एक वार जो वात निश्चय कर लेती थी फिर उसको छोडती नही थी। अपने इन गुणो के कारण ही हमारे कुटुम्व की महिलाओ मे इनका अपना एक निराला ही व्यक्तित्व था। इन गुणो के साथ-साथ उनमे वात्सल्य भी अटूट मात्रा मे भरा हुआ था। हम सव वच्चे उनसे इतना स्नेह करते थे कि अपनी माता को भी छोडकर उनके पास ही रहना पसद करते थे। वावूजी ने अपनी माता से ये सव गुण प्राप्त किये। हमारी दादी का स्वर्गवास दिसम्वर सन् १९२३ मे हुआ। उस समय उनकी आयु लगभग ६४ वर्ष की थी।

वावूजी की वडी वहिन तुलसा देवी, अर्थात् हमारी बुआ, का विवाह इटावा निवासी श्री जगतनारायण खन्ना के साथ हुआ था। विवाह के कुछ ही समय पश्चात् उनका देहात हो गया था किंतु वावूजी ने अपने जीजा से वरावर सवध वनाये रखा।

हमारे चाचा राधानाथ वी० एस-सी०, एल० टी० थे। एल० टी० परीक्षा उत्तीर्ण करने के वाद सन् १९१८ मे उन्हें राजकीय शिक्षा विभाग मे सहायक अध्यापक का पद मिला और उनकी नियुक्ति हाथरस के राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मे हुई। दो वर्ष यहा कार्य किया। इसके वाद उन्होने इलाहावाद के सी० ए० वी० स्कूल में विज्ञान अध्यापक का पद ग्रहण किया। इस पद पर उन्होंने लगभग ४ वर्षो तक कार्य किया। इसी वीच वह अपना मानसिक

सतुलन खो वैठे और अपने इस स्कूल के अध्यापक पद से भी त्यागपत्र दे दिया। बावूजी ने उनका काफी उपचार कराया जिससे वह वहुत अश तक ठीक तो हो गए किंतु पूर्ण मानसिक सतुलन उनका कभी नही हो पाया और फिर जीवन भर उन्होने कोई कार्य नही किया। उनके एकमात्र पुत्र दीनानाथ अव लखनऊ मे रहते है और सचिवालय मे एक अधिकारी हैं। दीनानाथ के शिक्षा प्राप्त करके नौकरी करने तक चाचा के परिवार का पूरा दायित्व भी वावूजी ने ही उठाया।

वावूजी का जन्म खुशहाल पर्वत के पुराने घर (सख्या १७-१५) मे हुआ था। बावूजी के पितामह ने जो नया घर इस घर के समीप ही अहियापुर मोहल्ले मे वनवाया था उसमे वे अपने पूरे परिवार सहित वावूजी के जन्म के कुछ समय वाद ही रहने लगे थे। यह नया घर जिसमे वावूजी का वचपन वीता अच्छा वडा बना था।

बाबूजी के चाचा मूलचन्दजी ने जानसेनगज मे दर्वेश्वर नाथ मदिर के पास एक मकान, जिसमे इस समय किंग्स कम्पनी नामक दवाइयो की दुकान है, किराये पर ले लिया था। यही उनका दवाखाना था। बावूजी ने जव वकालत आरभ की तो इस मकान की ऊपरी मजिल मे उन्होने अपना कार्यालय वनाया। कुछ वर्षों तक तो यहा केवल उनका कार्यालय ही रहा, वह रहते अहियापुर के मकान मे थे, किंतु वाद मे वह इसी कार्यालय भवन के ऊपर अपने परिवार सहित रहने भी लगे थे। सन् १९२५ मे लाहौर जाते समय इस मकान को उन्होने छोडा था।

लाहौर से सन् १९३० मे इलाहाबाद वापस आने पर बावूजी कई वर्षों तक मीरगज मोहल्ले के एक किराये के मकान (सख्या २०) मे रहे। अव यहा एक नया वाजार "सुमेरचन्द जैन मार्केट" नाम से बन गया है। उसके वाद वहादुरगज मे एक वर्ष तक एक मकान मे रहे जिसमे आजकल "कैपिटल व्लाक वर्क्स" है। अक्टूवर सन् १९३९ से हिंदी साहित्य सम्मेलन के सामने १०, क्रास्थवेट मार्ग (अव सम्मेलन मार्ग) वाले मकान मे रहे। कुछ वर्षों वाद लोक सेवक मडल की इलाहावाद शाखा ने अपना भवन कल्याणी देवी अचल मे स्थित अपनी भूमि पर वनवा लिया था। इस भवन के साथ अध्यक्ष के लिए भी एक पृथक् खड वना था। लोक सेवक मडल के अध्यक्ष होने के नाते वावूजी सन् १९५६ मे इस भवन मे आकर रहने लगे। इस भवन के पास ही हमारे छोटे भाई डा० आनन्दकुमार (वावूजी के पाचवें पुत्र) ने भी इस समय तक अपना एक पृथक् घर वनवा लिया था और वह उसमे अपने परिवार सहित रहने लगे थे। सन् १९५७ से वावूजी कुछ अस्वस्थ रहने लगे थे और आनन्दकुमार के आग्रह पर फिर उन्ही के नये निवासस्थान, १६७ अतरसुइया, मे रहने लगे। वही अत तक रहे।

□

बाल्यकाल और शिक्षा

बाबूजी का जन्म मगलवार १ अगस्त सन् १८८२ (विक्रमी सवत् १९३९ की श्रावण द्वितीया) को हुआ था। इस वर्ष यह मलमास—पुरुषोत्तम मास था—इसी कारण इनका नाम 'पुरुषोत्तम दास' रखा गया था। उस समय इनके पूर्वजो ने यह कहा समझा सोचा था कि उनका यह वालक पुरुषोत्तम अपने इस नाम को कितना सार्थक करेगा ? बाबूजी का लालन-पालन वडे लाड-प्यार के वीच हुआ था किंतु ऐसा लाड-प्यार नही जो वालक को उच्छृखल और हठी वना दे।

वाबूजी आरभ से ही वडे साहसी थे। वचपन तथा युवावस्था मे अपने साथ खेलनेवाले साथियो मे वह सदा अगुआ रहते थे। जव भी कोई कठिनाई सामने आ पडती वह अपने सभी साथियो का नेतृत्व करने सवसे आगे खडे हो जाते थे।

वचपन की एक घटना से इनके साहसी स्वभाव का आभास उसी समय से होने लगा था। जव वह लगभग तीन वर्ष के थे एक दिन अहियापुर मे अपने घर के वाहर अपनी साथिन पडोस की एक लडकी के साथ खेल रहे थे। इस लडकी की आयु इनसे दो-एक महीने कम ही थी। खेलते समय लडकी ने इनसे वतलाया कि आज मेरे चाचा चित्रकूट गये हैं। इनके मन मे भी यह उमग उठी कि हम भी चित्रकूट चलें। वस तुरत निश्चय कर लिया और स्वय अगुआ वनकर उस लडकी को साथ लिए चित्रकूट के लिए चल पडे। इन छोटे वच्चो को चित्रकूट के मार्ग की जानकारी होना तो वहुत दूर की वात थी, ये तो अपने घर के आसपास के दूसरे मुहल्लो मे भी इसके पूर्व अकेले नही गये थे। सध्या का समय था। दोनो वच्चे चित्रकूट पहुचने के उद्देश्य से एक-दूसरे का हाथ थामे अपने मोहल्ले से पैदल चलते-चलते किले के पास तक पहुच गए। अधेरा होने लगा तव ये वच्चे कुछ घवराये हुए से लगने लगे। किले के एक सतरी ने इन्हे देखकर अनुमान लगाया कि ये वच्चे अपने माता-पिता के साथ गगा नहाने आए होंगे और छूट गए होगे। उसके पूछने पर इन्होने वडी दृढता और निडरता से कहा "हम चित्रकूट जा रहे हैं।"

घर का पता पूछने पर यह ठीक-ठीक तो न वतला सके इतना वतला दिया कि हमारा नया घर है और उस पर मछली वनी है। भला इतने से वेचारा उनका पता क्या समझ सकता था ? अत. उसने इन दोनो वच्चो को समझाकर कि चित्रकूट वडी दूर है तुम अकेले पैदल नही पहुच सकते, हम तुम्हें घर पहुचा देंगे, अपने साथ लिया और चौक की कोतवाली की ओर चल पडा। इधर अंधेरा होने पर जव ये वच्चे अपने-अपने घर नही पहुचे तो दोनो के परिवार के लोगों को चिंता हो गई और चारो ओर इन्हे ढूढने के लिए दोनो परिवारो के सदस्य निकल पडे। जिस समय पुलिस का सिपाही इन दोनो वच्चो को इक्के मे वैठाये कोतवाली पहुचने के उद्देश्य से चौक मे पहुचा उसी समय इनके परिवार के कुछ सदस्य भी, जो इन्हे ढूढने निकले थे, वहा पहुचे थे। उन्होने इन्हे देखकर साथ लिया तथा घर पहुचाया। इस प्रकार लगभग १० वजे रात को दोनो वच्चे अपने-अपने घरवालो को मिले। इस घटना से स्पष्ट होता है कि निर्भीकता और नेतृत्व के गुण आरभ से ही उनके स्वभाव के अग थे और जैसा हम पीछे सकेत कर चुके हैं ये दोनो गुण उन्हे अपनी माता से पैतृक रूप मे मिले थे।

सत्य की शिक्षा

वाल्यकाल की एक दूसरी घटना है जिसने वावूजी के मन मे उसी छोटी, लगभग ५-६ वर्ष की, अवस्था मे सत्य के प्रति एक आस्था जाग्रत की। कुटुम्ब के एक वडे वच्चे के कहने पर कि वह घर से रुपये ले आए तो वे लोग खेल का सामान खरीदें, वावूजी ने घर मे जाकर हमारी दादी की आलमारी खोली। सामने ही इन्हे १०-१५ रुपये रखे दिखलाई दिए। ये रुपये एक दिन पूर्व हमारे पितामह ने दादी को घर के मासिक व्यय के लिए दिए थे। वावूजी सव रुपये उठा ले गये और उस वडे वच्चे को दे दिए। उस वडे वच्चे ने उन रुपयो को पतग आदि मे तथा चटपटा खाने मे खर्च किया। सध्या को जव दादी ने आलमारी खोली तो देखा रुपये गायव हैं। वावूजी से पूछा गया। भय के कारण उन्होने कह दिया, मैं कुछ नही जानता। जव हमारे वावा सध्या को कार्यालय से लौटे तो उन्हे रुपयो के आलमारी से गायव हो जाने की वात वतलायी गई। उन्होंने वावूजी को मारना शुरू किया। तव वावूजी ने सव वात वतलाई। वावा ने उसी समय उनसे प्रण कराया कि वह कभी झूठ नही वोलेंगे। यद्यपि वावूजी की अवस्था वहुत छोटी थी फिर भी उस दिन की वात का इतना प्रभाव उनके मन पर पडा कि उसके वाद से वह कभी झूठ नही वोले। उन्होंने उसी दिन से सत्य के महत्त्व को समझ लिया। इस प्रकार की घटनायें कितने वच्चो के जीवन मे आती हैं किंतु उनका वच्चे के मन पर कोई स्थायी प्रभाव नही पडता। वावूजी की एक ऊची आत्मा थी। उन्हे तो अपने जीवन द्वारा लोगो के सामने सत्य का आदर्श रखना था। इस

छोटी सी घटना ने तो केवल एक मात्र कारण का कार्य किया ।

शिक्षा

वावूजी की प्रारभिक शिक्षा एक मौलवी द्वारा हुई थी। इनके घर के पास ही चौधरी महादेव प्रसाद की कोठी के सामने एक पीपल के वृक्ष के नीचे चवूतरे पर वैठा कर मौलवी साहव वच्चो को पढाते थे। यह पीपल का वृक्ष आज भी उन दिनो की स्मृति दिलाता है। वावूजी अत तक इन मौलवी साहव को वडी श्रद्धा के साथ स्मरण किया करते थे और वतलाते थे कि मौलवी साहव कितने स्नेह और प्यार से उनकी अगुली पकड कर उन्हे हिन्दी के अक्षर लिखना सिखलाते थे।

इसके वाद उनकी शिक्षा क्रमश शिवराखन स्कूल (वर्तमान सी० ए० वी० इण्टर कालेज), गवर्नमेट स्कूल (वर्तमान राजकीय इण्टर कालेज), कायस्थ पाठशाला कालेज (वर्तमान कायस्थ पाठशाला इण्टर कालेज) तथा म्योर सेंट्रल कालेज (वर्तमान इलाहावाद विश्वविद्यालय) मे हुई। लगभग ८ वर्ष की आयु मे इनका नाम सी०ए०वी० स्कूल मे नवी कक्षा मे (यह आज की दूसरी कक्षा के समकक्ष थी) लिखाया गया। उस समय यह स्कूल जानसेनगज की एक गली मे स्थित था और यहा केवल तीसरी कक्षा अर्थात् मिडिल तक की शिक्षा दी जाती थी। यहा से सन् १८६४ मे वावूजी ने मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की और गवर्नमेंट स्कूल की दूसरी कक्षा (वर्तमान नवी कक्षा) मे नाम लिखाया। उस समय यहा के प्रधानाचार्य एक ऐंग्लोइण्डियन सज्जन हाउसडन थे। वावूजी अपनी कक्षा के अच्छे प्रतिभाशाली छात्र थे। कुछ इस कारण और कुछ अपने सरल स्वभाव के कारण वह अपने साथियो के वीच वडे लोकप्रिय थे। इनका अग्रेजी का ज्ञान वहुत अच्छा था। इस सवध मे इनके इस काल की दो घटनायें स्मरणीय हैं।

हाउसडन इन्हे अग्रेजी पढाते थे। एक वार उन्होने कक्षा मे ब्राउनिंग की एक कविता (Gallop, Gallop ....) की कुछ पक्तियो की छदगणना (scanning) करने के लिए विद्यार्थियो से कहा। वावूजी द्वारा की गई छदगणना एक अग्रेज लेखक द्वारा वनायी गई और पुस्तक की टिप्पणी मे दी गई छदगणना से भिन्न थी किंतु उससे कही अधिक अच्छी थी। इस पर प्रधानाध्यापक ने इनकी वडी प्रशसा की और प्यार से इनकी पीठ ठोकी।

एक दूसरी घटना है। अग्रेजी के एक नये अध्यापक विद्यालय मे आए थे और पहले दिन जव वह वावूजी की कक्षा मे गए तो उन्होने हिन्दी से अग्रेजी मे अनुवाद करने का कार्य विद्यार्थियो को दिया। उन्होने हिन्दी का गद्याश जिसे अग्रेजी मे अनुवाद करना था धीरे-धीरे वोल कर विद्यार्थियो को लिखवाया। अध्यापक

महोदय ने स्वाभाविक रूप मे यह आशा की थी कि सभी छात्र हिंदी लेख लिखने के वाद सोच विचारकर अंग्रेजी अनुवाद लिखेंगे और इसमें कुछ समय लगेगा ही। उन्हे क्या पता था कि उनकी कक्षा मे एक ऐसा मेधावी छात्र है जो उनकी हिन्दी सुनकर साथ-साथ ही अंग्रेजी अनुवाद लिखता जा रहा है। अध्यापक महोदय ने जैसे ही हिन्दी गद्यांश लिखाना समाप्त किया वाबूजी ने अपनी अभ्यासपुस्तिका मे लिखा अंग्रेजी अनुवाद उनके सामने रख दिया। अध्यापक महोदय ने समझा, "यह कोई नटखट विद्यार्थी है और चूंकि वह पहले दिन कक्षा मे आये हैं उनके साथ हँसी कर रहा है।" उन्होने क्रोध प्रदर्शित किया और इनकी कापी फेंक दी। वावूजी अपनी कापी उठाकर अपने स्थान पर आकर चुपचाप वैठ गये। अध्यापक ने इन्हे वैठे देखकर इनसे फिर पूछा, "तुम अनुवाद क्यो नही कर रहे हो?" इन्होंने उत्तर दिया, "मैंने अनुवाद आपको दिखलाया था किंतु आप देखना ही नही चाहते।" अध्यापक को विश्वास ही नही हुआ कि इतनी जल्दी अनुवाद हो सकता था। वह वोले, "मुझसे मजाक करते हो?" वास्तव मे वह बडे डरे हुए और सतर्क थे कि कही नया होने के कारण छात्र उनके साथ किसी प्रकार की शैतानी न करें। अध्यापक महोदय को संभवत कुछ खीझ भी लगी और वोले, "अच्छा, लाओ कापी।" इसी समय अन्य विद्यार्थियो ने भी अध्यापक महोदय को वतलाया कि वावूजी विना हिन्दी गद्यांश लिखे उसे सुनकर तुरंत अनुवाद कर लेते हैं। जव वावूजी द्वारा किया गया अनुवाद उन्होने पढा तो अवाक् रह गये और वोले, "क्या यह अंश तुमने पहले पढा था?" वावूजी का सरल सा उत्तर था, "नहीं।" अध्यापक महोदय ने जव इसकी चर्चा कक्षा के दूसरे अध्यापकों के वीच मे की तव उन्हें पता चला कि वावूजी कैसे छात्र थे और उनकी क्या योग्यता तथा प्रतिभा थी।

अस्वस्थ होने के कारण सन् १८९६ मे वावूजी प्रथम कक्षा अर्थात् एंट्रेंस की परीक्षा (आजकल का हाई स्कूल) नही दे पाए। सन् १८९७ मे यह परीक्षा उन्होने प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की। उत्तीर्ण विद्यार्थियो मे उनका द्वितीय स्थान था। वह सरलता से प्रथम स्थान प्राप्त कर सकते थे किंतु वचपन से ही इनका यह स्वभाव था कि जब कोई कार्य करने लगते तो उसमे इतना तल्लीन हो जाते कि न तो उन्हे स्वयं समय का ध्यान रहता न किसी अन्य वात का। वावूजी ने स्वयं हम वच्चो के वीच मे चर्चा करते हुए वतलाया था कि एंट्रेंस परीक्षा मे जव वह सम्मिलित हुए तो जिस समय हिंदी प्रश्नपत्र का उत्तर वह लिख रहे थे उनकी सरकडे की कलम टूट गई। उन दिनो विद्यार्थी सरकडे की कलम से ही हिन्दी लिखते थे। इस कलम को चाकू से परीक्षा के समय वनाने मे वह लग गए और इसका ध्यान नही किया कि वहुत-सा समय व्यतीत हो गया। फलस्वरूप वह पूरे प्रश्नो का उत्तर निर्धारित समय के भीतर लिख ही नही सके। स्वाभाविक अनुमान था कि इस प्रश्नपत्र मे उन्हे कम अंक मिले होंगे और इसी के फलस्वरूप

उनका प्रथम स्थान न होकर द्वितीय स्थान परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियो मे था। वावूजी का तल्लीन और एकाग्र हो जाने का स्वभाव उनके चरित्र मे अत तक दिखलाई देता रहा। वात करते करते कोई विचार मन मे उठा तो चुप होकर वह वैठ जाते थे और चिंतन मे लीन हो जाते थे। उस समय कोई क्या कह रहा था इसका उन्हे ध्यान ही नही रहता था।

वावूजी स्वभाव से ही अपनी वेश-भूषा आदि के प्रति लापरवाह थे। विद्यालय मे भी कोट-कमीज आदि के वटन वद करने का ध्यान नही रखते थे। यह आदत उनकी मदैव वनी रही, किंतु स्कूलो मे उस समय इन वातो पर वडा ध्यान रखा जाता था। इस कारण उनके प्रधानाध्यापक इनकी प्रतिभा को मानते हुए भी इन्हे 'अस्त-व्यस्त रहने वाला' कह दिया करते थे।

वावूजी वचपन से ही कुछ तेज स्वभाव के थे। एक वार जल्दी मे स्कूल के लॉन पर से निकलने के कारण विद्यालय के माली से इनकी कुछ कहा-सुनी हो गई और इनको कुछ अर्थदड भी देना पडा। इससे इनके अध्यापक समझते थे कि यह शिक्षा के अतिरिक्त अन्य सभी वातो की ओर से उदासीन रहते है।

एट्रेंस परीक्षा सन् १८९७ मे उत्तीर्ण करने के वाद वावूजी ने कायस्थ पाठशाला कालेज मे प्रवेश लिया। उस समय वहा के प्रधानाचार्य अग्रेजी और वगला के प्रमिद्ध विद्वान् श्री रामानन्द चैटर्जी थे। जव वावूजी चैटर्जी महोदय के पास प्रवेश लेने के लिए पहुचे तव उन्होने इनका गवर्नमेट स्कूल से मिला प्रमाणपत्र देखा। उस पर प्रधानाचार्य ने टिप्पणी मे इनकी प्रकृति 'लापरवाह' (indifferent) लिख दी थी। इसे देखकर श्री चैटर्जी ने इनसे इसका कारण पूछा। इन्होने उत्तर दिया, "मुझे ठीक तो नही मालूम, आप पत्र लिखकर प्रधान अध्यापक से पूछ लें।" साथ ही यह भी कहा कि "माली से दो-एक वार कहा-सुनी हुई थी। सभवत इस कारण उन्होने ऐसा लिखा हो।" श्री चैटर्जी इनकी इस स्पष्टोक्ति से वडे ही प्रभावित हुए और इन्हे अपने यहा प्रवेश दे दिया। श्री चैटर्जी स्वय एक उच्चकोटि के विद्वान् थे और अपनी योग्यता के लिए प्रसिद्ध थे। वाद मे उन्होने कई वर्षों तक अग्रेजी मासिक पत्रिका माडर्न रिव्यू (Modern Review) का सफलतापूर्वक सपादन किया था। इन्ही की प्रेरणा से हिन्दी तथा वगला मे 'विशाल भारत' मासिक पत्रिका भी आरम्भ हुई थी। इटर के छात्रो को अग्रेजी वह स्वय पढाते थे। कक्षा मे श्री चैटर्जी ने आरभ मे जव अग्रेजी मे एक निवध लिखवाया तो वावूजी का निवध, उसकी भाषा और भाव, देखकर वहुत ही प्रसन्न हुए तथा कक्षा मे विद्यार्थियो के सामने प्रशसा करते हुए कहा कि उन्हे भी इसी प्रकार निवध लिखना सीखना चाहिए। वावूजी अच्छे छात्र थे और इनकी अग्रेजी की योग्यता को सभी मानते थे। श्री चैटर्जी का तो इन पर विशेष स्नेह हो गया था जो अत तक वरावर वना रहा। जव सन् १९५० मे वावूजी काग्रेस के अध्यक्ष

चुने गए तब श्री रामानन्द चैटर्जी ने इनके त्याग, योग्यता और व्यक्तित्व की बडी प्रशसा माडर्न रिव्यू मे अपनी टिप्पणी मे की थी।*

इटर परीक्षा सन् १८९९ मे उत्तीर्ण कर बाबूजी ने म्योर सेंट्रल कालेज में स्नातक कक्षा मे प्रवेश लिया। इन्होंने बी०ए०, बी०एस-सी० का दोहरा पाठ्यक्रम लिया था। उस समय इस प्रकार का पाठ्यक्रम लेने की व्यवस्था थी। योग्य और प्रतिभाशाली छात्र होते हुए भी सन् १९०१ के स्थान पर इन्होंने बी० ए० की परीक्षा सन् १९०४ मे उत्तीर्ण की। तीन वर्ष इनके विभिन्न कारणो से नष्ट हुए। एक वर्ष अस्वस्थता के कारण नष्ट हुआ। उसमे तो किसी के वश की बात नही थी, किंतु दूसरे वर्ष परीक्षा न देने की घटना इस प्रकार है। उस समय परीक्षा मे एक दिन मे दो प्रश्नपत्र होते थे, एक-प्रात १० बजे से १ बजे तक तथा दूसरा अपराह्न मे ३ से ६ बजे तक। बाबूजी ने प्रथम प्रश्नपत्र दिया और दो घंटे कहा बितायें सोचकर म्योर कालेज के निकट ही कटरा मे अपने एक मित्र के यहा चले गये। उन लोगो की उस समय शतरज चल रही थी। बाबूजी को शतरज का खेल बडा प्रिय था और वह उसके अच्छे खिलाडी भी थे। वह पास बैठकर खेल देखते-देखते ही उसमे रुचि लेने लगे और ऐसे तल्लीन हुए कि न समय का ही ध्यान रहा और न परीक्षा का। जब कमरे मे कुछ अधेरा-सा हुआ तब अचानक उन्हे स्मरण हुआ, किंतु उस समय हो ही क्या सकता था? चुपचाप घर आ गए और पूरी घटना अपनी माता से बतला दी।

तीसरे वर्ष वह कालेज से एक वर्ष के लिए निष्कासित किये गए थे। वह निष्कासन किसी शरारत या बुरे काम के लिए नही था, वरन् सिद्धात के लिए लडने और सत्य पर अटल रहने के कारण था। घटना इस प्रकार घटित हुई थी। बाबूजी अपने कालेज की क्रिकेट टीम के कैप्टन थे। इलाहाबाद विश्वविद्यालय उन दिनो केवल परीक्षा के सचालन का कार्य करता था और उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश तथा राजपूताना के समस्त कालेज इस विश्वविद्यालय से सबद्ध थे। उस वर्ष इलाहाबाद मे विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित विभिन्न खेलो के वार्षिक टूर्नामेण्ट हो रहे थे जिसमे विश्वविद्यालय से सबद्ध समस्त कालेजो की टीमे खेलने के लिए आई हुई थीं। टूर्नामेण्ट का प्रबध डा० ई० जी० हिल के सुपुर्द था जो म्योर सेंट्रल कालेज मे रसायन विज्ञान के प्राध्यापक थे। डा० हिल ने प्रबध का भार पुलिस को दे दिया था। विद्यार्थियो को यह बात अच्छी नही लगी थी कि पुलिस टूर्नामेण्ट के खेलो मे प्रबध का काम करे। वे चाहते थे कि उन पर ही प्रबध का भार छोड दिया जाय। डा० हिल ने विद्यार्थियो की यह बात नही मानी थी। इस पर विद्यार्थियो

* उस समय श्री चैटर्जी ने एक व्यक्तिगत स्नेहपूर्ण पत्र भी बाबूजी को भेजा था। जिसमे बाबूजी के त्याग की सराहना की थी और लिखा था कि कोई साधारण व्यक्ति इतना त्याग नहीं कर सकता। साथ ही उन्होंने इन पर पुराने छात्र होने के नाते गर्व प्रकट किया था।

मे असतोप था। टूर्नामेण्ट के सिलसिले मे एक दिन जव दौडो की प्रतियोगिता हो रही थी और दर्शको की अपार भीड थी एक पुलिस के सिपाही ने एक दर्शक लडके को वहुत डाटा-डपटा। वावूजी पास ही अपने अन्य मित्रो के साथ खडे हुए थे। उन्होने पुलिस से कहा कि वह क्यो उस वच्चे को डाट-डपट रहा है और घसीट रहा है। इस पर पुलिस ने अकडकर तथा वदतमीजी से इन्हे उत्तर दिया। पुलिस की इस वदतमीजी पर इन्हे क्रोध आ गया और इन्होंने उसे डाटा। उसने जव कुछ और अशिष्ट प्रत्युत्तर दिया तव इन्हे और क्रोध आया और इन्होने अपने एक मित्र के हाथ से रूल लेकर पुलिस को दिखलाकर कहा कि मैं इसी से तुम्हारा सिर तोड दूगा। सिपाही डर कर वहा से तो चला गया किंतु जाकर उसने डा० हिल से शिकायत की। सव ओर शोरगुल होने लगा कि उस लडके को पकडकर लाया जाय जिसने पुलिस को मारने के लिए हाथ उठाया था। भीड मे इन्हे ढूढना पुलिस के लिए सभव नही था। इनके साथियो ने इनसे कहा भी कि तुम यहा से चले जाओ, किंतु इन्होने कहा कि मैं भागूगा नही, सत्य वात कहूगा। यह स्वय डा० हिल के सामने उपस्थित हो गए और स्वीकार किया कि पुलिस के सिपाही से उन्होने ही रूल से उसका सिर तोडने की वात कही थी। डा० हिल ने इस पर सिपाही से कहा कि वह चाहे तो पकडकर इन्हे हवालात ले जाए। इस पर इन्होने डा० हिल से कहा कि पुलिस का क्या साहस है जो मुझे हवालात मे ले जा सके, यदि आप मे साहस हो तो आप मुझे हवालात भेजें। यह सुनकर डा० हिल सन्न हो गये और इन्हे जाने दिया। वाहर निकलकर इन्होने अपने मित्रो से यह सव वात वतलाई और कहा कि डा० हिल ने पुलिस से मेरी वेइज्जती कराई है। सव विद्यार्थियो ने मिलकर प्रिंसिपल को एक प्रार्थनापत्र दिया जिसमे डा० हिल द्वारा पुलिस को एक विद्यार्थी की वेइज्जती करने का प्रोत्साहन देने पर अपना असतोप प्रकट किया और यह माग की कि डा० हिल को टूर्नामेण्ट के प्रवधकर्ता के पद से हटा दिया जाए अन्यथा म्योर कालेज की सव टीमे टूर्नामेण्ट से हट जाएगी तथा खेलो मे भाग नही लेंगी। प्रिंसिपल ने विद्यार्थियो की माग नही मानी। अत वावूजी ने टूर्नामेण्ट के वहिष्कार की घोपणा कर दी। वावूजी का विद्यार्थियो मे इतना मान था कि उनके कहने पर म्योर कालेज की समस्त टीमे टूर्नामेण्ट से हट आईं और पूरी हडताल कर दी गई। इस पर प्रिंसिपल ने सव विद्यार्थियो पर अर्थदण्ड लगाया और वावूजी को उस वर्प के लिए कालेज से निष्कामित कर दिया। इनसे कहा गया कि वह क्षमा माग लें तो निष्कासन दड निरस्त कर दिया जाएगा। किन्तु इन्होंने क्षमा मागना स्वीकार नही किया। इनका कहना था कि मेरी कोई गलती ही नही है। मैं क्षमा किस वात की और क्यो मागू ? यह घटना इस वात का उदाहरण है कि इनमे कितनी सत्यनिष्ठा थी। जो कुछ इन्होंने किया था स्पप्ट रूप से डा० हिल के सामने स्वीकार किया। इसके

परिणाम मे जो कुछ दण्ड मिला उसे सहर्ष स्वीकार किया। यह इनका बी० ए०, बी० एस-सी० के सम्मिलित पाठ्यक्रम का प्रथम वर्ष था। दूसरे वर्ष जब यह फिर कालेज आये तो उन्होने विज्ञान छोडकर केवल कला के विषय लिए। इसका कारण इतना ही था कि डा० हिल रसायन शास्त्र पढाते थे और यह उनसे पढना नही चाहते थे। डा० हिल को इससे बडा दु ख हुआ क्योकि बाबूजी के एक प्रतिभाशाली छात्र होने के कारण वह भी इनसे प्रभावित थे। उन्होने एक अन्य अध्यापक से इनसे कहलवाया भी कि वह विज्ञान न छोडें। किंतु इन्होने कहा कि जब डा० हिल से मेरी इतनी बातें हो चुकी हैं तो मैं उनका विषय नही पढना चाहता।

बाबूजी अपने कालेज के साथियो मे अपने ऐसे आदर्श चरित्र के कारण ही 'जीसस' के नाम से प्रसिद्ध थे।

जैसा हम पीछे बतला चुके हैं, बाबूजी जब बी०ए० कक्षा के विद्यार्थी थे तभी उनके पिता का देहात हो गया था और वह अपनी पढाई के व्यय को पूरा करने के लिए एक अग्रेज सेना अधिकारी को एक घटा प्रतिदिन हिन्दी पढाने का काम करने लगे थे। इस बीच बाबूजी को उस अग्रेज अधिकारी के प्रयत्न से इलाहाबाद मे स्थित सैनिक विभाग को सब्जी, फल तथा प्रतिदिन के भोजन की अन्य सामग्री के सभरण का ठेका मिल गया। बाबूजी ने इस ठेके की चर्चा करते हुए बतलाया था कि इस कार्य मे बहुत अच्छी बचत थी और वह चाहते तो शीघ्र ही बहुत रुपये कमा सकते थे। किंतु उन्होने ठेके का यह काम थोडे ही दिनो मे छोड दिया। अग्रेज फौजी अधिकारी चाहते थे कि उन्हें जो सामग्री उनके लिए दी जाय उसका कोई मूल्य उनसे अलग से न लिया जाय, और जो सामग्री फौजी विभाग को पहुचाई जाय उसमे तौल मे कमी करके उसका समायोजन कर लिया जाय। बाबूजी को यह पूरा व्यापार अनैतिक और असत्य पर आधारित लगा। अत उनकी अतरात्मा ने उन्हें इस ठेके को तुरत छोड देने के लिए प्रेरणा दी। बाबूजी के मित्रो ने उन्हे बहुत समझाया कि "वह यह ठेका छोडकर बहुत गलती कर रहे है और धन अर्जित करने के एक सुलभ मार्ग को छोड रहे है", किंतु बाबूजी ने किसी की भी बात नही सुनी क्योकि सत्य मे परमेश्वर का रूप देखने की शिक्षा पानेवाले के लिए यह सभव नही था। सब प्रकार का कष्ट उठाना उन्हें स्वीकार था किंतु गलत मार्ग से धन अर्जित करना उन्हें ग्राह्य नही था।

बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद बाबूजी का विचार अग्रेजी विषय लेकर एम० ए० मे अध्ययन करने का था किन्तु श्री जे० जी० जेनिग्स* ने, जो म्योर सेंट्रल कॉलिज मे अग्रेजी के प्रोफेसर थे, बाबूजी को परामर्श दिया कि वह अग्रेजी के स्थान मे इतिहास लेकर एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करें। बाबूजी

* Prof J G Jennings

जेनिंग्स के प्रिय शिष्य थे। उन्होने वावूजी से कहा कि अग्रेजी का तुम्हारा अध्ययन एम० ए० के समकक्ष है और इस विषय को एम० ए० की परीक्षा के लिए लेने से तुम्हे कोई लाभ नही होगा। वावूजी की आरभ से ही अग्रेजी साहित्य मे वडी रुचि रही थी। उन्होंने वी० ए० उत्तीर्ण करने तक अग्रेजी साहित्य के सभी प्रमुख ग्रथो का अध्ययन कर लिया था। इसीलिए प्रो० जेनिंग्स ने उन्हे यह परामर्श दिया था। मिल्टन उनका वडा प्रिय कवि था। उसकी वहुत-सी कविताए उन्हे कठस्थ थी। जव सन् १९४४-४५ मे पूज्य मालवीयजी स्थानीय शिवकोटि मदिर के समीप स्थित लाला मनमोहन दास के वाग मे वने एक भवन मे कायाकल्प करा रहे थे, तव वावूजी उनसे एक दिन मिलने गये। मैं (सत प्रसाद) भी वावूजी के साथ था। मालवीयजी से वातो के सिलसिले मे अग्रेजी साहित्य की चर्चा होने लगी। उस समय वावूजी ने मिल्टन के "पैराडाइज़ लॉस्ट"* काव्य मे वर्णित शैतान के सिंहासन के वर्णन की कुछ पक्तिया सुनाईं। इन पक्तियो को सुनकर मालवीयजी गद्‌गद् हो गए।

जेनिंग्स के परामर्श से वावूजी ने अग्रेजी मे एम० ए० करने का विचार त्याग दिया और इतिहास लेकर सन् १९०७ मे एम० ए० उत्तीर्ण किया। इसके पूर्व सन् १९०६ मे एल-एल० वी० की परीक्षा उत्तीर्ण कर वकालत करना आरभ कर दिया था। एम० ए० की परीक्षा उन्होने स्वय ही अध्ययन कर दी थी। उन दिनो व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप मे एम० ए० परीक्षा देने का विधान था।

साहित्य प्रेम

वावूजी का अध्ययन केवल कॉलेज के पाठ्यक्रम तक ही सीमित नही था। उन्हे आरभ से ही साहित्य, राजनीति और दर्शन आदि विभिन्न विषयो मे रुचि थी और वह इन विषयो के ग्रथो का अध्ययन करते रहते थे। उन्हे हिंदी और अग्रेजी के अतिरिक्त संस्कृत, उर्दू और फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। भारतीय दर्शन के अध्ययन के साथ-साथ उन्होने अनेक धर्मग्रथो का अध्ययन भी वडी गहराई से किया था। वाइविल और कुरान का अध्ययन करने के कारण इन सव धर्मों के तुलनात्मक ज्ञान का प्रभाव उनके जीवन पर वहुत गहरा पडा था।

कॉलेज की शिक्षा के काल मे फारसी का अच्छा ज्ञान तो उन्होने एक निजी अध्यापक की सहायता से घर पर ही प्राप्त किया था। फारसी के अमर कवि शेख सादी के वोस्ता और गुलिस्ता के अतिरिक्त हाफिज़ का भी उन्होने अध्ययन किया था। हाफिज़ उन्हे वहुत प्रिय था, और लगता है इसी से सूफी मत का भी उन

---

* Paradise Lost.

पर प्रभाव था। शेख सादी के तो अनेक शेर उन्हे कठस्थ थे और समय-समय पर वह उनका उद्धरण भी दिया करते थे।

अपने स्कूल और कॉलेज के जीवन मे अध्ययन के साथ-साथ बाबूजी अन्य साहित्यिक कार्यक्रमो मे भी बराबर भाग लेते थे। वाद-विवाद तथा लेख प्रतियोगिताओ आदि मे वह सदा आगे रहते थे। बाबूजी ने एक बार चर्चा करते हुए बतलाया था कि म्योर सेंट्रल कॉलेज मे प्रथम छात्र सघ की स्थापना उन्होने ही की थी और उसकी नियमावली भी उन्होने ही बनाई थी।

□

पारिवारिक जीवन

बाबूजी का विवाह मुरादाबाद निवासी श्री नरोत्तमदास खन्ना की बडी पुत्री चद्रमुखी के साथ सन् १८९७ के ज्येष्ठ मास मे हुआ था। हमारे नाना के पिता श्री गोविंद प्रसाद खन्ना मुरादाबाद के प्रतिष्ठित और संपन्न व्यक्ति थे और नाना उनके द्वितीय पुत्र थे। मैट्रीकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद नाना ने रेलवे की नौकरी स्वीकार कर ली थी। वह रेलवे मे क्लर्क थे और अपनी सत्यनिष्ठा तथा ईमानदारी के लिए अपने विभाग मे प्रसिद्ध थे। रेलवे के सभी भारतीय तथा अग्रेज उच्च अधिकारी इनकी सच्चाई, ईमानदारी तथा कर्त्तव्यपालन की प्रवृत्ति से प्रभावित थे। एक बार की घटना है कि कोई अग्रेज उच्च पदाधिकारी इनके विभाग मे स्थानान्तरित होकर आया। वह इनको पहले से जानता नही था। किसी बात पर रुष्ट होकर उसने इन पर कुछ अर्थदड लगा दिया। इन्होंने तुरत अपना त्यागपत्र दे दिया। उस अधिकारी को जब यह बात मालूम हुई तो उसने इन्हे बुलाकर इनसे क्षमा मागी और इनसे त्यागपत्र वापस करवाया। हमारे नाना धार्मिक प्रवृत्ति के थे और श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा प्रतिपादित थियासोफी सप्रदाय मे आस्था रखते थे।

बाबूजी का जब विवाह हुआ तब उनकी आयु लगभग साढे चौदह वर्ष की थी और उन्होने उसी वर्ष एंट्रेंस (हाई स्कूल) परीक्षा उत्तीर्ण की थी। हमारी माता की आयु उस समय लगभग १२ वर्ष की थी। उस समय की प्रथा के अनुसार विवाह के तीसरे वर्ष जब द्विरागमन का संस्कार सपन्न हुआ तब हमारी माता बाबूजी के साथ रहने ससुराल आईं। विवाह के बाद बाबूजी की शिक्षा मे कोई बाधा नही आई और शिक्षा का क्रम बराबर चलता रहा।

हमारी माता ने विद्यालय मे शिक्षा बहुत ही कम पाई थी किंतु हिंदी का ज्ञान उनका सामान्य रूप से अच्छा था। छोटी अवस्था मे विवाह होकर आने से वह इस परिवार की परपरा मे अच्छी प्रकार अपने को समायोजित कर पाईं तथा

उनके विचार और पुरानी परम्परा के विश्वास अत तक वने रहे। राधास्वामी मत मे होने के कारण वावूजी की स्वय तीज-त्योहारो आदि मे कोई आस्था नही थी, किंतु वावूजी के इस सवध के विचारो का उन पर कोई प्रभाव नही पडा और वह घर मे सभी पुरानी परपरायें चलाती रही। उनके पुत्र और वहुयें जव उन परपराओ को नही निवाहती थी तो उन्हे वडा कष्ट होता था और मानसिक उलझन होती थी। असहयोग आदोलन के समय उन्होने वावूजी की इच्छा और प्रेरणा मे खादी पहनना आरभ किया और अत तक उनका यह क्रम वना रहा। घर-गृहस्थी की उलझनो मे व्यस्त रहने के कारण उन्हे कभी सक्रिय रूप से तो घर के वाहर राजनीतिक कार्यो मे भाग लेने का समय नही मिल पाया, फिर भी जो थोड़ा समय वह निकाल सकती थी उसमे सन् १६३० के आदोलन के समय शराव और विदेशी वस्त्रो की दुकानो पर धरना देने मे भाग लेती थी। उनकी वडी पुत्रवधू विद्या भी उनके साथ रहती थी। किंतु उनके सनातन सस्कारो मे इन सव से कोई अतर नही आया। वावूजी के वकालत छोडकर जेल जाने से उन्हे गृहस्थी का भार अकेले उठाना पडा और आर्थिक सकट भी झेलना पडा। किंतु वावूजी के मार्ग मे वह कभी वाधक नही वनी। उन्होने वडे साहस और धैर्य से कष्ट के दिन व्यतीत किए और अपनी सतानो की देखभाल की। हमारी मा ने उन दिनो कितना कष्ट सहा है और कितना त्याग किया है, इसका पूरा चित्र आज भी हमारी आखो के सामने है। घर मे झाड़ू देने, भोजन पकाने तथा वर्तन माजने से लेकर कोई भी छोटा या वडा कार्य ऐसा नही था जो वह न करती रही हो। इसके साथ ही परिवार के सव सदस्यो के लिए भोजन जुटाने का काम तथा आए हुए अतिथियो की आवश्यकतापूर्ति भी उन्ही को परिवार की सीमित आय के अतर्गत करनी पडती थी। ऐसा नही था कि वावूजी को घर की आर्थिक स्थिति की जानकारी न रही हो। वह सव जानते थे और देखते थे किंतु स्वय उनको इस कष्ट मे भी आनद अनुभव होता था। प्रायः ऐसे दिन भी आये जव घर मे परिवार के सदस्यो के लिए पूरा भोजन भी नही था किंतु स्वय वावूजी ने तथा हमारी मा और वच्चो ने थोडा ही भोजन कर या किसी समय कुछ न खाकर ही काम चलाया। इतना सव होते हुए भी कभी कोई अतिथि हमारे घर से विना भोजन किये विदा नही किया गया। वावूजी का जो त्याग था उसके पीछे हमारी मा के त्याग का वल कुछ कम नही था। पुरुषो के त्याग और तपस्या की जानकारी तो लोगो को हो जाती है किंतु घर के भीतर वैठी स्त्री कितना त्याग करती है यह कम लोग ही जान पाते हैं।

गृहस्थी से वाहर क्या हो रहा है इसमे हमारी मा ने सामान्य रूप से कभी विशेष रुचि नही ली। उनके द्वारा मानी जाने वाली पुरानी रूढियो पर विश्वास न रखते हुए भी वावूजी ने कभी उनके मार्ग मे कोई विशेष वाधा नही डाली।

हमारी मा को उनके अपने विश्वास के अनुसार कार्य करने दिया।

हमारी मा मे स्नेह और वात्सल्य नही था, यह कहना तो गलत है किंतु पुराने सस्कारो मे उनके वधे रहने के कारण उनके पौत्र-पौत्रिया कभी उनसे वहुत अधिक स्वतत्र रूप से हिलमिल नही सके। वावूजी के प्रगतिशील विचारो का भी उन पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा था। वावूजी ने सदैव हरिजनो के उत्थान के लिए कार्य किया, उन्हे अछूत न मानकर अपनाया, निस्सकोच उनसे हिले-मिले, किंतु घर मे हमारी माता पुरानी रूढि अपनाती रही। खानपान मे भी वृद्धावस्था तक उनकी पुरानी परपरा ही वनी रही। उनकी मान्यताओ के अनुसार जव वहुए रसोईघर मे रेशमी वस्त्रो से भोजन नही पका पाती थी तो वह कच्ची रसोई (दाल, चावल, रोटी) नही खाती थी और पक्का भोजन (पराठा, पूरी इत्यादि) ही करती थी।

पुरानी रूढियो मे वधी रहने पर भी हमारी माता मे ऊचे धार्मिक विचार थे। वे प्रतिदिन प्रात काल पूजा और रामायण पाठ करती थी और प्रत्येक एकादशी को व्रत रखती थी। यह क्रम कभी नही टूटा। यहा तक कि अपनी मृत्यु के एक सप्ताह पूर्व भी एकादशी का व्रत उन्होने रखा था और न अपने पुत्रो की और न डाक्टरो की कोई वात सुनी थी। उनमे दया और सहानुभूति की भी वडी मात्रा थी। जव कोई निर्धन और कष्टपीडित व्यक्ति उनके सामने आ जाता तो वह यथाशक्ति उसकी सहायता करती थी। उनका निधन मगलवार, २३ सितवर, सन् १९७५ को लगभग ९० वर्ष की आयु मे हुआ।

वावूजी की सताने

वावूजी की प्रथम संतान हमारी सवसे वडी वहिन स्वामीप्यारी थी। इनका विवाह लालविहारी लाल मेहरोत्र के साथ हुआ था। यह सीतापुर जिले की विस्वां तहसील के रहने वाले थे और विस्वा तथा सीतापुर मे वकालत करते थे। इनकी मृत्यु वस की दुर्घटना मे कम आयु मे ही ७ दिसवर, सन् १९२८ को हो गई। इनकी मृत्यु के वाद हमारी वहिन अपने एकमात्र पुत्र चि० महेश के साथ हम लोगो के पास इलाहावाद मे रहने लगी। महेश की आयु उस समय लगभग ६ वर्ष की थी। इलाहावाद मे ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। आजकल यह इलाहावाद के उच्च न्यायालय मे न्यायाधीश के पद पर हैं। हमारी इन वहिन का देहात लगभग ७९ वर्ष की आयु मे १५ मई, सन् १९७९ को हुआ।

दूसरी सतान स्वामीप्रसाद हैं। इन्होंने वी० काम० परीक्षा उत्तीर्ण की और विभिन्न वैंको मे ऊचे पदो पर कार्य किया। अव अवकाश प्राप्त कर यह ग्वालियर मे अपने परिवार सहित रह रहे हैं। इनके पाच पुत्र और दो पुत्रिया है। सभी के विवाह हो चुके हैं। सभी ने उच्च शिक्षा प्राप्त की है और अपने-अपने कार्यो मे

लगे हुए हैं।

तीसरी संतान गुरुप्रसाद है जो हिंदी साहित्य के अच्छे विद्वान् है। हिंदी मे एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ-साथ इन्होंने एल-एल० बी० की परीक्षा भी उत्तीर्ण की है। आरभ मे इनका कुछ विचार वकालत करने का था किंतु साहित्य और शिक्षा मे विशेष रुचि होने के कारण इन्होंने वकालत करने का विचार त्याग दिया और शिक्षा के क्षेत्र को अपनाया। ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज मे तथा उज्जैन के माधव कालेज मे यह हिंदी विभाग के अध्यक्ष पद पर रहे और अब अवकाश प्राप्त कर ग्वालियर मे रह रहे हैं। इनके चार पुत्र और एक पुत्री हैं। सभी विवाहित हैं और उच्च शिक्षा प्राप्त कर उच्च पदो पर कार्य कर रहे हैं।

चौथी संतान इन पंक्तियो के लेखक संत प्रसाद है जो इलाहाबाद विश्व-विद्यालय मे रसायन विभाग मे प्राध्यापक रहे और बाद मे अध्यक्ष पद पर कई वर्षो तक कार्य कर सन् १९७२ मे अवकाश ग्रहण किया। इसके बाद केंद्रीय विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग की 'अवकाश प्राप्त अध्यापको की सेवाओ के उपयोग की योजना' के अंतर्गत अनुसधान कार्य मे कई वर्षो तक संलग्न रहे। इलाहाबाद मे अपने द्वारा स्थापित कई सस्थाओ का भार बाबूजी ने इन्ही पर डाला था और बाबूजी की मृत्यु के बाद से इन सस्थाओ का संचालन यह अपनी पत्नी, रानी टंडन, के सहयोग से कर रहे हैं। इनके दो पुत्र और दो पुत्रिया हैं। चारो ने उच्च-शिक्षा प्राप्त की है। दोनो पुत्र ऊंचे पदो पर कार्य कर रहे हैं। सभी के विवाह हो चुके हैं।

पाचवी संतान प्रेमदुलारी है। इनके पति मानिकचन्द मेहरोत्र फर्रुखाबाद के प्रतिष्ठित व्यवसायी कुटुंब के हैं और आजकल कानपुर मे कपडे का इनका अपना थोक का व्यापार है। इनके तीन पुत्र और दो पुत्रिया हैं। सभी विवाहित हैं। पुत्रो ने उच्च शिक्षा प्राप्त की है और अपने-अपने कार्यो मे लगे हुए हैं।

छठी संतान अमीबिंदु हैं जो बी० काम० परीक्षा उत्तीर्ण हैं। इस समय ग्वालियर मे जीवाजीराव काटन मिल्स के प्रबंध विभाग मे एक अधिकारी हैं। इनके दो पुत्र हैं। दोनो उच्च शिक्षा प्राप्त कर अच्छे पदो पर कार्य कर रहे हैं। दोनो ही विवाहित हैं।

सातवी संतान आनंद कुमार हैं। इन्होंने एम० बी० बी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की है और इलाहाबाद मे कल्याणी देवी तथा भारती-भवन क्षेत्र मे डाक्टरी कर रहे हैं। कल्याणी देवी अंचल मे इन्होंने अपना निवास बनाया है। बाबूजी अपने अंतिम वर्षो मे इन्ही के पास इसी घर मे रहते थे। इनके दो पुत्र हैं। दोनो पुत्रो का विवाह हो चुका है और दोनो अपने-अपने कार्यो मे लगे हैं।

आठवी संतान दयासागर हैं। इन्होंने रसायन विज्ञान मे प्रयाग विश्वविद्यालय मे एम० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की है। इस समय जमशेदपुर मे "नेशनल

वकालत और वैतनिक पद

सन् १६०६ मे एल-एल० वी० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के वाद वावूजी ने इलाहावाद की जिला कचहरी मे वकालत करनी आरभ की। उन दिनों उच्च न्यायालय मे वकालत का कार्य करने के पूर्व दो वर्ष तक जिला कचहरी मे कार्य करना अनिवार्य था। अत दो वर्ष वाद सन् १६०८ मे उन्होंने इलाहावाद के उच्च न्यायालय मे वकालत आरभ की। उच्च न्यायालय मे आरभ के दो-तीन वर्षो तक वह सर तेज वहादुर सप्रू के सहायक के रूप मे वकालत का कार्य करते रहे। उनकी प्रतिभा, स्पष्टवादिता तथा व्यवहार मे सर सप्रू वडे प्रभावित थे और उनके प्रति वडा स्नेह रखते थे। कुछ ही समय मे उनकी प्रतिष्ठा एक प्रतिभा-वान वकील के रूप मे होने लगी। उन्होंने वकालत को अपनी आजीविका का साधन तो चुना किंतु अन्य कुछ वकीलो की तरह उन्होंने अपने कोई दलाल नही रक्खे। इसे वह वडा घृणित कार्य समझते थे। इसी प्रकार वह अपने मुवक्किलो से कहा करते थे और उनसे आशा करते थे कि वे समस्त तथ्य उन्हे सच सच वतलाएगे। उनका विश्वास था कि यदि उन्हे समस्त तथ्य सत्यरूप मे नही मालूम होगे तो वह मुकदमे की पैरवी ठीक-ठीक नही कर पाएगे, उनके अनुसार वकील को न तो झूठ वोलना है, न तथ्य छिपाना, उसका केवल मात्र काम है अपने मुवक्किल की कानूनी दृष्टि से रक्षा करना।

इसी सवध की एक घटना है। इलाहावाद जिले के एक प्रतिष्ठित जमीदार महोदय अपना एक मुकदमा लेकर वावूजी के पास आए। सभवत जमीदारी के वटवारे का मामला था। वावूजी ने सव तथ्यो की जानकारी प्राप्त की और कुछ विशेष तथ्यो की पुष्टि मे क्या साक्ष्य उपलव्ध हैं यह उनसे पूछा। उन महोदय ने वावूजी से कहा, ' समस्त तथ्य आपके सामने हैं, वस दो गवाह आप तैयार करा दें।" यह सुनते ही वावूजी ने क्रोध मे उनकी पूरी फाइल फेंक दी और कहा, "मैं वकालत करता हू न कि झूठे गवाह तैयार करने का पेशा।" वह

सज्जन अपनी फाइल उठाकर चुपचाप वापस चले गए। बाद मे बाबूजी के मुशी ने हम लोगो को बतलाया था कि वह बडा मुकदमा था और उसमे लगभग आठ-दस हजार रुपये फीस के रूप मे बाबूजी को मिलते। पर बाबूजी को सिद्धात के आगे इसकी चिंता कब थी!

वकील के रूप मे उनके साहस और निर्भीकता के भी अनेक सस्मरण है। दो सस्मरणो की चर्चा, जिन्हे हमने स्वय बाबूजी से सुना था, हम यहा कर रहे है।

यह बात सन् १९११-१२ की है। बाबूजी वकालत के साथ विभिन्न समाज-सेवी कार्यो मे भी भाग लेते थे। इन्ही दिनो कुछ ग्रामीण किसानो को अच्छे वेतन का प्रलोभन देकर फिजी आदि द्वीपो मे मजदूर के रूप मे भेजने के लिए यहा के किले में एकत्र किया गया था। बाबूजी को जब इसका पता चला तो उन्होने इसके विरुद्ध आदोलन किया। उस समय अग्रेजी शासन और अग्रेजो का बडा आतक था। जिलाधीश ने, जो अग्रेज था, दूसरे दिन इन्हे कचहरी मे बुलाया और बहुत देर तक समझाता रहा कि आपको इस प्रकार के आदोलनो मे भाग नही लेना चाहिए। आप एक होनहार युवक हैं और आपको अपने भविष्य की उन्नति की चिंता करनी चाहिए। इनके उत्तरो से आरभ मे तो जिलाधीश महोदय विशेप नही समझ पाए कि इनके विचार कितने कट्टर राष्ट्रीय हैं, पर जब काफी देर समझाने के बाद भी बाबूजी उसके मत से सहमत नही हुए तो उसने कहा, "ऐसा जान पडता है कि तुम अग्रेजो के विरोधी हो।"[1] बाबूजी ने तुरत उत्तर दिया, "आपको यह जानने मे बहुत समय लगा।"[2] अग्रेज जिलाधीश इनका उत्तर सुनकर सन्न रह गया। उसने कभी यह आशा नही की थी कि कोई भी भारतीय ऐसा कडा उत्तर किसी अग्रेज अधिकारी को और उसी के कार्यालय मे दे सकता है।

दूसरी घटना इस प्रकार है। एक दिन बाबूजी उच्च न्यायालय मे एक न्यायपीठ (बेंच) के सम्मुख, जिसमे मुख्य न्यायाधीश श्री रिचर्डस भी थे, एक मुकदमे की द्वितीय अपील पर बहस कर रहे थे। बहस के बीच मे उन्होने एक तर्क उपस्थित किया। मुख्य न्यायाधीश कुछ उतावले और कडे स्वभाव के व्यक्ति थे। वह बोल पडे, "यह तर्क तो आपका बिल्कुल नया है। आपने प्रथम अपील के समय न्यायाधीश बैनर्जी के सम्मुख इसे प्रस्तुत नही किया था।" रिचर्डस की इस बात ने बाबूजी को उत्तेजित कर दिया, फिर भी उन्होने सयत होकर कहा कि जब यह अपील न्यायाधीश बैनर्जी के सामने थी तब भी मैंने इस तर्क को प्रस्तुत किया था किंतु श्री बैनर्जी ने अपने निर्णय मे इसका उल्लेख क्यो नही किया

१ It appears that you are anti-British
२ You have taken a long time to discover it

यह मैं नही कह सकता। मुख्य न्यायाधीश ने फिर उसी स्वर मे कहा, "न्यायाधीश वैनर्जी की स्मरण शक्ति तो बहुत अच्छी है। वह अपने निर्णय मे इसका उल्लेख करना भूल नही सकते थे।" अव क्या था। इतना सुनते ही वावूजी क्रोध से उवल पडे, "महोदय, मैं यहा आपके सामने मुकदमे पर वहस करने के लिए आया हू, आपसे अपनी सच्चाई की जाच कराने के लिए नही।"* सिंह अपनी निर्भीकता के लिए ससार मे प्रसिद्ध है और ऐसे ही पुरुष सिंह थे वावूजी।

मुख्य न्यायाधीश रिचर्डस की उच्च न्यायालय मे वडी धाक थी और प्राय सभी वकील उनके सामने कुछ भय खाते थे। एक युवक वकील के इस प्रकार के निर्भीक उत्तर ने केवल मुख्य न्यायाधीश को ही नही उनके पूरे इजलास को सन्न कर दिया।

वावूजी की निर्भीकता, सच्चाई और स्पष्टवादिता की धाक पूरे न्यायालय मे इसके वाद स्थापित हो गयी। धीरे-धीरे सभी न्यायाधीश यह जान गए कि वावूजी सत्य का मार्ग ही अनुसरण करते हैं। वावूजी के मुशी, छेदीलालजी, हम लोगो को ऐसी अनेक वातें वतलाया करते थे। उन्होने वतलाया था कि उस समय के न्यायाधीश श्री नॉक्स वावूजी की सत्यवादिता से इतने अधिक प्रभावित थे कि जव उनकी किसी मुकदमे की कोई भी अपील न्यायाधीश नॉक्स के सामने प्रस्तुत होती और वावूजी दूसरे मुकदमे मे व्यस्त रहने के कारण उस अपील को स्वीकृत कराने के लिए स्वय उपस्थित न हो पाते, तव केवल उनके नाम को देखकर ही न्यायाधीश नॉक्स अपील स्वीकृत कर देते थे। श्री नॉक्स को यह विश्वास था कि टडनजी कोई भी झूठा मुकदमा नही लेते। वावूजी के लिए यह प्रसिद्ध था और वास्तविकता भी यही थी कि वह कभी कोई झूठा मुकदमा नही लेते थे। वकालत के पेशे मे उनका मुख्य ध्येय केवल धनोपार्जन ही कभी नही रहा, उनका दृष्टिकोण सदा मुवक्किलो की कानूनी दृष्टि से सहायता करना रहता था। निर्धन मुवक्किलो से प्राय विना पारिश्रमिक लिए ही वह उनका कार्य कर दिया करते थे। कई प्रकार के सामाजिक कार्यों मे भी वह इस वीच वहुत भाग लेने लगे थे और इस कारण वह अपना पूरा समय वकालत मे नही लगा पाते थे। फलस्वरूप ऊची प्रतिभा होते हुए भी वकालत मे उनकी आय सदा सामान्य ही रही। वह अपने स्वभाव और परिश्रमशीलता के कारण अपने मुवक्किलो के प्रिय वन जाते थे और उनका विश्वास प्राप्त कर लेते थे। प्रत्येक मुकदमे की सूक्ष्म से सूक्ष्म वात पर भी उनकी पैनी दृष्टि जाती थी। यही उनकी सफलता का कारण था। मालवीयजी भी प्राय स्वय व्यस्त रहने पर अपने मुकदमो मे इन्हे पैरवी

---

* My lord, I am here to argue the case of my client I have not come before you to have my veracity tested".

करने के लिए भेज देते थे।

इसी बीच सन् १९१४ से १९१६ तक दो वर्षों के लिए वह मालवीयजी की प्रेरणा से नाभा राज्य मे विदेश मत्री के पद पर कार्य करने के लिए चले गए। नाभा से वापस आकर उन्होने पुन वकालत करनी आरभ की। इन्ही दिनो उनके चाचा डा० मूलचन्दजी कठिन रोग से पीडित हो गए और उनकी परिचर्या मे वावूजी अपना सव समय लगाने लगे जिससे अपना वकालत का कार्य नही कर सके। सन् १९१८ मे अपने चाचा के देहात के वाद उन्होने पुन वकालत का कार्य आरभ किया किंतु १९२०-२१ के असहयोग आदोलन के आरभ होने पर सदा के लिए वकालत को तिलाजलि दे दी। इस प्रकार वावूजी ने अधिक दिनो लग कर न तो वकालत की और न उससे विशेष धन ही अर्जित किया।

नाभा राज्य के विदेश मंत्री का पद

अग्रेजी शासन काल मे नाभा राज्य पजाव प्रदेश की एक छोटी सी रियासत थी। सन् १९१३-१४ मे इस राज्य के महाराज के कुछ स्वतत्र विचारो के कारण अग्रेज शासन का रुख इसके विरुद्ध हो गया और पग-पग पर इस राज्य के सामने पजाव के गवर्नर ने कठिनाइया उपस्थित करनी आरभ कर दी। नाभा महाराज वहुत चिंतित और दु खी थे। उन्होने महामना मालवीयजी से अपनी कठिनाइया वतलाई और उनसे कहा कि वे कोई अच्छा योग्य व्यक्ति उन्हे विदेश मत्री के रूप मे राज्य का कार्य सभालने के लिए दें जो उनकी समस्याओ को सुलझा सके। मालवीय जी के आग्रह मे वावूजी ने नाभा राज्य के विधि और विदेश मत्री का पद स्वीकार किया। सन् १९१४ मे अपना वकालत का कार्य स्थगित कर वह नाभा चले गए। नाभा राज्य की समस्याओ को वहुत सीमा तक सुलझाने मे उन्हें सफलता भी मिली। नाभा महाराज उनके कार्य और व्यक्तित्व से वहुत प्रभावित हुए किंतु एक छोटी सी घटना के कारण सन् १९१६ मे इस पद को अचानक त्याग कर वह इलाहावाद वापस आ गए। वह घटना इस प्रकार थी हिन्दी साहित्य सम्मेलन की एक आवश्यक वैठक इलाहावाद मे होनी थी। वैठक मे सम्मिलित होने के लिए इलाहावाद जाने की अनुमति देने के लिए उन्होने महाराज को पत्र लिखा जो उस समय मसूरी मे थे। महाराज का उत्तर आया जिसमे उन्होने वावूजी को इलाहावाद जाने की अनुमति नही दी थी। वावूजी ने तुरत अपना त्यागपत्र महाराज के पास भेज दिया और सम्मेलन की वैठक मे सम्मिलित होने हेतु इलाहावाद के लिए प्रस्थान कर दिया। वाद मे महाराज ने उन्हें पुन अपने पद का भार ग्रहण करने के लिए कई आग्रहपूर्ण पत्र लिखे तथा अपनी रियासत के एक अन्य अधिकारी को उन्हें मनाने के लिए भी भेजा, किंतु वावूजी ने यही उत्तर दिया कि एक वार वह जिस पद को छोड चुके हैं उसे पुन ग्रहण

नही करेंगे। उनके जीवन का क्रम सदा यही रहा। जिस कार्य या पद से एक बार उन्होने अपने को मुक्त कर लिया उसे पुन ग्रहण नही किया। असहयोग आदोलन मे वकालत छोडी तो बाद मे फिर उसे आरभ नही किया। लोगो ने बहुत कहा कि घर की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए वह वकालत फिर आरभ कर दें जैसा अन्य बहुत से नेताओ ने आदोलन के शात होने पर किया था, किंतु वह अपनी बात पर दृढ रहे।

पजाब नेशनल बैंक के मत्री का पद

असहयोग आदोलन की समाप्ति पर जब बाबूजी सन् १९२३ मे जेल से छूट कर आए तब उनके सामने परिवार के 'भरण-पोपण' के लिए उचित आय की व्यवस्था करने का प्रश्न था। यह निश्चय तो वह कर ही चुके थे कि उन्हें वकालत का कार्य पुन आरभ नही करना है। इस बीच लाला लाजपत राय जी द्वारा आरभ किए गए अछूतोद्धार के कार्य को इस प्रदेश मे सगठित करने का भार उनके ऊपर आ गया था और वह इस सामाजिक कार्य को अपने अन्य कार्यों के साथ कर रहे थे। उनकी शोचनीय आर्थिक स्थिति की जानकारी भी लालाजी को थी। लालाजी ने बाबूजी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह अछूतोद्धार के कार्य के उपलक्ष्य मे ५०० रुपये मासिक मानदेय के रूप मे लें, किंतु बाबूजी ने इसे स्वीकार नही किया। तब लालाजी ने उन पर दबाव डाला कि वह पजाब नेशनल बैंक के लाहौर मे स्थित मुख्य कार्यालय मे सयुक्त मत्री का पद ग्रहण करें। लाला जी के इस प्रस्ताव को इन्होने स्वीकार किया और अप्रेल सन् १९२५ मे लाहौर पहुच कर इस पद का भार ग्रहण किया। बडी योग्यतापूर्वक उन्होने इस पद के कर्तव्य का निर्वाह किया जिससे बैंक की उन्नति हुई और उसकी प्रतिष्ठा बढी। कुछ समय बाद बाबूजी बैंक के मुख्य मत्री हो गए। नवम्बर सन् १९२८ मे लालाजी के देहात के बाद जब इन्हें लोक सेवक मडल का अध्यक्ष मनोनीत किया गया तब बैंक के अपने इस पद को अगस्त सन् १९२९ मे बाबूजी ने छोड दिया।

□

समाज-सेवा के कार्य

बाबूजी वहुत छोटी अवस्था से ही महामना मालवीयजी के सपर्क मे आ गए थे। वावूजी के निवासस्थान से मालवीयजी का घर वहुत ही समीप था और प्राय प्रतिदिन ही वह मालवीयजी के घर जाया करते थे। मालवीयजी के वडे पुत्र रमाकान्त वावूजी के समवयस्क थे और वावूजी के साथ ही खेल-कूद मे भाग लेते थे। इसी कारण वावूजी का मालवीयजी के घर मे आना-जाना आरभ हुआ था। धीरे-धीरे वावूजी के स्वभाव और व्यवहार से प्रभावित होकर मालवीयजी का इन पर वहुत स्नेह हो गया था और वह इन्हे पुत्रवत् मानने लगे थे। मालवीयजी की प्रेरणा से ही इन्होने छोटी अवस्था से ही सामाजिक कार्य करना आरभ कर दिया था। मालवीयजी के प्रति वावूजी की इतनी अधिक श्रद्धा थी कि वह उन दिनो समाज का प्रत्येक कार्य मालवीयजी के परामर्श और निर्देशन से ही करते थे। प्राय मालवीयजी के साथ ग्रामीण क्षेत्रो मे जाकर दु खी ग्रामीणो की सहायता करते थे, निर्धन रोगियो की चिकित्सा के लिए आर्थिक सहायता जुटाते थे, दु खी विधवाओ के भरण-पोषण की व्यवस्था मे यथाशक्ति सहायता पहुचाते थे। इसी तरह के विभिन्न समाज-सेवा के कार्यों मे वह विद्यार्थी जीवन से ही लगे रहते थे।

स्त्री शिक्षा का कार्य गौरी पाठशाला की स्थापना

सन् १९०४ मे जिस घटना के कारण और फलस्वरूप मालवीयजी की प्रेरणा से गौरी पाठशाला की स्थापना हुई उसका सक्षिप्त व्यौरा इस प्रकार है . अहियापुर अचल मे ईसाई मिशनरियो द्वारा सचालित स्त्रियो और वालिकाओ को सामान्य शिक्षा देने तथा सिलाई-वुनाई सिखाने का एक केंद्र था। ये ईसाई स्त्रिया प्राय घरो मे जाकर विवाहित तथा बड़ी आयु की स्त्रियो को भी सिलाई-वुनाई सिखलाती थी। शिक्षा की ओट मे उनका मुख्य उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार

करना रहता था। इस अचल की एक १५-१६ वर्ष की बगाली बालिका मिश-नरियो द्वारा सचालित इस शिक्षा सस्था मे पढती थी। वह एक बगाली सज्जन श्री घोषाल की बाल-विधवा कन्या थी। यह सज्जन महालेखाकार के कार्यालय मे काम करते थे। जिस अवस्था मे वह अबोध बालिका विवाह का अर्थ तक नही समझती थी वह विधवा हो चुकी थी और उसी प्रकार का जीवन व्यतीन करने के लिए बाध्य थी। मिशनरी स्त्रियो ने उसके अल्हड युवती हृदय मे स्वप्निल संसार का एक आकर्षक चित्र चित्रित किया और उसे अकेले मे समझाया कि यदि वह ईसाई हो जाय तो उसे जीवन मे सब प्रकार का सुख मिल सकता है। बालिका उनके कहने मे बहक गई और उसने ईसाई होना स्वीकार कर लिया।

एक दिन वह प्रतिदिन की भाति घर से केंद्र पर गई किंतु सध्या को निश्चित समय पर घर वापस नही आई। थोडी देर प्रतीक्षा करने के उपरात खोज-खबर प्रारभ हुई। तब पता चला कि मिशनरी स्त्रियो के साथ किसी लडकी को जाते किसी ने देखा था। लोग चिंतित थे कि क्या करे? तीन-चार युवक भारती-भवन से आगे की गली (जो मोदरिया की कुलिया कहलाती है) के पास खडे बाबूजी की प्रतीक्षा कर रहे थे। बाबूजी उस समय अपने मोहल्ले की युवक मडली के नेता थे। वह जब विश्वविद्यालय मे वापस आये तो गली के पास खडे इन लोगो ने उन्हे सक्षेप मे यह घटना बतलाई। दस-पाच मिनट मे ही सोच-विचार कर उन्होने अपना मार्ग निश्चित कर लिया। चार-पाच साथियो को अपने साथ लिया। सबके हाथ मे छोटी लाठिया थी और वे एक इक्के मे बैठकर मिशनरियो के स्थान के लिए चल पडे। बिजलीघर के आगे जो सेंट पॉल्स गिरजाघर है उसी अहाते मे वे मिशनरी स्त्रिया रहती थी तथा उसी गिरजाघर के तत्वावधान मे कार्य करती थी। इन लोगो ने इक्का बाहर रोका और अदर गए। गिरजाघर का दरवाजा खुला हुआ था। जैसे ही अदर गए इन लोगो ने देखा कि दो-तीन पादरियो तथा गिरजाघर की चार-पाच पुजारिनो के साथ वह बालिका एक बगल से आकर वेदी की ओर बढ रही है। इन लोगो ने तुरत अपनी लाठिया जमीन पर पटक कर खटखट किया। मुख्य पादरी ने पीछे मुडकर देखा और बड़े कठोर तथा रूखे स्वर मे कहा, "यहा कैसे घुस आये हो, बाहर निकल जाओ।" बाबूजी ने उत्तर दिया, "यह स्त्रिया इस बालिका को बहकाकर अपने साथ ले आई है। ये शिक्षा का प्रचार करती है या उसकी आड़ मे इस प्रकार धर्म परिवर्तन? आप लोग इस लडकी को हमारे सुपुर्द कर दें।" पादरी ने कहा, "यह लडकी सब बातें सोच-समझकर आई है। आप लोग तुरत यहा से निकल जाइये वरना मैं कलक्टर और पुलिस को बुलाता हू।" युवक टडन ने उत्तर दिया, "आपकी पुलिस और कलक्टर जब आएगे तब देखा जाएगा, पहले तो हम आप मे से एक-एक का सिर तोडकर बहकाकर लाई गई अपनी इस

वहिन को ले ही जाएगे।" वात वढती देखकर कुछ तो वे लोग सकपका गए, कुछ इन युवको की हिम्मत से घवरा भी गए। इन युवको ने लडकी से कहा, "चलो वहिन, तुम हमारे साथ आओ।" लडकी चली तो आई पर सकपकायी और घवराई हुई थी। ये लोग उसे साथ लेकर शीघ्रता से बाहर आए तथा इक्के पर चढाकर अहियापुर के लिए चल दिए। जव लडकी को लेकर उसके घर पहुचे तव तक उसके पिता घर पहुच चुके थे और घर का वातावरण कैसा था इसका अनुमान सुगमता से लगाया जा सकता है। वावूजी ने उनसे कहा, "यह लडकी अवोध और निरपराध है। किन परिस्थितियो मे यह वहकावे मे आई यह समझना सुगम है। किंतु भगवान का अनुग्रह है कि हम लोग समय पर पहुच गए। अव आप इसे सभालें और चिंता छोडे।" उन्हे कुछ हिचकता देख वावूजी ने फिर कहा, "दादा, आप चुप क्यो हैं? क्या हिचक है आपको? इसे ठुकराकर आप एक वडा अन्याय करेंगे। क्या ऐसी ही परिस्थिति मे पडकर ऐसी अवोध वालिकाए आज ईसाई या मुसलमान नही वन रही हैं, अथवा कोठो पर वैठने के वाध्य नही हो रही है? आर्य समाज और व्रह्म समाज की विचारधारा समझें और इसे शिक्षित कर इसका पुनर्विवाह करें। यदि आप अव भी इसे स्वीकार नही करते तो इसे मैं अपने साथ रखूगा। आज से यह मेरी वहिन है।" उसके माता-पिता इनकी वात मान गए। वाद मे वावूजी तथा मालवीयजी ने उन्हे अलग से भी सव वातें समझाई कि इस घटना को देखकर तो वह समाज को वदलने का प्रयास करे तथा अपनी पुत्री का पुनर्विवाह कर दें, आदि।

इस वालिका को ईसाईयो के हाथो से छुडा कर उसके घर पहुचा देने से उस समय का कार्य तो पूरा हो गया किंतु इस युवक मडली का मन उद्विग्न हो उठा। भविष्य मे ऐसी घटना न हो सके इसकी इन्हे चिंता हो उठी और परस्पर विचार-विमर्श करते रहे। उसी दिन रात्रि मे ये सव युवक महामना मालवीयजी की वैठक मे पहुचे। वावूजी प्रतिदिन वहा जाते ही थे। इन लोगो ने दिन की उक्त पूरी घटना सविस्तार उन्हे वताई। मालवीयजी ने कहा, "हम सव लोग अपनी वहुओ वेटियो को कुछ पढाना-लिखाना भी चाहते हैं किंतु उनके लिए न पाठशालायें खोलते हैं और न कोई दूसरी व्यवस्था करते हैं। जव चर्च इन मिशनरियो द्वारा यह काम कराता है तो वह अपना मतलव तो सिद्ध करेगा ही।" आदि। वस एक चुनौती मिली और मिली एक प्रेरणा। वावूजी मालवीयजी से यह कह कर आये कि आपने जो कुछ कहा है ठीक है। अव कल से ही हम अपनी पाठशाला आरभ करेंगे। वापस घर पहुच कर रात मे ही इन युवकों ने एकत्र होकर निम्नलिखित निश्चय किए—

(१) दो-दो युवक मोहल्ले के प्रत्येक प्रवेश द्वार पर (गली) कल प्रात से ही पहरा दें और एक भी मिशनरी स्त्री-पुरुप को मोहल्ले मे न आने दे।

(२) जिस मकान में मिशनरियों का केंद्र है उसके स्वामी को सूचित कर दिया जाय कि वह तुरंत अपने मकान से मिशनरियों को निकाल दें, अन्यथा मकान ही नष्ट कर दिया जाएगा।

(३) कल प्रात से ही एक कन्या पाठशाला की स्थापना की जाय और शीघ्र ही उसकी सपूर्ण व्यवस्था की जाय।

दूसरे दिन प्रात काल (सन् १९०४ की सभवत ७ या ८ फरवरी थी। ठीक तिथि बाबूजी को भी स्मरण नही थी) बाबूजी ने घर के सामने के शिवालय के चबूतरे पर (यह शिवालय आज भी है) तीन बालिकाओं से इस पाठशाला का आरभ हुआ। ये तीन बालिकायें थी—हमारी बडी बहिन स्वामीप्यारी, प० बालकृष्ण भट्ट की पुत्री शिवप्यारी तथा प० बद्री शुक्ल की पुत्री मन्दाकिनी। पाठशाला को नाम भी देना ही था, अत इस कार्य के लिए प० बालकृष्ण भट्ट से बाबूजी ने आग्रह किया। भट्टजी ने स्वय आकर इन तीनों बालिकाओं को उस चबूतरे पर बैठा कर पाठशाला का शुभारभ किया तथा इसे गौरी पाठशाला नाम दिया। उन्होने इसे गौरी पाठशाला नाम इस दृष्टि से दिया था कि इसमे आठ-नौ वर्ष तक की बालिकायें ही शिक्षा पाएगी (उस समय अधिक-से-अधिक १०-११ वर्ष की आयु मे कन्या का विवाह हो ही जाता था)। इन छोटी बालिकाओं को अपने यहा गौरी कहा जाता है—"अष्ट वर्षा भवेत् गौरी।" इस कारण इसे कन्या पाठशाला न कहकर गौरी पाठशाला कहा गया।

इस प्रकार महामना मालवीयजी की प्रेरणा से बाबूजी ने इसकी स्थापना की और भट्टजी ने इसे नाम और आशीर्वाद दिया। आरभ मे पाठशाला की कक्षाये भी कुछ दिन तक भट्टजी की बैठक मे लगी। इसके बाद जब इसकी औप-चारिक समिति का गठन हुआ तब मालवीयजी इसके सभापति और बाबूजी मत्री हुए। सामाजिक कार्य के क्षेत्र मे बाबूजी का यह पहला बडा कार्य था और गर्व का विषय है कि आज यह सस्था पल्लवित और पुष्पित होकर उनकी यशोगाथा की सजीव प्रतिमा हमारे बीच मे है। यह सस्था एक प्रकार से उनकी प्रथम कृति है और इस कारण उन्हे इसमे बडा ममत्व था। वह अपने अत समय के कुछ दिनो पूर्व तक इसके अध्यक्ष रहे और अपनी रोग-शैय्या से भी इसके कार्य-सचालन मे परामर्श देते रहे।

अकाल मे कार्य

लाला लाजपत राय प्रथम बार इलाहाबाद ५ मार्च, १९०८ को आए और महामना मालवीयजी के पास ठहरे। बाबूजी का लालाजी से प्रथम सपर्क तभी हुआ। देश सेवा के क्षेत्र मे लालाजी की जो ख्याति थी उससे बाबूजी उनकी ओर बहुत आकृष्ट हुए। इन्ही दिनो देश के कई स्थानो मे अकाल पड़ा। लालाजी ने

अकालपीड़ितो की सहायतार्थ मई, सन् १९०८ मे एक "सार्वजनिक अकाल निवारण सभा" गठित की। वावूजी को मत्री के रूप मे इसका कार्यभार सौंपा। इस कार्य के फलस्वरूप उनका लालाजी से घनिष्ठ सवध हुआ। उड़ीसा के भीषण अकाल के समय वावूजी वहां भी पहुंचे थे। देश मे जहां कही भी कोई विपत्ति की स्थिति उत्पन्न होती थी, वावूजी तन-मन-धन से वहां की जनता की सहायता करने मे प्रयत्नशील हो जाते थे। समाज और जनता की सेवा उनके स्वभाव का एक अग वन गयी थी।

विहार मे जनवरी सन् १९३४ मे भीषण भूकप आया जिसमे धन-जन की वहुत वडी क्षति हुई। उस भूकप के विनाशकारी प्रभाव से वहा की जनता त्रस्त थी। उस समय वावूजी तुरत विहार गये और वहां देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसादजी के साथ मिलकर उन्होंने सगठित रूप मे जनता की सव प्रकार की सहायता की।

वधक मजदूरो की समस्या

सन् १९१० से १९१२ के वीच मे फिजी, नेटाल आदि स्थानों पर मजदूरी का कार्य करने के लिए ग्रामीण भारतीयो को अच्छे वेतन का प्रलोभन देकर भर्ती किया जाता था। इन स्थानो पर अग्रेजो के वड़े-वडे फार्म थे जिन पर कृषि का कार्य करने के लिए वहा मजदूर नही मिलते थे। इन अग्रेजो के प्रतिनिधि अग्रेजी शासन की सहायता से भारतीय ग्रामीणो को प्रलोभन के साथ-साथ छल-कपट द्वारा भर्ती कर मजदूरो के रूप मे वहा ले जाते थे। इन भारतीय मजदूरो पर वहां जो अत्याचार होते थे उसकी तो एक अलग कहानी है। इन अत्याचारो की कुछ जानकारी धीरे-धीरे भारतवर्ष मे जनता को होने लगी थी। तव इस प्रकार की भर्ती का विरोध जनता मे आरभ हो गया था। इसी अवधि मे एक दिन वावूजी को यह सूचना मिली कि एक वड़ी सख्या मे ग्रामीण मजदूरो को लाकर यहा के किले मे रखा गया है और उन्हे शीघ्र ही देश के वाहर फिजी आदि स्थानों पर भेजा जाने वाला है। तव वावूजी ने अपने साथियो के साथ इसका विरोध एक वडे आदोलन के रूप मे किया। इससे यहा के अग्रेज अधिकारी भी घवड़ा गये। इन मजदूरो को गुप्तरूप से लाकर किले मे रखा गया था। जव यह भेद खुल गया और नगर मे वावूजी के नेतृत्व मे आदोलन आरभ हो गया तव इन मजदूरो को मुक्त करना पडा।

प्लेग की महामारी मे सेवा कार्य

इलाहावाद नगर और जिले मे सन् १९१७ मे प्लेग रोग वड़ी तीव्रता से महामारी के रूप मे फैला था।* वावूजी भी अपने परिवार के साथ अहियापुर

* उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागो में प्लेग इस वर्ष महामारी के रूप में फैला था और वडी सख्या में लोगों की मृत्यु हुई थी।

का घर छोडकर निकट के दूसरे अचल अतरसुइया मे स्थित जगदीश वाग के खुले स्थान पर चले गये थे। उस समय इतने लोग मर रहे थे कि शवो को ढोने वाले भी नही मिलते थे। एक-एक परिवार मे कई कई मौतें हो रही थी। ऐसी भी स्थिति आ जाती थी कि एक मृतक का सस्कार करके वापस आने पर दूसरा शव घर मे पडा मिलता था। आसपास के देहातो मे इतने लोग मर रहे थे कि शवो को लोग नदी मे बहा देते थे। इलाहावाद नगर मे गगा और यमुना मे अनेक शव प्रतिदिन वहते हुए पहुचते थे। वावूजी ने अपने सहयोगियो के साथ इन शवो को नदियो से निकालकर उनका दाह सस्कार कराने का कार्य उठाया। नगर मे जिस क्षेत्र मे किसी मृत शरीर के पडे रहने की सूचना मिलती तो उसे श्मशान घाट ले जाने और उसका दाह-सस्कार कराने की व्यवस्था ये लोग करते थे।

नगरपालिका मे कार्य

वकालत आरभ करने के साथ-साथ वावूजी ने नगरपालिका के कार्यो मे रुचि लेना आरभ कर दिया था। वावूजी के चाचा डा० मूलचन्दजी अहियापुर अचल से नगरपालिका का चुनाव लडते थे और सदा वावूजी ही उनके लिए कार्य करते थे। चुनाव मे उनके सदा सफल होने मे मुख्य कारण वावूजी ही रहते थे। वे नगरपालिका मे उपाध्यक्ष भी वने थे और उनका नगर मे वडा सम्मान था।

अपनी लोकप्रियता के कारण ३ मार्च, सन् १९२१ को वावूजी नगरपालिका के अध्यक्ष चुने गए। सेवा परायणता, दक्षता, सूझबूझ और कर्त्तव्य भावना के साथ उन्होने अपने नगर के स्वायत्तशासन का कार्य किया। नगर की उन्नति और नगरवासियो को सुविधायें प्रदान करने के क्षेत्र मे उन्होने जो कार्य किए उनसे उनकी प्रतिष्ठा दिनोदिन वढती गई। उनके स्वभाव की यह सदैव विशेपता रही है कि व्यक्तिगत व्यवहार और कार्यो मे दलगत राजनीति को उन्होने कभी प्रभावी नही होने दिया। इसी कारण नगरपालिका का प्रत्येक सदस्य उनमे पूर्ण विश्वास रखता था और उन्हे पूरा सहयोग देता था। वावूजी के नगरपालिका के अध्यक्ष-काल के कई स्मरणीय कार्य हैं जिनमे से कुछ की चर्चा हम यहा कर रहे है।

इलाहावाद नगर मे सन् १९२१ की ग्रीष्म ऋतु मे जल-कल विभाग की मशीनो के पुरानी होने के कारण घरो मे पर्याप्त पानी नही पहुच पाता था और इस कारण जनता को वडा कष्ट था। उन्ही दिनो राज्यपाल (गवर्नर) महोदय इलाहावाद आए। उनके राजभवन (जहा अव मोतीलाल नेहरू मेडिकल कालेज है) मे अदर स्नान करने का एक छोटा-सा तालाव वना हुआ था जिसमे राज्यपाल महोदय के प्रयाग मे निवास के समय प्रतिदिन ताजा पानी भरा जाता था जिससे उसमे राज्यपाल महोदय नहा सकें। राज्यपाल के आगमन से पूर्व उनके कार्यक्रम की सूचना आ जाती थी और इस तालाव को भरने की व्यवस्था नगरपालिका

कराती थी। इस वार जव राज्यपाल महोदय का कार्यक्रम आया तो वावूजी ने इस तालाव को भरने के लिए पानी देने की व्यवस्था करने से मना कर दिया। इलाहावाद पहुचने पर जव तालाव मे पानी नही मिला और उसका कारण ज्ञात हुआ तव राज्यपाल के ए० डी० सी० स्वय वावूजी से उनके कार्यालय मे मिले। वावूजी ने उन्हें कारण समझा दिया और यह भी कहा, "मुझे विश्वास है कि जव इलाहावाद नगर की जनता को पीने के लिए पानी का दे सकना नगरपालिका के लिए कठिन हो रहा है, तव स्वय राज्यपाल महोदय भी इस समय पानी का अपने तालाव मे भरा जाना पसद नही करेंगे।" ए० डी० सी० निरुत्तर चला गया। नगरपालिका के कर्मचारी वर्ग के मन मे भय था कि कोई आफत उन पर न आए किंतु कुछ भी नही हुआ।

वावूजी को अपने कार्यालय से पता चला कि छावनी क्षेत्र को नगरपालिका के जलविभाग से जो पानी दिया जाता है उसका नियमित जल-कर कई वर्षों से सैन्य विभाग से प्राप्त नही हुआ है। कार्यालय ने यह भी वतलाया कि अनेक स्मरण-पत्र भेजे गए किंतु न तो किसी प्रकार का उत्तर प्राप्त हुआ और न जल-कर का भुगतान ही हुआ। उन दिनो सैन्य विभाग के उच्च अधिकारी मुख्यत अग्रेज ही होते थे। वे नगरपालिका के पत्रो को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। नगरपालिका के अधिकारियो को भी सैन्य विभाग के विरुद्ध कोई कार्यवाही करने मे भय लगता था। वावूजी ने अध्यक्ष के अपने अधिकार से सैन्य विभाग को पहले एक शिष्टतापूर्ण पत्र भिजवाया कि वह पिछले कई वर्षों के अवशेष जल-कर का भुगतान नगर-पालिका को तुरत कर दे। जव कोई उत्तर प्राप्त नही हुआ तो दूसरा कड़ा पत्र इस आशय का भेजा गया कि यदि एक सप्ताह के भीतर जल-कर का भुगतान नही किया जाएगा तो छावनी क्षेत्र को नगरपालिका द्वारा जल का दिया जाना एकदम वन्द कर दिया जाएगा। इस कडे पत्र की भी उन लोगो ने उपेक्षा की। उन्हे यह विश्वास था कि उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही करने का नगरपालिका के अधिकारी साहस ही नही करेंगे। किंतु जव निश्चित अवधि वीतने पर नगरपालिका के कर्मचारी पानी काटने पहुचे तव ये अग्रेज सैन्य अधिकारी वहुत तिलमिलाए। वे समझ गए कि यह केवल धमकी मात्र नही है, इसको कार्यरूप मे परिणत किया जाएगा; तव तुरत पिछले सव अवशेष जल-कर का भुगतान सैन्य विभाग ने नगर-पालिका को कर दिया।

एक दिन की वात है। एक वृद्धा स्त्री वावूजी के पास कार्यालय मे आकर चुप-चाप खडी हो गई। वावूजी ने उस से पूछा, "क्या वात है?" उसने कहा, "भइया मेरे घर के चवूतरे के नीचे की सीढी नगरपालिका के आदमी तोड़ रहे हैं। मेरा घर गली मे ऊंचाई पर है, विना सीढी के मैं अपने घर मे कैसे आ-जा सकूगी।" वावूजी ने तुरत इजीनियर को वुलाया। उनसे उस वृद्धा के चवूतरे की सीढी

तुडवाने के आदेश का कारण पूछा। इजीनियर ने वतलाया, "इस वृद्धा ने नगर-पालिका की भूमि पर अनधिकार कब्जा कर सीढी वनवा ली है और इमी कारण उसे तुडवाने के आदेश दिए गए हैं।" वावूजी ने इजीनियर से पूछा, "इसके घर का चवूतरा गली से कितना ऊचा है ?" इजीनियर ने उत्तर दिया, "लगभग तीन फुट या उससे कुछ अधिक।" वावूजी ने कहा, "तव क्या यह वृद्धा इतनी ऊचाई पर चढ़ सकती है ? इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक वार उसे अपने घर से वाहर आने-जाने के लिए कोई लकडी या लोहे की सीढी का प्रवध करना पडेगा। जव भी वह सीढी गली मे चवूतरे से टिका कर रखी जाएगी तो नगरपालिका की भूमि पर ही सीढी रहेगी। प्रत्येक नियम का भाव और अर्थ समझना चाहिए तथा नगरवासियो की कठिनाइयो को ध्यान मे रखकर नियमो का पालन होना चाहिए। जो चीज सभव नही है उसे नियम के नाम पर करना अनुचित है।" फिर उन्होने वृद्धा से कहा, "जाओ माता, अव कोई तुम्हारी सीढी नही तोडेगा। यदि फिर कभी कोई ऐसी परेशानी हो तो मेरे पास चली आना।"

नगरपालिका का अध्यक्ष वनते ही वावूजी ने इलाहावाद के चौक वाजार मे वेश्याओ के खुले व्यापार पर रोक लगाने की समस्या पर विचार किया। उनको इस वात की चिंता थी कि अवोध वालको और युवको पर इस प्रदर्शन का जो वुरा प्रभाव पडता है उससे उन्हे कैसे वचाया जाए। उन्होने निर्णय किया और आदेश दिया कि समस्त वेश्याओ को जो चौक क्षेत्र मे रहती है वहा से तुरत हटा दिया जाए। चौक के नगरपालिका वाजार के दोनो ओर की सडको पर नीचे दुकानें और ऊपर इनके चकले थे। नगरपालिका के अध्यक्ष के इस आदेश से वेश्याए अत्यत परेशान हुईं। इसे वह सीधे अपनी जीविका पर आघात समझ रही थी। कुछ ने वावूजी के घर पर आकर इसके विरोध मे प्रदर्शन भी किया, किंतु वह अपने निर्णय पर अडिग रहे। फलस्वरूप वेश्याओ को उन स्थानो से हटना पडा। वे हटकर इधर-उधर गईं, कुछ मीरगज मोहल्ले मे जाकर वसी, किंतु मुख्य वाज़ार से यह कोढ दूर हुआ।

वावूजी स्त्री शिक्षा के पक्षपाती थे और चाहते थे कि यह शिक्षा भारतीय सस्कृति के अनुरूप हो और कन्याओ को केवल कुछ विपयो का ज्ञान मात्र न देकर उन्हें उनके कर्त्तव्यो और उत्तरदायित्वो की भी शिक्षा दी जाय। सन् १९०४ मे वह गौरी पाठशाला की स्थापना कर चुके थे। जव वह नगरपालिका के अध्यक्ष हुए तव वालिकाओ की उच्च शिक्षा के लिए कोई अच्छी सस्था के न होने की कमी की ओर भी उनका ध्यान गया। नगरपालिका मे एक सी सस्था के स्थापित किए जाने का प्रस्ताव पारित किया गया। वावूजी के जेल चले जाने के वाद यह योजना नगरपालिका की पत्रावलियो मे ही पडी रही। किंतु कुछ समय वाद उनके मित्र श्री सगम लाल अग्रवाल ने उसे नगरपालिका से स्वतत्र रहकर

कार्यरूप दिया। बाबूजी द्वारा प्रस्तावित यह योजना "प्रयाग महिला विद्यापीठ" के नाम से आज भी प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के नेतृत्व मे फल-फूल रही है।

असहयोग आदोलन के सबध मे बाबूजी ७ दिसबर, १६२१ को गिरफ्तार कर लिए गए। मुकदमा चलने पर इन्हे १८ मास की जेल हुई। शासन ने १० मार्च, १६२२ की अपनी राजाज्ञा द्वारा इन्हे नगरपालिका के अध्यक्ष पद से पृथक् कर दिया। अधिकाश सदस्यो ने शासन के इस निर्णय के विरोध मे नगरपालिका की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिए। फलस्वरूप शासन ने सन् १६२२ के अक्टूबर मे इलाहाबाद की नगरपालिका को ही भग कर दिया। इसके बाद जब गाधीजी ने असहयोग आदोलन स्थगित किया और सब काग्रेसी नेता जेल से छूटकर बाहर आए तब सन् १६२३ मे नगरपालिका का चुनाव पुन हुआ। काग्रेस ने इस चुनाव मे भाग लेने का निश्चय किया और इसमे काग्रेस की ओर से प्रत्याशी चुनने तथा चुनाव का सगठन, सचालन तथा व्यवस्था का सब भार बाबूजी पर डाला गया। बाबूजी ने जिन लोगो को प्रत्याशी के रूप मे चुना था उनमे तीन मुसलमान थे—सर्वश्री कमालउद्दीन जाफरी, हैदर मेहदी और जहूर अहमद। इस चुनाव मे जाफरी साहब और हैदर मेहदी साहब सफल नही हुए। जब सदस्यो का चुनाव हो चुका तो चेयरमैन के चुनाव की बारी आई। अपने मित्रो और सहयोगियो के आग्रहवश बाबूजी ने पुन. अध्यक्षपद स्वीकार करने की अपनी स्वीकृति दे दी। इसी बीच नगर के मुसलिम लीग के एक नेता खान बहादुर अब्दुल बाकी खा ने बाबूजी के पास सदेशा कहलवाया कि वह हिन्दू मुसलिम एकता के बहुत बड़े हामी अपने को कहते है, क्यो नही वह इस बार एक मुसलमान को अध्यक्ष हो जाने का अवसर देते? बाबूजी को बात लग गई। उन्होने तुरत कहा कि मैं इसके लिए तैयार हू, किंतु किस मुसलमान व्यक्ति को इस पद के लिए खडा किया जाय यह हम निश्चय करेंगे। उन दिनो मुसलिम लीग द्वारा मुसलमानो मे काग्रेस के विरुद्ध बडा दूषित प्रचार किया जा रहा था। बाबूजी ने काग्रेस के अच्छे कार्यकर्त्ता और अपने सहयोगी श्री कमालउद्दीन जाफरी का नाम अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तावित किया। खान बहादुर बाकी खा साहब ने पहले तो यह नाम स्वीकार कर लिया, किंतु बाद मे अन्य मुसलिम लीग के सदस्यो के दबाव से अध्यक्ष पद के चुनाव से कुछ पूर्व फिर बाबूजी के पास सदेश भेजा कि मुसलमानो को जाफरी साहब का नाम स्वीकार नही है। अब हम सब चाहते है कि आप ही अध्यक्ष पद के लिए खडे हो। साधारणत. यह कोई बडी बात नही थी और आज की राजनीति मे यह तमाशा प्रतिक्षण होता है, किंतु बाबूजी ने इसे स्वीकार नही किया और कहा कि उन्होने जब एक बार निश्चय कर लिया तो उस निश्चय पर वह अटल रहेगे। नगर के अनेक वरिष्ठ नागरिको ने, हिन्दू तथा मुसलमान दोनो

ने ही, बहुत चाहा कि बाबूजी ही इस पद को ग्रहण करें किंतु वह अपनी बात पर दृढ रहे। अत मे उन्होने प० जवाहर लाल नेहरू को इस पद को स्वीकार करने के लिए तैयार किया और प० नेहरू अध्यक्ष चुने गए।

इलाहाबाद मे स्थगित दशहरा को पुन. आरभ कराना

यह बात सन् १९२४ की है। जेल से छूटने के कुछ समय बाद जब दशहरे का समय निकट आया तब बाबूजी को पता चला कि हिन्दू-मुसलमानो के पारस्परिक मतभेद और झगडो के कारण इलाहाबाद नगर मे पिछले दो वर्षो से रामलीला से सबधित रामदल निकालने का कार्यक्रम नही हो रहा है। इसका एक अन्य कारण यह भी था कि राम, लक्ष्मण और सीता बनने के लिए लोग अपने बच्चो को देने मे डरते थे, क्योकि उन्हे यह भय था कि दल पर यदि मुसलमानो ने आक्रमण किया तो सबसे अधिक भय इन्ही बच्चो के जीवन का होगा। यद्यपि बाबूजी धर्म के बाह्य आडबरो मे आस्था नही रखते थे, फिर भी उन्हे हिंदुओ का यह दृष्टिकोण बडा कायरतापूर्ण लगा और उन्होने कहा कि वह अपने बच्चो को राम, लक्ष्मण और सीता का अभिनय करने के लिए देंगे तथा रामदल अवश्य निकलना चाहिए। यदि बच्चो का बलिदान हो जाय तो उन्हे इसकी चिंता नही होगी। बाबूजी सदैव इस बात पर बल देते थे कि व्यक्ति को अन्याय के प्रति कभी कायरता नही प्रदर्शित करनी चाहिए, चाहे इसमे उसे अपना बलिदान ही क्यो न देना पडे। उनके इस प्रकार बीच मे पडने के फलस्वरूप रामदल उस वर्ष निकला। बाबूजी दल के साथ चले और किसी प्रकार की कोई अप्रिय घटना नही घटी। इलाहाबाद नगर के मुसलमान भाइयो मे भी बाबूजी के प्रति श्रद्धा और सम्मान का भाव था, अत उनकी ओर से भी रामदल निकालने मे पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। उस वर्ष के बाद से रामदल फिर प्रति वर्ष परपरा के अनुसार निकलने लगा।

अछूतोद्धार का कार्य

हिन्दू समाज मे अछूत कहे जाने वाले वर्ग के प्रति सवर्णों का जो व्यवहार रहा है वह हिंदू धर्म का सदा एक कलक कहा जाएगा। समाज सेवा के क्षेत्र मे प्रविष्ट होते ही बाबूजी को इस वर्ग के प्रति हो रहे अन्याय का अनुभव हुआ और उनका ध्यान इनके उत्थान की ओर गया। नगर मे उनकी गदी बस्तियो मे जाकर जहा एक ओर बाबूजी उन्हे स्वच्छता से रहने की बात समझाते थे, वही दूसरी ओर सवर्ण लोगो से उनके प्रति मानवोचित व्यवहार अपनाने का आग्रह करते थे और समझाते थे कि सवर्णों के इस व्यवहार के कारण ही अनेक निर्धन और तिरस्कृत इस वर्ग के हिंदू अपना धर्म छोडकर दूसरा धर्म अपनाते जा रहे हैं।

बाबूजी पर बचपन से ही संतमत का प्रभाव पड़ा था और उन्हे यह शिक्षा मिली थी कि मनुष्यो के बीच छूत-अछूत का भेद अथवा जन्म के आधार पर ऊच-नीच का अंतर नही होना चाहिए। जब वह नगरपालिका के अध्यक्ष हुए तब उन्हे इस वर्ग की सेवा का अधिक अवसर मिला। उस समय उन्होंने गदी बस्तियो मे स्वच्छता लाने, पानी की समुचित व्यवस्था करने तथा उनके बच्चो को शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराने का काम नगरपालिका की ओर से कराया। अपने इन सब कार्यों के कारण वह इस वर्ग मे भी बड़े लोकप्रिय हो गये थे। असहयोग आदोलन के समाप्त होने के बाद जब जेल से छूटकर बाबूजी आए तब सन् १९२३ मे लाला लाजपतराय ने इनके सुपुर्द पूरे उत्तर प्रदेश का अछूतोद्धार का कार्य किया। लाला लाजपत राय जी ने इन दिनो लोक सेवक मडल के माध्यम से, जिसके वह स्वय संस्थापक और अध्यक्ष थे, उत्तर भारत मे अछूतोद्धार का कार्य वृहत् और सगठित रूप मे आरभ किया था। उत्तरप्रदेश मे अछूतोद्धार के कार्य के सचालन तथा सगठन का पूरा भार बाबूजी पर डाला गया। लालाजी ने लोक सेवक मडल के एक सदस्य हरनाम सुन्दर दासजी को भी इस कार्य के सगठन मे बाबूजी की सहायता करने के लिए उनके पास इलाहाबाद भेज दिया। सन् १९२५ तक पूरे उत्तर प्रदेश मे बाबूजी ने अछूतोद्धार का कार्य सगठित तथा व्यवस्थित रूप मे फैलाया। इसी वर्ष अप्रैल के महीने मे बाबूजी को लालाजी ने लाहौर अपने पास पंजाब नेशनल बैंक का कार्य संभालने के लिए बुला लिया। तब इस प्रदेश का अछूतोद्धार का काम लोक सेवक मंडल के कुछ अन्य सदस्यो के सुपुर्द किया गया।

लोक सेवक मडल के तत्त्वावधान मे मेरठ के 'कुमार आश्रम' की स्थापना मे बाबूजी का सक्रिय प्रयास था। बाद मे लोक सेवक मडल के दूसरे आजीवन सदस्य श्री अलगूराय शास्त्री ने इसका कार्यभार सभाला। यह आश्रम हरिजन विद्यार्थियो के लिए छात्रावास के रूप मे बनाया गया था और आज भी यह अच्छी तरह चल रहा है।

टेहरी गढ़वाल के हरिजनो की 'डोला-पालकी' समस्या हल करने मे भी बाबूजी ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वहा के सवर्ण हिंदू हरिजनो को विवाह आदि के अवसर पर भी 'डोला-पालकी' प्रयोग नही करने देते थे। कोई हरिजन यदि ऐसा करता था तो सवर्ण लोग उसके ऊपर बहुत अत्याचार करते थे। धीरे-धीरे बात बहुत बढ गयी और डर हो गया कि इनमे परस्पर भीषण मुठभेड़ होगी। इस अवसर पर बाबूजी के प्रयत्नो से समस्या का सतोषपूर्ण हल निकला और हरिजनो का 'डोला-पालकी' प्रयोग करने का अधिकार बना रहा। इस कार्य मे हरिजन सेवक सघ की उपाध्यक्षा श्रीमती रामेश्वरी नेहरू और समाज-सेवक श्री बल्देव सिंह आर्य का बाबूजी को बड़ा सहयोग मिला। अब शासन

ने इस सबध का एक अधिनियम भी बना दिया है।

पटेल स्मारक निधि समिति की स्थापना और उसके द्वारा कार्य

सरदार बल्लभ भाई पटेल के साथ बाबूजी का बहुत निकट का सबध रहा था। दोनो ही भारतीय सस्कृति के प्रतीक थे और इसी कारण दोनो मे एक-दूसरे के प्रति बहुत विश्वास और आस्था थी। सरदार पटेल के निधन के समय बाबूजी भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होने उस समय स्वर्गीय सरदार पटेल की स्मृति मे कोई उपयोगी और रचनात्मक कार्य देश भर मे आरभ करने की इच्छा से पटेल स्मारक समिति की स्थापना की। इस कार्य के लिए एक करोड रुपए की धनराशि एकत्र करने के लिए अपील की गई। कुछ ऐसी परि-स्थितिया उत्पन्न हुई कि अपनी योजना को पूरा करने से पूर्व ही बाबूजी ने काग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। किंतु इस समिति मे वह बराबर सदस्य बने रहे।

केंद्रीय समिति के अतर्गत प्रत्येक प्रदेश मे एक प्रादेशिक समिति गठित की गई। उत्तर प्रदेश की समिति के कार्य का पूरा भार बाबूजी पर ही डाला गया। वह इस समिति के बराबर सयोजक रहे। केंद्रीय समिति ने निश्चय किया कि जो धन इस निधि मे एकत्र किया जाय उसे गावो मे और विशेष रूप से हरिजन बस्तियो मे वहा के निवासियो के कष्टो को दूर करने मे व्यय किया जाय। इस योजना के अतर्गत ग्रामीण क्षेत्रो मे पीने के पानी की सुविधा उपलब्ध कराने को प्राथमिकता देने का विधान रखा गया।

बाबूजी के प्रयास से उत्तर प्रदेश मे लगभग ४०० नये कूए बने, १२५ कूपो का जीर्णोद्धार हुआ, १२ नलकूप तथा एक जल-वितरण योजना भी तैयार हुई। कुछ तालाबो का भी जीर्णोद्धार कराया गया। ग्रामीण क्षेत्रो मे कार्यकर्त्ताओ को आर्थिक साधन जुटाने मे कठिनाई होती थी, अन्यथा कुछ और भी कार्य हो सकता था।

अपनी मृत्यु के कुछ दिनो पूर्व तक बाबूजी इस समिति के सयोजक रहे और इसके कार्य का सचालन करते रहे। अपनी मृत्यु से पूर्व ५ जून, १९६२ की बैठक मे उन्होंने इस पद से त्यागपत्र दे दिया और उनके स्थान पर इन पक्तियो की लेखिका, रानी टडन, इस समिति की सयोजिका चुनी गई।

नवीन सेवा आश्रम की स्थापना

दीन दुखियो और अपाहिजो तथा विकलागो की सेवा की भावना बाबूजी मे सदैव से प्रचुर मात्रा मे थी। वह यह कार्य बराबर करते थे और जिन सस्थाओ द्वारा ऐसे कार्य किए जाते थे उन्हे यथाशक्ति सहायता, प्रेरणा और निर्देशन भी

देते रहते थे। सन् १९५१ मे उनके मित्र और सहयोगी श्री नन्दकिशोर अग्रवाल के पुत्र नवीन किशोर की युवावस्था मे ही वायुयान दुर्घटना मे मृत्यु हो गई। शोक विह्वल पिता को सांत्वना देते हुए वावूजी ने उनसे कहा कि वह नवीन के नाम को चिरस्थायी रखने के लिए उसकी स्मृति मे कोई समाज सेवा का कार्य आरभ करें। इससे स्वय उन्हे भी शांति और सतोप मिलेगा। अग्रवालजी ने उनकी वात स्वीकार की और दो-चार वैठको मे कार्य की रूपरेखा तैयार हुई। 'नवीन सेवा आश्रम न्यास' की स्थापना की गयी जिसका मुख्य उद्देश्य दीन-दु.खी, अपाहिज और विकलागो की सेवा-सुश्रूपा रखा गया। इस न्यास ने नगर-पालिका से करेलावाग मे स्थित उसके कुछ भवन और भूमि पट्टे पर प्राप्त कर वहा आश्रम की स्थापना की। अग्रवालजी को प्रेरणा देकर ऐसी एक समाजोपयोगी सस्था की स्थापना कराना वावूजी की ही देन थी। आरभ मे कई वर्पो तक वावूजी ही इसके अध्यक्ष भी रहे और इसके कार्य को दिशा देते रहे। आज भी यह आश्रम अपने सीमित साधनो के द्वारा इस सेवा कार्य मे लगा हुआ है।

भूदान कार्य और ग्राम गृह-वाटिका योजना

आचार्य विनोवा भावे ने सन् १९५२ मे भूदान-यज्ञ के नाम से एक योजना आरभ की थी। इसका मुख्य उद्देश्य था ग्रामीण क्षेत्रो मे जिनके पास अधिक भूमि है उनसे भूमि दान मे प्राप्त करना तथा उसे भूमिहीनो मे वितरित करना जिससे यह वर्ग कृपि द्वारा अपना जीविकोपार्जन कर सके। उत्तर प्रदेश मे इस योजना को सफल वनाने के लिए एक समिति का गठन किया गया था जिसके वावूजी अध्यक्ष थे। गाव मे वस्तिया किस प्रकार नियोजित हो और पूरे गाव का क्या रूप हो इस सवध मे वावूजी की स्वय की भी एक कल्पना थी। इस सवध की अपनी योजना को उन्होंने 'ग्राम गृह-वाटिका योजना' नाम दिया था। विनोवाजी ने उनकी इस योजना को वहुत पसद किया था और भूदान-यज्ञ के अतर्गत इस योजना के अनुसार गाव वसाए जाने की सहमति प्रकट की थी। भूदान समिति ने वावूजी के निर्देशन मे इस प्रदेश मे अच्छा काम किया और वहुत से भूमिहीनो को दान से प्राप्त भूमि वितरित कर उन्हे वसाया गया। इस सवध मे वावूजी ने उत्तर प्रदेश भूदान यज्ञ समिति के अध्यक्ष के रूप मे जो वक्तव्य जनता के नाम २ मार्च, सन् १९५५ को प्रसारित किया था उसे हम मूलरूप मे परिशिष्ट २ मे दे रहे हैं। इससे उनकी 'ग्राम गृह-वाटिका योजना' की कल्पना तथा उनके विचार स्पष्ट हो जाएगे।

सुदूर ग्रामीण क्षेत्रो का जितना भ्रमण वावूजी ने किया उतना कदाचित् कम ही नेताओ ने किया होगा। इसी कारण वह गावो की समस्याओ, वहा की अस्वास्थ्यकर जीवन-प्रणाली तथा ग्रामीणो के अन्य कष्टो से भली प्रकार परिचित थे। वह गावो को नये ढग से वसाकर सुदर और स्वास्थ्यप्रद वनाने की कल्पना

किया करते थे। गावो का रूप कैसा हो इस सबध मे उन्होने अपने विचार कई स्थानो पर प्रकट किए है। प्रयाग मे इलाहाबाद-प्रतापगढ मार्ग पर गोरांव मे चार-पाच किलोमीटर की दूरी पर एक ऐसी ही योजना उन्होने आरंभ की थी। कार्यकर्त्ताओ की उदासीनता तथा उनमे से कुछ की स्वार्थसिद्धि की भावना और बाबूजी के अस्वस्थ हो जाने के कारण उनकी यह योजना पूर्णरूप से सफल नहीं हो सकी।

जब २१ जून, १९५२ को विनोबाजी ने पद-यात्रा के मध्य इलाहाबाद जिले मे प्रवेश किया तब अन्य लोगो के साथ बाबूजी भी वहा उनके स्वागतार्थ उपस्थित थे। विनोबाजी ने उनका आशीर्वाद अपने कार्य के लिये मागा, "आप ऋषि हैं और मैं अपने कार्य के लिए आपका आशीर्वाद चाहता हू।" यह कहकर विनोबा जी बाबूजी के चरण छूने झुके। बाबूजी ने उन्हे बीच मे ही उठाकर गले लगा लिया और कहा, "समाज मे उचित व्यवस्था लाने की दृष्टि से आपका यह कार्य महान् और अद्वितीय है। भगवान आपके प्रयत्न को निस्सदेह ही सफलता प्रदान करेगा।"

☐

राजनीति का क्षेत्र

महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी के घनिष्ठ सपर्क मे वचपन से ही रहने के कारण वावूजी मे समाज सेवा और देशप्रेम का अकुर वाल-अवस्था मे ही आरोपित हो गया था, जो आयु के साथ धीरे-धीरे प्रस्फुटित होने लगा और अवसर मिलते ही वह सक्रिय राजनीति मे भाग लेने लगे। वाल्य अवस्था मे उनकी भावनाओ का एक सजीव उदाहरण नीचे लिखी घटना है—

एक दिन वह अपने विद्यालय से घर वापस आ रहे थे। कैंनिग रोड (अव महात्मा गाधी मार्ग) पर उनके आगे कुछ लडके, जिनमे ऐंग्लो इडियन अधिक थे, भारतीयो की आलोचना वड़ी कटु और भद्दी भाषा में कर रहे थे। वावूजी से सहन न हुआ और वह अकेले ही उनसे भिड गए। उन लड़को ने अग्रेजी मे वोलना और गाली वकना आरभ किया। वावूजी का भी अग्रेजी भाषा पर पूरा अधिकार था। वह उनको उत्तर देते गए किंतु अपनी भाषा सयत रखी। काफी देर तक वहस चली और ऐसा लगा कि कही हाथापाई न होने लगे। इसी वीच उधर से निकलते हुए कुछ सभ्रात लोगो ने इन लोगो के मध्य पडकर वीच-वचाव कराया। यह प्रवृत्ति उनकी वरावर रही। वह गलत वात किसी की भी सहन नही कर सकते थे और निर्भीकता से उसका विरोध करते थे।

कांग्रेस से संवंध

कांग्रेस की राजनीति से वावूजी का सीधा सपर्क प्रथम वार सन् १८९९ मे हुआ जव वह काग्रेस के लखनऊ अधिवेशन मे दर्शक के रूप मे गए। सन् १९०५ मे अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वनारस अधिवेशन मे वह स्वयसेवक वन कर गए। उनका कार्य और उत्साह देखकर उन्हे अध्यक्ष, माननीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले, का अंगरक्षक नियुक्त किया गया। इसके वाद सन् १९०६ में कलकत्ता अधिवेशन मे वह प्रथम वार प्रतिनिधि वन कर गए।

आरंभ मे वावूजी काग्रेस के सभी अधिवेशनो मे तो नही पहुंच पाते थे किंतु उसकी कार्यविधि से परिचित रहते थे। काग्रेस के प्रति उनमे अटूट आस्था थी। लाल[1], वाल[2], पाल[3] उनके आदर्श थे और इनकी ओजस्विनी वक्तृताओ से वह वहुत प्रभावित थे।

जलियावाला वाग की घटना

जनता ने आशा की थी कि प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के वाद ब्रिटिश शासन अपने दिए गए वचन के अनुसार भारत को स्वशासन की दिशा मे कुछ अधिकार देगा, किंतु सन् १९१९ मे जो रौलट ऐक्ट शासन ने वनाया वह वहुत निराशाजनक था। इस ऐक्ट के विरोध मे जगह-जगह सभायें हो रही थी। अमृतसर के जलियावाला वाग मे १३ अप्रैल सन् १९१९ को इसी उद्देश्य से एक सभा आयोजिन की गई। यह वैशाखी का दिन भी था जो पजाव मे विशेष महत्त्व का दिन माना जाता है। सभा मे वडी सख्या मे जनता एकत्रित थी। पजाव सरकार ने सभा पर रोक लगा दी किंतु फिर भी सभा आयोजित की गई। अपराह्न मे सभा आरभ ही हुई थी कि वहुत सी शस्त्रधारी पुलिस लेकर अग्रेज पुलिस अधीक्षक, जनरल डायर, सभा-स्थल पर पहुचा। विना किसी चेतावनी के इस शान्तिपूर्ण सभा पर पुलिस ने गोलियो की वर्षा आरभ कर दी। वडी सख्या मे लोग मरे और घायल हुए। जलियावाले वाग की इस रोमाचकारी घटना ने सभी की भाति वावूजी के भी हृदय को झकझोर कर रख दिया और अग्रेजो के प्रति उनकी घृणा और उनके रोष को वहुत वढाया।

जलियावाले वाग की घटना की जाच के लिए काग्रेस के कुछ नेता गए। वावूजी भी उस दल के एक सदस्य थे। इन लोगो ने जव पजाव का दौरा किया और अमृतसर मे इस वाग का दृश्य देखा तथा वहा पर निरीह जनता को अग्रेजो द्वारा गोलियो से भून दिए जाने का पूरा विवरण इन्हे ज्ञात हुआ तव अग्रेजी शासन के घोर अत्याचार और नृशसता का दृश्य इनके सामने आया। समस्त देश मे अग्रेजो के विरुद्ध आग की एक लहर-सी फैल गई। काग्रेस की राजनीति ने भी एक नया मोड लिया। अव तक की काग्रेस की नीति अग्रेजी शासन के साथ सहयोग की रही थी और काग्रेस का यह विश्वास था कि अग्रेजी शासन धीरे-धीरे हमे देश का शासन सौप देगा, किंतु जलियावाले वाग की इस घटना ने लोगो की आखो से यह पर्दा हटा दिया और सभी समझने लगे कि अग्रेज शासक स्वय

---

१ लाला लाजपत राय।

२ लोकमान्य वाल गगाधर तिलक।

३ श्री विपिन चन्द्र पाल।

देश का शासन भारतीयो को कभी न हस्तांतरित करेगा। जनता को स्वयं शक्ति सचित कर अग्रेजो से अपने देश का शासन वलपूर्वक लेना होगा।

असहयोग आंदोलन

अमृतसर मे दिसवर सन् १९१९ मे कांग्रेस का अधिवेशन पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे हुआ। इसमे पंजाव मे घटित हुई नृशस दुर्घटनाओ की जाच के लिए एक कमेटी नियुक्त की गई। वावूजी भी इसके एक सदस्य थे। इस कमेटी की रिपोर्ट २५ मार्च १९२० को प्रकाशित हुई। इसमे माग की गई कि अपराधियो को, जिनमे मुख्य थे जनरल डायर और गवर्नर सर माइकेल ओडायर, दड दिया जाय। ६ से १३ अप्रैल तक देश भर मे राष्ट्रीय सप्ताह मनाए जाने की भी घोषणा की गई जिसका जनता ने स्वागत किया। इसी अधिवेशन मे महात्मा गाधी ने यह प्रस्ताव रखा कि यदि काग्रेस की मागो को व्रिटिश शासन स्वीकार न करे तो असहयोग आंदोलन आरभ किया जाय। कलकत्ते में सितवर १९२० मे (६ से ९ सितवर तक) काग्रेस का एक विशेप अधिवेशन लाला लाजपत राय जी की अध्यक्षता मे हुआ जिसमे असहयोग आदोलन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। आदोलन की रूपरेखा वनाने तथा उसके निर्देशन और प्रवर्तन का पूरा अधिकार महात्मा जी को दिया गया। इस आदोलन की योजना मे विदेशी वस्त्रो का वहिष्कार और हाथ के काते सूत और हाथ द्वारा वुने वस्त्रो (खादी) का प्रचार, कौंसिलो का वहिष्कार, कचहरियो का वहिष्कार, अग्रेजी स्कूल-कालेजो का विद्यार्थियो द्वारा वहिष्कार तथा मद्य निषेध आदि मुख्य कार्यक्रम थे। कलकत्ता अधिवेशन मे स्वीकृति मिलने के वाद गाधी जी ने आदोलन की घोषणा कर दी और आदोलन धीरे-धीरे पूरे देश मे फैल गया।

वावूजी ने असहयोग आदोलन मे सव कुछ त्याग कर अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य से भाग लिया। काग्रस के निश्चय के अनुसार सन् १९२० मे ही उन्होने अपनी वकालत छोड दी और एक वार छोडी तो पुन आरंभ नही की, यद्यपि वहुत से वकील नेताओ ने आदोलन की समाप्ति के वाद अपनी-अपनी वकालत पुन. आरंभ कर दी थी। इसी प्रकार अग्रेजी स्कूलो के वहिष्कार की वात स्वीकार होते ही अपने प्रथम तीन पुत्रो को, जो उस समय अध्ययन कर रहे थे, अग्रेजी स्कूलो से हटा लिया। उस समय हमारे सवसे वडे भाई स्वामीप्रसाद म्योर सेंट्रल कॉलेज मे इटर कक्षा के विद्यार्थी थे। उनसे छोटे भाई गुरुप्रसाद हाईस्कूल की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। तीसरे पुत्र सत प्रसाद सी० ए० वी० स्कूल की छठी कक्षा के विद्यार्थी थे। हम तीनो अपनी अग्रेजी स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई वंद कर अपनी-अपनी आयु के अनुसार देश का कार्य करने लगे। तिलक स्वराज्य निधि के लिए चदा एकत्र करना तथा काग्रेस के स्वयसेवक के रूप मे काम करना,

पर्याप्त थी। अत जिस समय उन्होने अपनी वकालत छोडी और असहयोग आन्दोलन मे अपने को समर्पित किया, उस समय उनके पास कोई विशेष पूजी जमा नही थी। किंतु उन्होने यह चिंता नही की कि परिवार का कार्य कैसे चलेगा। वकालत करते समय उनके पास एक घोडागाडी (टमटम) थी। असहयोग आन्दोलन मे सम्मिलित होने पर इसे वेचकर वह कुछ धन पा सकते थे, किंतु ऐसा न कर उन्होने इस टमटम को भी काग्रेस के उपयोग के लिए दान मे दे दिया। उनका आदर्श तो कवीर का यह दोहा था—

कबिरा खडा वजार मे लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारै आपना चलै हमारे साथ॥

हमारे वडे भाई ने आदोलन मे अपनी कालेज की पढाई छोडने के बाद साहित्य भवन लिमिटेड के प्रवधक के रूप मे कार्य करना आरभ किया था जहा से उन्हे चालीस रुपए मासिक पारिश्रमिक के रूप मे मिलता था। लाला सावल दास खन्ना की दुकान मे वावूजी ने किसी समय दो हजार रुपए जमा किए थे। उसका व्याज बीस रुपए मासिक मिलता था। एक अन्य सत्सगी व्यापारी की दुकान मे भी किसी समय कुछ रुपए वावूजी ने जमा किए थे जहा से तीस रुपए मासिक व्याज मिलता था। इस प्रकार जिस समय वावूजी ने वकालत छोडी उस समय परिवार की कुल आय केवल नव्वे रुपए मासिक थी। इसमे से इक्कीस रुपए मासिक मकान का किराया देना पडता था।

अपने मित्रो और अतिथियो को भोजन कराने तथा निर्धनो की सहायता करने का बाबूजी का विशेष स्वभाव आरभ से रहा था। जेल मे भी वह अपने इसी स्वभाव के अनुसार अन्य राजनीतिक कैदियो की सहायता करते रहते थे। उनकी माग के अनुसार हमारे बडे भाई फल, मिठाई तथा अन्य भोजन सामग्री उनके पास जेल मे भेजते रहते थे जिमे वह दूसरे राजनीतिक कैदियो मे वितरित करते थे। हम लोग कितना आर्थिक कष्ट उठा रहे थे इसकी कोई चिंता उन्हे नही थी। देश के कुछ वडे नेताओ तथा उनके मित्रो को वावूजी की आर्थिक स्थिति की कुछ जानकारी अवश्य थी। उन दिनो काग्रेस कोष से कार्यकर्त्ताओ के परिवारो को आर्थिक सहायता दिये जाने का क्रम चलाया गया था। वावूजी से बहुत आग्रह किया गया कि वह भी इस कोप से परिवार के लिए सहायता लेना स्वीकार कर लें, किंतु उन्होने इसे स्वीकार नही किया। इन्ही दिनो श्री जमनालाल वजाज ने भी एक अलग निधि पृथक् कर उसका एक ट्रस्ट बनाया था जिससे स्वतत्रता की लडाई मे भाग लेने वाले व्यक्तियो को उनके परिवारो के भरण-पोपण हेतु आर्थिक सहायता दिए जाने का विधान था। वजाजजी ने इस ट्रस्ट से हमारे परिवार की सहायता के लिए स्वय एक पत्र वावूजी के नाम इलाहावाद के घर के पते पर भेजा। वावूजी उस समय गोडा जेल मे थे। इस पत्र को लेकर स्वय श्री वियोगी हरि

वाबूजी से गोडा जेल मे मिले। वावूजी ने हरि जी से कहा कि वह उनकी ओर से जमनालालजी को एक धन्यवाद का पत्र लिख दें तथा यह भी लिख दें कि उन्हे कोई आर्थिक सहायता स्वीकार नही है। उनका कहना था, "आर्थिक मदद करने की इच्छा करना मेरा अपमान करना है। मैं देश सेवा का व्रत मलीन नही करना चाहता। समस्त परिवार नष्ट हो जाय फिर भी मैं लोकसेवा के विक्रय के लिए तैयार नही हूं।"

जेल जाते समय परिवार के हम सब लोगो को भी वह यही आदेश दे गये थे कि कभी भी यदि कोई हम लोगो को किसी प्रकार की आर्थिक सहायता देना चाहे तो हम स्वीकार न करे। हम सवने उनकी इस भावना का बरावर ध्यान रखा। देश के कुछ नेताओ ने तथा वावूजी के कुछ मित्रो ने कई वार हमारे बड़े भाई और हमारी मा को आर्थिक सहायता देनी चाही, किंतु न तो हमारे वडे भाई ने और न हमारी मा ने इसे स्वीकार किया। महामना मालवीयजी स्वय एक दिन हमारी मा से घर पर मिलने आए और वहुत आग्रह किया कि वह परिवार के लिए उनसे आर्थिक सहायता ले लें किंतु हमारी मा ने नम्रतापूर्वक उत्तर देकर उसे अस्वीकार कर दिया।

जेल से छूटने के वाद भी वावूजी का लोगो के आतिथ्य सत्कार का तथा निर्धनो को सहायता देने का वही क्रम चलता रहा। वावूजी के देश के एक प्रमुख नेता होने के कारण कार्यकर्त्ताओ तथा अतिथियो की एक वडी संख्या हमारे घर पर प्रतिदिन एकत्रित रहती थी। घर मे जो कुछ रूखा-सूखा रहता था उसी से अतिथियो की सेवा की जाती थी।

घर की इस विपन्न आर्थिक स्थिति को कुछ सुधारने की चिंता हमारे वडे भाई को वरावर वनी रहती थी। उन्होंने इसी दृष्टि से मुझे (सत प्रसाद) मशीन की कढाई का काम सीखने के लिए उन्ही दिनो कानपुर भेजा था। उस समय मेरी अवस्था लगभग १३ वर्ष की थी। एक महीने कानपुर मे रहकर कढाई का काम मैंने सीखा। फिर हमारे वडे भाई ने ४२५ रु० की एक कढाई की मशीन खरीदी और इलाहावाद आकर मैंने कढ़ाई का काम आरंभ किया। विशेष आर्थिक लाभ तो इस कार्य से नही हो सका क्योकि मेरी आयु छोटी थी और अनुभव भी नही था, फिर भी कोई आर्थिक घाटा नही उठाना पडा। उन्ही दिनो वियोगी हरिजी भी एक प्रकार से हम लोगो के वडे के रूप मे अधिकाशत हम लोगो के साथ ही रहते थे। हमारे वड़े भाई गुरुप्रसाद जी के प्रति उनका विशेष स्नेह था। उन्हे और मुझे हिंदी साहित्य का अध्ययन हरिजी ने ही कराया। वह भी हमारे परिवार की प्रत्येक चिंता मे अपने को सम्मिलित रखते थे और यथाशक्ति उसे दूर करने की चेष्टा करते थे। उनके रहने से हम लोगो को वडा मानसिक वल मिलता था।

साहित्य भवन लिमिटेड के अपने कार्य के साथ हमारे वडे भाई ने खादी तथा

ये ही मुख्य कार्य उन दिनो हमारे सामने थे। इसी समय हिंदी विद्यापीठ की ओर से बच्चो का एक विद्यालय भी बाबूजी ने आरभ कराया था। यह विद्यालय जानसेनगज मे हम लोगो के निवासस्थान के बगल की गली के किनारे के भवन मे आरभ किया गया था। हम दो भाई, गुरुप्रसाद और सत प्रसाद, इस विद्यालय मे ही पढने लगे थे तथा साथ मे काग्रेस का काम भी करते थे।

आदोलन के नेता के रूप मे

नगर और जिले मे आदोलन के सगठन और सचालन का पूरा भार बाबूजी के कधो पर ही था। लगभग प्रतिदिन ही वह प्रात काल घर से चल पडते और कभी किसी गाव मे और कभी किसी दूसरे गाव मे चक्कर लगाते, सभाओ मे भाषण देते, गाव की जनता को आदोलन मे भाग लेने के लिए प्रेरणा देते और रात्रि मे घर वापस लौटते थे। कभी-कभी तो रात्रि के बहुत बीतने पर ही वह घर लौट पाते थे। इन दिनो मीलो उन्हे गावो मे प्राय पैदल ही चलना पडता था। तन पर केवल एक खादी का कुर्ता, एक धोती और सिर पर गाधी टोपी रहती और पैरो मे काठ की खडाऊ। प० जवाहरलाल नेहरू का उन दिनो बाबूजी के साथ बडा घनिष्ठ सबध था। वह अपनी छोटी-सी मोटरकार जिसमे केवल दो ही व्यक्तियो के बैठने की जगह थी, लेकर प्राय प्रतिदिन ही बाबूजी के निवास-स्थान पर आते थे, और दोनो साथ ही मोटर पर विभिन्न स्थानो मे मीटिंगो मे सम्मिलित होने के लिए जाया करते थे। बाबूजी को समस्त उत्तर प्रदेश के नगरो तथा गावो के लोगो का अपूर्व स्नेह और श्रद्धा मिली और वह 'उत्तर प्रदेश के गाधी' के नाम से प्रसिद्ध हो गए। इस प्रदेश की जनता का, हिंदू और मुसलमान दोनो का, उन पर विश्वास रहा और वह प्रदेश के प्रमुख काग्रेस नेता माने जाने लगे।

असहयोग आदोलन के कार्यक्रमो मे एक कार्यक्रम विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार भी था और ऐसे सब वस्त्रो को जनता से माग कर उनकी आग मे आहुति देनी थी। हमे स्मरण है, विदेशी वस्त्रो का एक बडा अबार सिविल लाइस के पार्क (अब पुरुषोत्तम दास टंडन पार्क) मे इकट्ठा हुआ था। हमारे परिवार मे विदेशी वस्त्रो का उपयोग तो बहुत ही सूक्ष्म मात्रा मे था, क्योकि बाबूजी स्वय तो लग-भग आदोलन के बाद से स्वदेशी वस्त्रो का ही व्यवहार करते थे किंतु हमारी मा के पास कुछ विदेशी पुरानी साडिया उनके विवाह के समय की थी। प्रत्येक हिंदू महिला के लिए विवाह के समय के परिधानो का क्या महत्त्व होता है, यह हम सब जानते हैं। हमारी मा अपनी उसी भावना के कारण अपने उन विदेशी वस्त्रो को जलाने के लिए नही देना चाहती थी। वह उन्हे उपयोग न करने का आश्वासन देती रही, किंतु बाबूजी ने उनकी बात नही सुनी और उनके ऐसे सब विदेशी वस्त्र

ले लिए और उन्हे आग को समर्पित करने के लिए सिविल लाइस के पार्क मे भिजवा दिया। पार्क मे एकत्रित वस्त्रो के इस वडे अवार मे अग्नि प० मोतीलाल नेहरू के हाथो से लगवाई गई। सहस्रो की भीड पार्क मे इस होली को देखने के लिए एकत्र थी। इसी समय एक वडी सभा हुई जिसमे इन नेताओ के भाषण हुए।

इन्ही दिनो प्रिस आफ वेल्स भारत आए हुए थे और विभिन्न स्थानो पर उनके भ्रमण का कार्यक्रम था। कांग्रेस ने उनके स्वागत समारोहो के वहिष्कार की घोषणा की थी। इलाहावाद नगर मे इनका आगमन इसी वीच हुआ और इनके स्वागत मे नगरपालिका के अध्यक्ष के नाते वावूजी को इनका अभिनदन करना था। वावूजी ने अभिनदन-पत्र पढना अस्वीकार कर दिया और तव उपाध्यक्ष ने उसे पढ़ा।

असहयोग आन्दोलन मे भाग लेने तथा उसका संचालन करने के अपराध मे शासन ने ७ दिसवर, सन् १९२१ को वावूजी को वदी वनाया और डेढ वर्ष के कारावास तथा पाच सौ रुपये जुर्माने का दड दिया। जुर्माना न दिए जाने के कारण घर मे कुर्की आई। हमारे घर मे वैभव की अथवा कीमती सामग्री तो कभी थी ही नही, किंतु सामान्य प्रतिदिन के उपयोग की वस्तुए तो थी ही। हम सव भाइयो को यह तो भय था कि कुर्की किसी दिन आएगी, किंतु कव आएगी इसकी सूचना नही थी। अत कुर्की आने की सभावना से वहुत पहले ही हम लोगो ने घर का अधिकांश उपयोगी सामान पीछे के कमरे* मे रखकर कमरे के दरवाजे को ईंटो से चुनवाकर अन्य भाग से पृथक् कर दिया था। कुर्की आई। कुछ टूटी मेज, कुर्सिया, टाट-पट्टी आदि जो सामान वाहर था, वह पुलिस ले गई। इस प्रकार हम लोगो ने अपने घर का उपयोगी सामान वचा लिया।

उनका त्याग

वावूजी के चरित्र मे त्याग, तपस्या और सेवा का एक अनोखा रूप रहा है। जिस समय इन्होने सन् १९२०-२१ के सत्याग्रह आन्दोलन मे अपनी वकालत छोड़ कर इस प्रदेश मे आन्दोलन का नेतृत्व संभाला उस समय उनके ऊपर एक वड़े परिवार का वोझ था। अपनी पत्नी और वच्चो के अतिरिक्त अपने स्वर्गीय डाक्टर चाचा के परिवार का उत्तरदायित्व भी उन पर था। उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नही थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यो तथा समाज-सेवी अन्य कार्यों मे लगे रहने के कारण अपनी वकालत मे वह वहुत कम समय दे पाते थे। परिणामस्वरूप उनकी आय उनके परिवार के भरण-पोषण मात्र के लिए ही

* इस कमरे का नाम 'सम्मेलन वाला' कमरा पड गया था क्योकि वावूजी जव हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री थे तव आरभ मे कई वर्षों तक सम्मेलन का अपना कोई भवन न होने के कारण घर के इसी कमरे मे सम्मेलन का कार्यालय रखा गया था।

स्वदेशी कपडो की एक छोटी सी दुकान भी आरभ की थी। यह दुकान बाबूजी के जेल से छूटने के बाद भी कुछ समय तक चलाई गई किंतु उसमे कोई आर्थिक लाभ न होकर घाटा ही रहा। अत इसे बद कर देना पडा।

महात्मा गाधी ने असहयोग आदोलन की पूरी रूपरेखा अहिंसात्मक रखी थी किंतु सन् १९२२ के फरवरी महीने मे गोरखपुर जिले के चौरीचौरा गाव मे एक हिंसात्मक काड हो गया। जनता का एक बडा जुलूस निकल रहा था जिसे पुलिस ने रोक दिया और फिर जुलूस के न हटने पर गोली चलाई। कुछ लोग मरे और कुछ घायल हुए। पुलिस की गोलिया जब समाप्त हो गई तो वह अपनी चौकी मे वापस चली गई। क्रुद्ध जनता ने तब पूरी चौकी में आग लगा दी। इस आग मे कुछ पुलिस के सिपाही जल कर मरे भी। इन्ही दिनो बारदोली मे सत्याग्रह आरभ किए जाने का निश्चय था। गाधी जी को जब चौरी चौरा की घटना की सूचना मिली तो उन्होने यह अनुमान कर कि आदोलन हिंसा की ओर बढ रहा है, आदोलन को स्थगित कर देने की घोषणा कर दी। देश के बहुत से नेतागण गाधीजी के इस निश्चय से सहमत नही थे और उन सबको बडा क्षोभ हुआ। आदोलन के बद होने पर समस्त राजनीतिक कैदी जेल से छोडे गए। बाबूजी भी बिना डेढ वर्ष की अवधि पूरी किए सन् १९२२ के अत मे बाहर आए। जब वह जेल से बाहर आए तब उनका रूप बदल गया था, बाल बढे हुए थे और दाढी रख ली थी। फिर उन्होने कभी दाढी नही बनवाई। काग्रेस का सगठन स्वभावत इस बीच अस्तव्यस्त हो गया था। उसे पुन व्यवस्थित करने तथा सगठित करने की ओर उन्होंने ध्यान दिया।

गया मे सन् १९२२ मे हुए काग्रेस के अधिवेशन मे कुछ नेताओ ने कौंसिल प्रवेश का प्रस्ताव रखा। इन नेताओ मे प० मोतीलाल नेहरू और देशबधु चितरजन दास प्रमुख थे। गाधीजी, राजाजी (राजगोपालाचारी) तथा अन्य कुछ नेतागण इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे। बाबूजी भी महात्माजी के विचार से ही सहमत थे। बहुत विचार-विमर्श के बाद काग्रेस ने यह निश्चय किया कि जो नेता चुनाव मे भाग लेकर केंद्रीय कौसिल मे प्रवेश के पक्षपाती हैं वे काग्रेस से अलग एक दल बनाकर इस कार्य को कर सकते हैं। फलस्वरूप स्वराज पार्टी बनी और प० मोतीलाल नेहरू तथा काग्रेस के कुछ अन्य नेता स्वराज पार्टी की ओर से केंद्रीय कौंसिल मे सदस्य हुए। मालवीयजी और लालाजी ने एक दूसरा दल 'नेशनल पार्टी' के नाम से बनाया और उसकी ओर से चुनकर ये दोनो भी केंद्रीय कौसिल में पहुचे। कौंसिल प्रवेश की योजना से सहमत न होने के कारण बाबूजी ने अपना ध्यान रचनात्मक कार्यों की ओर लगाया।

बाबूजी जब जेल मे थे तभी हमारी दादी अस्वस्थ हो गई थी। वह अहियापुर अचल के हमारे पैतृक घर मे हमारे चाचा के पास रहती थी। चाचा का मानसिक

सतुलन भी इमी वीच नष्ट हो गया था और वह प्राय घर छोडकर चाची को साथ लेकर आगरा स्वामीवाग मे सत्संग के लिए चले जाते थे। ऐसी स्थिति मे हमारी मा और हम सव भाई जानमेनगज वाले मकान से अपनी दादी की सेवा-सुश्रूपा के लिए अहियापुर के घर में उनके पास आ गए थे। जेल से आने के वाद वावूजी ने अपना अधिकाश समय अपनी माता की सेवा में लगाया, किंतु हमारी दादी स्वस्थ न हो सकी। उनका देहात दिसवर सन् १९२३ में हो गया। अपनी माता का अतिम सस्कार करने के वाद वावूजी तथा हम सव फिर जानसेनगज के मकान में आ गए और वावूजी स्वय पूर्णत समाज और देश-सेवा के कार्य मे जुट गए।

प्रांतीय काग्रेस की अध्यक्षता

काग्रेस द्वारा सचालित आदोलन का कार्य तो स्थगित ही हो चुका था और गाधीजी ने रचनात्मक कार्य की योजना देशके सामने रखी थी। लाला लाजपतराय ने अछूतोद्धार का कार्य इन्ही दिनो आरम्भ किया था और जैसा हम पहले वतला चुके हैं उत्तर प्रदेश में इस कार्य का उत्तरदायित्व उन्होंने वावूजी को सौपा था।

गोरखपुर में सन् १९२३ में हुए प्रांतीय काग्रेस के अधिवेशन में वावूजी अध्यक्ष चुने गए थे। इस पद से दिए गए अपने भापण में उन्होंनें काग्रेस के भविष्य के कार्यक्रम की रूपरेखा का सुझाव रखा। इसी वर्प वह काग्रेस महामसिति के भी सदस्य चुने गए।

पंजाब नेशनल वैक के मंत्री का पद

घर की आर्थिक अवस्था तो अच्छी थी नही और वावूजी ने वकालत पुन आरभ न करने का निश्चय कर लिया था। अत उनको तथा उनके सभी मित्रो और हितैपियो को यह चिता थी कि घर की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए क्या किया जाय। लालाजी ने वावूजी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह अछूतोद्धार के काम के उपलक्ष में पांच सौ रुपए मासिक मानदेय स्वीकार करें। वावूजी ने सार्वजनिक सेवा के किसी कार्य के उपलक्ष में कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया। इसी वीच पजाव नेशनल वैक के लाहौर स्थित केंद्रीय कार्यालय में सयुक्त मत्री का पद रिक्त हुआ। लालाजी इस वैक के डायरेक्टर थे। उन्होंने वावूजी से आग्रह किया कि या तो वह पाच सौ रुपए मासिक सार्वजनिक कार्य के उपलक्ष मे लेना स्वीकार करें या पजाव नेशनल वैक के सयुक्य मत्री के पद को स्वीकार करें। कानपुर की नगरपालिका मे भी एक्जीक्यूटिव आफिसर का पद इमी वीच रिक्त हुआ था और वहा के अधिकाश सभासदो ने इच्छा प्रकट की थी कि वावूजी उसे स्वीकार करें। वावूजी ने एक शर्त रखी कि यदि हिंदू और मुसलमान सभी सदस्य एक मत से उन्हे चुनेंगे तभी वह इस पद को स्वीकार करेंगे। किंतु कुछ

मुसलमान सदस्य जो अग्रेजी शासन के प्रभाव में थे वावूजी के पक्ष में मत देने को तैयार नही हुए। यद्यपि वहुमत उन्हें चाहता था फिर भी उन्होंने इस पद को स्वीकार नही किया। अत मे लालाजी के आग्रहवश उन्हें पजाव नेशनल वैंक के सयुक्त मत्री का पद स्वीकार करना पडा और सन् १६२५ के अप्रैल महीने में वह लाहौर पहुचे और इस पद का भार ग्रहण किया। आरभ में उनके तीसरे पुत्र सतप्रसाद ही उनके साथ लाहौर गए किंतु दो-तीन महीने वाद जव घर की व्यवस्था हो गई तो हमारी मा तथा अन्य सव भाई भी लाहौर पहुच गए। लाहौर में हम सव लालाजी के ज्येष्ठ पुत्र प्यारेलालजी के घर मे किराए पर आरभ मे रहे। जिस घर मे लालाजी स्वय रहते थे उससे यह घर मिला हुआ था। इस प्रकार लाहौर में वावूजी लालाजी के वहुत निकट सपर्क में रहे। लालाजी का हम सव वच्चो को भी वडा स्नेह मिला।

लोक सेवक मडल की अध्यक्षता

लालाजी का देहात १७ नववर सन् १६२८ को हुआ। वावूजी तव लाहौर में ही थे। अपने जीवन काल में ही मृत्यु से कुछ पूर्व लालाजी ने मडल के अपने सहयोगियो के वीच यह इच्छा प्रकट की थी कि लोक सेवक मडल की अध्यक्षता उनके वाद वावूजी को सौपी जाए। लालाजी के निधन के वाद लोकसेवक मडल के सदस्यो ने गाधीजी से इस विषय की चर्चा की। गाधीजी ने वावूजी को ही इस पद के लिए उपयुक्त समझा और उनसे आग्रह किया कि वह लोक सेवक मंडल की अध्यक्षता स्वीकार कर लें। उन्होंने तुरत गाधीजी के आदेश को स्वीकार कर लिया और पजाव नेशनल वैंक के अपने ऊचे पद से अगस्त सन् १६२६ मे त्यागपत्र दे दिया और मडल के अध्यक्ष पद का भार ग्रहण कर लिया। वावूजी के इस त्याग की चर्चा करते हुए महात्माजी ने उस समय 'यग इडिया' में अग्रेजी में 'एक प्रशसनीय त्याग' शीर्षक से जो लेख लिखा था, उसके मुख्य अश का हिंदी अनुवाद यहा दिया जा रहा है। मूल अग्रेजी लेख का सवधित अश नीचे टिप्पणी में दिया गया है। गाधीजी ने लिखा था —

"श्री पुरुपोत्तमदास टडन ने एक प्रमुख वैंक का अपना उच्च पद प्रात स्मरणीय लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोक सेवक मडल का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए छोडा है। श्री पुरुपोत्तमदास टडन स्वर्गवासी राष्ट्रभक्त के सहयोगी थे और उनका यह त्याग अपने उस स्वर्गवासी नेता के प्रति कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित है। हमारी दृष्टि मे उनका यह कार्य साहसपूर्ण है किंतु स्वय श्री पुरुपोत्तमदास टडन की दृष्टि में वह नगण्य है। वह त्याग करने के अभ्यस्त रहे हैं। गत अनेक वर्षों से उनका धन एकत्र करने में विश्वास नही रहा है। वह क्रमश अपने जीवन को सादा वनाते गए हैं—ऐसे ही त्यागो से राष्ट्र वनते हैं। मैं लालाजी के

मडल को इस उपलब्धि पर वधाई देता हू ।"*

दिसबर सन् १९२८ मे एक दु खद घटना हमारे कुटुव मे हो गई जिसका सदमा भी वावूजी को लगा। हमारी वड़ी वहिन स्वामीप्यारी के पति श्री लाल विहारी मेहरोत्रा का देहात वस की एक दुर्घटना के कारण हो गया। अत हमारी वहिन का भी पूरा उत्तरदायित्व वावूजी पर ही आ गया।

काग्रेस कार्य का सगठन और नमक सत्याग्रह

वावूजी सन् १९३० के आरम्भ मे इलाहावाद वापस आए। मीरगज मे एक किराए का घर लिया गया जिसमे लोक सेवक मडल का कार्यालय भी था और हम सव रहते भी थे। सन् १९३० के अप्रैल महीने मे 'नमक सत्याग्रह' काग्रेस के निश्चय के अनुसार आरभ होना था। इलाहावाद आते ही वावूजी काग्रेस के सगठन तथा आन्दोलन की तैयारी मे लग गए।

जव गाधीजी नमक सत्याग्रह की दाडी यात्रा पर चले तव वावूजी महात्माजी के आश्रम मे ही थे। इस यात्रा के आरभ होने के लगभग एक सप्ताह पूर्व वह सावरमती आश्रम मे गाधीजी के पास गए थे और वही रुके हुए थे। कुछ दूर तक महात्माजी के साथ उनकी यात्रा में भी सम्मिलित हुए थे। इस यात्रा से वापस आने के पूर्व वावूजी ने अहमदावाद में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की वैठक में भाग लिया था जिसमें नमक सत्याग्रह को राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर सगठित करने का निर्णय हुआ था।

वावूजी ने अपने प्रदेश में नमक सत्याग्रह के सचालन का भार सभाला। प्रदेश मे नमक कानून भग करने के लिए जगह-जगह नमक वनाने, विदेशी कपड़ो की दुकानो पर पिकेटिंग करने आदि सव कार्यों का सगठन और सचालन इन्होंने वड़े व्यापक रूप में किया जिसके फलस्वरूप पूरे प्रदेश में आदोलन वड़ी तीव्रता से चला।

---

* "Syt Purushottam Das Tandon has given up the lucrative post of manager of a premier Bank in order to join the servants of the People Society founded by Lala Lajpat Rai of sacred Memory. Syt Purushottam Das Tandan was a comrade of the deceased patriot, and this sacrifice is in obedience to the call of duty towards a deceased leader. What is, however, a great step for us, is nothing in the estimation of Syt Purushottam Das Tandan He has been used to making sacrifices. For many years past he has ceased to believe in making money for its own sake. He has been progressively simplifying his life, ..By such sacrifices only are nations made .I congratulate Lalaji's Society in the event."

यह निश्चय हुआ था कि ५ अप्रैल को गाधीजी दाडी मे नमक कानून भग करेंगे और ६ अप्रैल को समस्त देश मे स्थान-स्थान पर नमक बनाकर नमक कानून भग किया जाएगा। इस निश्चय के अनुसार ६ अप्रैल को इलाहावाद मे क्रास्थवेट रोड (अव सम्मेलन मार्ग) पर स्थित वावूजी की अपनी भूमि पर नमक बनाकर कानून भग करने का आयोजन किया गया। उस समय नमक वनाकर कानून भग करने और सत्याग्रह आरभ करने के लिए शासन के डर से कोई अपना स्थान देने के लिए तैयार नही होता था। किसी सार्वजनिक स्थान पर भी यह कार्य करना सभव नही था। इसी से वावूजी की उक्त भूमि पर नमक बनाने और कानून भग करने का कार्य किया गया, और इस प्रकार इस स्थान मे ही सत्याग्रह का श्रीगणेश इलाहावाद मे हुआ। वावूजी को इस वात की तनिक भी चिंता नही हुई कि शासन उनकी इस भूमि को जव्त कर लेगा। इस भूमि पर वाद मे सन् १९३२ मे मकान वना, और इस स्मृति मे ही इसका नाम 'तपोभूमि' रखा गया। प० मोतीलाल नेहरू के द्वारा नमक वनाने का कार्य सपन्न किया गया था। वडी सख्या मे लोग एकत्र थे। नमक कानून भग करने के अपराध मे उसी दिन वावूजी तथा मोतीलालजी दोनो ही पकड लिए गए।

काग्रेस कार्य के लिए धन भी एकत्र करना था। इस वीच मे वावूजी को सूचना मिली कि उत्तर प्रदेश के पूर्वीय भाग मे स्थित वस्ती नगर, जो नेपाल की सीमा के निकट है, विदेशी वस्त्रो का एक वडा केंद्र है और वहा से विदेशी वस्त्र वडी मात्रा मे नेपाल भेजा जाता है। काग्रेस के लिए धन एकत्र करने तथा विदेशी वस्त्र के इस व्यापार को रोकने के लिए वावूजी, आचार्य नरेन्द्र देव तथा श्री शिव प्रसाद गुप्त ने २४ जून १९३० को वस्ती के लिए प्रस्थान किया। वस्ती के जिला-धीश ने इन लोगो के वस्ती आने पर रोक लगा दी, किंतु ये तीनो इस निषेधाज्ञा की अवहेलना कर वस्ती पहुचे। पहुचते ही तीनो गिरफ्तार कर लिए गए और तीनो को तीन-तीन महीने की सजा हुई। ये लोग वस्ती जेल मे रखे गए। १२ अक्टूवर को वावूजी जेल से मुक्त हुए और १३ तारीख को गोरखपुर रुक कर भाषण देते हुए इलाहावाद १४ अक्टूवर को वापस आ गए। यहा एक वडी सार्वजनिक सभा इनके स्वागत मे हुई।

सत्याग्रह के अग्रणी नेता के रूप मे कार्य करने के साथ-साथ वावूजी ने किसानो की दुर्दशा से प्रेरित होकर 'लगान-वदी' आदोलन भी इसी वीच आरभ किया। अत १४ नवम्वर १९३० को वह पुन गिरफ्तार कर लिए गए और इस बार गोडा जेल मे रखे गए। गाधी-इरविन समझौता मार्च सन् १९३१ मे हुआ, किंतु इस सवध की वार्ता के पूर्व उचित वातावरण वनाने हेतु शासन ने सव राजनैतिक कैदियो को मुक्त किए जाने की घोषणा की। वावूजी भी जेल से जनवरी सन् १९३१ मे वाहर आए।

चंद्रशेखर आजाद का आत्मबलिदान

यो तो बाबूजी मुख्य रूप से काग्रेस के बराबर अनुयायी रहे किंतु क्रातिकारी दलो के लोग भी उनसे मिलने प्राय आया करते थे। क्रातिकारियो की हिंसा की नीति से तो बाबूजी सहमत नही थे किंतु उनकी देश भक्ति, साहस और बलिदान की भावना के कारण उनकी सराहना करते थे और उनसे प्रेमपूर्वक मिला करते थे। प्रसिद्ध क्रातिकारी चद्रशेखर आजाद अपनी मृत्यु से एक दिन पहले २६ फरवरी सन् १६३१ को अपने दो साथियो के साथ बाबूजी से मिलने हमारे मीर-गज के निवासस्थान पर आए थे। दूसरे ही दिन, अर्थात् २७ फरवरी सन् १६३१ को प्रात काल कम्पनी बाग (अब आजाद पार्क) मे पुलिस द्वारा आजाद घेर लिए गए। आजाद अकेले ही रिवाल्वर से पुलिस का सामना करते रहे किंतु जब उनकी गोलिया समाप्त हो गई और एक ही गोली बची तब यह समझ कर कि वह बच न पाएगे उन्होने इस अतिम गोली से अपना जीवन समाप्त कर लिया। उस समय उनके साथ केवल सुखदेवराज थे। सुखदेवराज ने जब देखा कि वे लोग चारो ओर से पुलिस से घिर गए है तब वह गोली चलाते हुए और पुलिस की गोली से बचकर पुलिस के घेरे से बाहर निकल आए। पुलिस ने उनका पीछा नही किया क्योकि आजाद को वह घेरे थी और उन्हे भागने का अवसर नही देना चाहती थी। सुखदेवराज को पुलिस के घेरे से बाहर निकलते ही एक छात्र साइ-किल पर मिला। उन्होने उसकी साइकिल रिवाल्वर दिखलाकर छीन ली और वहा से उस पर भाग कर मुट्ठीगज मे जहा ये लोग ठहरे हुए थे पहुचे और वहा से मीरगज हमारे घरआकर उन्होने इस घटना की सूचना दी। जिस छात्र की साइकिल सुखदेवराज ने छीनी थी वह रामकृष्ण मेहरा थे जो बाद मे इलाहाबाद विश्व-विद्यालय के जतु विभाग मे रीडर हुए और अब अवकाश प्राप्त कर प्रयाग मे ही रह रहे हैं। उन्होंने भी इस तथ्य की पुष्टि की थी।

जिस समय यह घटना घटित हुई इन पक्तियो का लेखक(सत प्रसाद) लगभग उसी समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग मे एम०एस-सी० प्रथम वर्ष की अपनी कक्षा के लिए पहुचा ही था। विज्ञान विभाग मे इस घटना की चर्चा तुरत ही फैल गई और अनेको विद्यार्थी घटनास्थल पर पहुचे, किंतु पुलिस ने उन्हे आजाद के मृत शरीर से कुछ दूर ही रोक दिया। मैं भी विद्यार्थियो के साथ वहा उपस्थित था। कुछ लोगो को यह सदेह था कि यह आजाद नही कोई अन्य व्यक्ति है। मैं तो आजाद को पहचानता था, तब मैंने ही कुछ मित्रो को बतलाया कि मृत व्यक्ति आजाद ही थे।

आजाद की इस प्रकार की मृत्यु से बाबूजी का हृदय द्रवित हो गया। बाबूजी जिलाधिकारी तथा पुलिस अधीक्षक, नॉट बॉवर, से मिले और आजाद के शव की सगम तट पर अत्येष्टि क्रिया कराने की व्यवस्था की।

वाबूजी ने हमे बतलाया था कि स्वय नॉट बॉवर ने उनसे आजाद के साहस और अचूक निशाने की बडी प्रशसा की थी। उन्होने बाबूजी को बतलाया था कि आजाद ने ठीक उनके हृदय का निशाना लेकर गोली चलाई थी जो सीधे उनके हृदय पर लगती और उनका जीवन तुरत समाप्त हो जाता किंतु भाग्य से वह उस समय अपनी वर्दी मे थे और उस स्थल पर धातु का एक बटन था जिससे टक्कर खाकर गोली छिटक गई और उनकी बाह को छीलती हुई चली गई। इसके बाद स्वय नॉट बॉवर भी अपनी जीवन रक्षा के निकट के लिए एक बडे पेड़ की ओट में चले गए।

पुलिस अधीक्षक ने बाबूजी को वचन दिया था कि वह आजाद के मृत शरीर का जलूस तो नही निकालने देंगे किंतु पोस्टमार्टम के बाद पुलिस की गाडी से शव को सगम तट पर पहुचाकर अत्येष्टि क्रिया के लिए वही लोगो को सुपुर्द कर देंगे। २८ तारीख को बाबूजी जलूस निकलवाने और सगमतट पर लोगो को एकत्रित कराने तथा अत्येष्टि का प्रबध करने मे व्यस्त थे, तभी उन्हे सूचना मिली कि आजाद का मृत शरीरसगम न ले जाया जाकर पुलिस की गाडी से रसूलाबाद ले जाया गया है। तुरत बाबूजी रसूलाबाद पहुचे। लगभग उसी समय श्रीमती कमला नेहरू, श्री पद्मकात मालवीय, श्री शिवविनायक मिश्र (जिनकी सरक्षता मे आजाद का लालन-पालन बनारस मे हुआ था) आदि कुछ लोग भी वहा पहुच गए। वही उनकी अत्येष्टि क्रिया हुई। वहा से आजाद के फूल ये लोग लाए और उसे ही लेकर जानसेनगज मे स्थित अभ्युदय कार्यालय से जलूस निकाला गया और पुरुषोत्तमदास टडन पार्क मे बाबूजी के सभापतित्व मे एक शोक सभा हुई। आरभ मे काग्रेस के कुछ स्थानीय कार्यकर्त्तागण आजाद के सबध मे जलूस निकालने और शोक सभा आयोजित करने के पक्ष मे नही थे क्योकि काग्रेस की नीति से आजाद तथा उनके दल की नीति का विरोध था। तब बाबूजी ने कहा, "आजादी की मजिल तक पहुचने के लिए कई रास्ते हो सकते है। इसमे कोई सदेह नही कि आजाद महान् देशभक्त थे। उनका सम्मान न करना देशभक्ति का अपमान होगा।" इस तर्क से सब शात हो गए। सभा मे बाबूजी, कमला जी, शचीन्द्रनाथ सान्याल, शिव-विनायक मिश्र आदि के भाषण हुए और जनता ने इस वीर देशभक्त के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की।*

कानपुर का साम्प्रदायिक दगा

अपने प्रदेश के कानपुर नगर मे मार्च सन् १९३१ मे वृहत् रूप मे साम्प्र-दायिक दगे की भीषण अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। कराची मे काग्रेस का अधि-

*२८ फरवरी और १ मार्च सन् १९३१ के अभ्युदय मे तथा ६ मार्च सन् १९३१के टाइम्स ऑफ इडिया में इस सभा का और आजाद के बलिदान का विस्तृत विवरण छपा था।

वेशन हो रहा था। वहा इस दगे की सूचना पहुची और यह समाचार भी मिला कि प्रदेश और कानपुर के वरिष्ठ नेता श्री गणेश शकर विद्यार्थी का २५ मार्च से पता नही मिल रहा है। विद्यार्थी जी उपद्रवियो को शात करने के लिए हिंदू तथा मुसलमान दोनो की वस्तियो मे वरावर जा रहे थे। उनका कानपुर नगर मे हिंदू और मुसलमान दोनो मे ही अच्छा प्रभाव था किंतु इस दगे की आग मे, जैसा प्राय होता है, हिंदू और मुसलमान दोनो ही पागल हो उठे और एक मुसलमान वस्ती मे किसी धर्मांध मुसलमान ने उनकी हत्या कर दी। कई दिनो वाद २९ मार्च को उनका शव मिला जो उनके खादी के वस्त्रो तथा उनके हाथ पर वने गणेश की मूर्ति के चिह्न से पहचाना जा सका। कराची काग्रेस ने तुरत वावूजी को तथा प्रदेश के अन्य कार्यकर्त्ताओ को कानपुर पहुचने का आदेश दिया। वावूजी कानपुर पहुचे। वहा का पूरा दृश्य देखकर मर्माहत हुए। गणेश शकर विद्यार्थी उनके सहयोगी और घनिष्ठ मित्रो मे से थे। उनकी हत्या से वावूजी को वडा दु ख हुआ। विद्यार्थीजी के परिवार को किसी प्रकार उन्होने सात्वना दी, साथ ही नगर में उन प्रमुख स्थानो का भी भ्रमण किया जहा उपद्रवों के फलस्वरूप नागरिक त्रस्त और आतकित थे। सतप्त परिवारो को ढाढस वधाया और घायलो की सेवा-सुश्रूपा की व्यवस्था कराई। जो लोग भय और आतक से घर से वाहर नही निकलते थे उन्हे साहस और धैर्य से काम लेने की प्रेरणा दी।

कांग्रेस ने कानपुर के साम्प्रदायिक उपद्रव की जाच करने के लिए छ व्यक्तियो की एक समिति गठित की जिसमें तीन हिंदू और तीन मुसलमान वरिष्ठ नेता थे। काशी के प्रतिष्ठित दार्शनिक डॉ० भगवान दास जी इस समिति के अध्यक्ष थे। वावूजी भी इस समिति के एक सदस्य थे। इस समिति ने कई महीनो के परिश्रम के वाद अपनी वृहत् रिपोर्ट काग्रेस समिति के सामने प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में हिंदू-मुसलिम समस्या पर ऐतिहासिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार किया गया था। तत्कालीन प्रमुख कारण में स्वतत्रता आदोलन की ओर से भारतीय जनता को विमुख करने की विदेशी शासन की नीति की कडी आलोचना थी। अग्रेजी शासन यह जानता था कि देश में विभिन्न धर्मावलवी आपस में लडते रहेंगे तो स्वतत्रता की ओर उनका ध्यान नही जाएगा। इसी उद्देश्य से व्रिटिश शासन ने हिंदू-मुसलमानो में परस्पर मनोमालिन्य उत्पन्न करने की नीति चलाई। समिति की रिपोर्ट प्रकाशित होने के वाद उत्तर प्रदेश की सरकार ने इसे अवैध घोषित कर दिया और इसकी जितनी छपी प्रतिया थी सव प्रेस से ही जव्त कर ली गईं। इसका उल्लेख डॉ० पट्टाभि सीता रमैय्या द्वारा लिखित काग्रेस के इतिहास में है।* वावूजी ने २ जुलाई १९३३ को लाहौर में फ्री प्रेस ऑफ इडिया के प्रतिनिधि को इस रिपोर्ट के सवध में जो वक्तव्य दिया था उसका

* काग्रेस का इतिहास, हिंदी सस्करण पृष्ठ, ३६५-३६६

मुख्य अश परिशिष्ट ३ में दिया गया है।

किसान आदोलन के अग्रणी

बाबूजी ने सन् १९१८-१९ के बीच एक किसान सभा गठित की थी जिसके माध्यम से वह किसानो की समस्याओ को सुलझाने का प्रयास करते थे। उनके बीच-बीच मे जेल तथा लाहौर चले जाने मे इसका कार्य कुछ ढीला हो गया था। सन् १९३० में प्रयाग वापस पहुचने पर उन्होंने इसको पुनर्जीवित कर एक 'केद्रीय किसान सघ' की स्थापना की जिसके वह स्वय अध्यक्ष रहे और सर्वश्री जयप्रकाश नारायण तथा मोहनलाल गौतम मत्री थे। गाधीजी के गोलमेज काफ्रेस से वापस भारत लौटने पर लगानबदी आदोलन प्रारभ किए जाने का कार्य सन् १९३१ में सगठित किया जाने लगा। अनाज के भावो में बहुत अधिक गिरावट आ जाने के कारण किसानो की आर्थिक स्थिति बहुत ही शोचनीय हो गई थी। उनके सामने लगान देने के लिए धन जुटाने की समस्या एक भीषण रूप ले रही थी। काग्रेस ने बहुत प्रयत्न किया कि शासन किसानो को लगान में पर्याप्त छूट दे किंतु शासन की ओर से कोई भी सतोषप्रद उत्तर या आश्वासन नही मिला। किसानो मे असतोष बढता जा रहा था।* काग्रेस के बहुत चेष्टा करने पर उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने कुछ उच्च अधिकारियो की एक समिति बनाई जो काग्रेस के नेताओ से वार्ते कर कुछ सुझाव दे। इस वार्ता मे बाबूजी, प० जवाहर लाल नेहरू, श्री वेंकटेश नारायण तिवारी तथा श्री तसद्दुक अहमद शेरवानी थे। किंतु समस्या का कोई समाधान नही निकला। स्थिति की गभीरता के कारण स्वय गाधीजी ने नैनीताल पहुच कर गवर्नर से इस विषय मे बातें की। फिर भी समस्या नही सुलझी। इस पर बाबूजी ने केंद्रीय किसान सघ के मच से आवाहन किया कि अब किसानो को अपनी लडाई अपने-आप लडने के लिए तैयार हो जाना चाहिए, और उन्होने लगानबदी आदोलन प्रारभ कर दिया। यद्यपि काग्रेस इस समय ब्रिटिश शासन से कोई लडाई लडना नही चाहती थी और उसे भय था कि यदि यह आदोलन उत्तर प्रदेश मे प्रारभ हुआ तो शीघ्र ही देश व्यापी रूप ले लेगा, पर बाबूजी इस सबध मे दृढ रहे और इलाहाबाद जिले से इस आदोलन का सूत्रपात कर दिया। शासन को भय हुआ कि यदि देश भर मे लगानबदी आदोलन ने उग्र रूप ले लिया तो उसे बडी भारी आर्थिक हानि उठानी पडेगी। इलाहाबाद नगर मे एक सार्वजनिक सभा आयोजित की गई जिसमे किसानो को क्या करना चाहिए यह बतलाना था। जिला अधिकारियो ने धारा १४४ के अनुसार सभा पर रोक लगा दी। बाबूजी सभा में भाषण देने के लिए पहुचे और तुरत गिरफ्तार कर लिए गए। इन्हे नैनी जेल में रखा गया। बाद मे गोरखपुर और

---

* २२ मई १९३१ को नैनीताल से दिए गए उनके वक्तव्य की प्रति परिशिष्ट ४ मे दी गई है।

फिर गोंडा जेल भेज दिया गया। कई महीनो के वाद सन् १९३३ मे वावूजी जेल से छूट कर फिर वाहर आए।

ज़मीदारी प्रथा के उन्मूलन की कल्पना

केंद्रीय किसान संघ के मच से उन्होने ज़मीदारी प्रथा के उन्मूलन की भी वात रखी थी। ज़मीदारी प्रथा का अत किस प्रकार हो इस सवध में भी वावूजी के अपने विचार थे। जव यह प्रश्न काग्रेस के सामने प्रस्तुत हुआ तव समाजवादी विचारधारा के सभी प्रमुख नेता—आचार्य नरेन्द्र देव, श्री जयप्रकाश नारायण आदि—इस पक्ष के थे कि ज़मीदारी समाप्त करने के लिए ज़मीदारो की जो भूमि ली जाय उसका कोई मुआवज़ा उन्हें नही देना चाहिए, किंतु वावूजी का सुझाव था कि ज़मीदारी प्रथा का अत मुआवजा देकर ही किया जाय। उनकी दृष्टि में यह न्यायसगत नही था और न नैतिक दृष्टि से उचित था कि ज़मीदारो की भूमि विना उसका मूल्य दिए ली जाय। उनकी दृष्टि में मूल्य कम ही क्यो न हो देना अवश्य चाहिए। इन दोनो दृष्टिकोणो पर पूरे देश में वहुत विचार-विमर्श हुआ और अत मे काग्रेस ने वावूजी की वात मानी। काग्रेस ने भूमि व्यवस्था में ही नही, दूसरे आर्थिक क्षेत्रो में भी इस सिद्धात को स्वीकार किया और इसका समावेश आज हमारे गणतत्र के सविधान में भी है। वावूजी की दृष्टि में किसी की सपत्ति को शक्ति के वल पर लेना नैतिकता नही थी, जितना मुआवजा सभव हो वह देकर ही लेना चाहिए। वावूजी की इस सूक्ष्म और उच्च नैतिकता की भावना को आज भी सव स्वीकार करते है।

लगान के अतिरिक्त किसानो की अन्य कई प्रकार की समस्याए भी थी। वावूजी का इन सवकी ओर ध्यान था और वह उनके निराकरण के लिए हर सभव उपाय और प्रयत्न करने मे लगे रहते थे। उनके प्रयास करने से ही काग्रेस ने सन् १९३६ के लखनऊ अधिवेशन मे निर्णय किया कि प्रत्येक प्रातीय काग्रेस अपने प्रात मे एक उपसमिति किसानो की समस्याओ की जाच करने और उन्हें दूर करने के लिए अपनी सिफारिशें देने हेतु गठित करे। इस समिति का सयोजक वावूजी को वनाया गया। सयोजक के रूप मे तथ्य एकत्र करने की दृष्टि से जो पत्र इन्होंने अनेक संस्थाओ और समाज सेवियो को भेजा था उसका हिंदी रूपातर इस प्रकार है —

अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी

२०, मीरगज,
इलाहावाद।
६-२-१९३६

प्रिय मित्र,

अपने देश मे किसानो की समस्याओ का अध्ययन करने और समय-समय पर इनके सवध मे कार्यसमिति को परामर्श देने के लिए काग्रेस की कार्यसमिति

ने एक उपसमिति का गठन किया है और मुझे उसका सयोजक बनाया है।

देश के लगभग सभी प्रदेशो मे किसानो की स्थिति शोचनीय है। यह स्पष्ट है कि जिस प्रणाली के अतर्गत उन्हें भूमि सीधे शासन से अथवा मध्यस्थ लोगो से मिलती है वही प्रणाली समस्त ग्रामजीवन को सचालित करती है और ग्रामो मे उपस्थित समस्त परिस्थितियो के लिए उत्तरदायी है।

मेरा अनुरोध है कि आप कृपया अपने प्रदेश के किसानो के कष्टो तथा ग्राम्य-जीवन की अन्य समस्याओ पर अपनी टिप्पणी तैयार कर हमारी इस उपसमिति के विचारार्थ भेजें और साथ ही किसानो की दशा सुधारने तथा उनके कष्टो को दूर करने के लिए अपने सुझाव भी दें।

मैं विशेषरूप से आभारी हूगा यदि आप अपनी टिप्पणी इस महीने के अत तक मेरे पास भेज दें।

आपका शुभैषी,
पुरुषोत्तमदास टडन

इसका मूल अग्रेजी रूप नीचे टिप्पणी मे दिया जा रहा है।

+ All India Congress Committee

20, Mirganj,
Allahabad
6-2-36

My dear friend,

The Working Committee of the Congress has appointed a Sub-Committee with myself as convener to study the problems relating to the peasantry of our country and from time to time advise the Working Committee thereon In almost every province in the country the condition of the peasant is deplorable It is obvious that the system, under which they hold land either directly from the Government or from intermediaries, governs the whole life and is greatly responsible for the conditions existing today in the villages

I request that you will kindly prepare a note for our Sub-Committee on the problems of village life and the grievances of the peasantry in your province, and also suggest remedies for improving the status of the peasantry and for the removal of their grievances

I shall be greatly obliged if you will send your note to me by the end of this month

Yours sincerely,
Purushotam Das Tandon

इस जांच समिति ने अपनी अतिम रिपोर्ट २३ नववर, सन् १६३६ को प्रस्तुत की। इसमे अवशेप लगानऔर कर्ज को खत्म करने, अलाभकर अराजियो को कर्ज से मुक्त करने तथा काश्तकारो को मौरूसी अधिकार देने, हरी-वेगार और नजराना को गैर-कानूनी घोपित करने, वेदखलिया वद करने आदि अनेक उपयोगी मागो को सम्मिलित करने के साथ-साथ ज़मीदारी प्रथा को समूल समाप्त करने तथा सहकारी खेती को वढावा देने की सस्तुति की गई थी।

अग्रेजी शासन ने काग्रेस को गैर-कानूनी सस्था सन् १६३५ मे ही घोपित कर दिया था, अत उसका अधिवेशन और मीटिंगें खुलकर नही हो पा रही थी। २७ और २८ अप्रैल सन् १६३५ को इलाहावाद मे सयुक्त प्रातीय किसान सम्मेलन आयोजित किया गया। इसकी अध्यक्षता सरदार वल्लभ भाई पटेल ने की। इस समय लगभग सभी वड़े नेता इलाहावाद मे एकत्र हुए। इस प्रकार इस मच के माध्यम से नेताओ को मिलने और विचार-विमर्श करने का सुअवसर मिला। इसी सम्मेलन मे ज़मीदारी प्रथा के उन्मूलन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। अपने इसी आदोलन के सिलसिले मे वावूजी ने इलाहावाद जिले के विस्तृत भ्रमण के वाद जो वक्तव्य दिया था वह वडा मार्मिक था। उसका मुख्य अश परिशिष्ट ५ मे दिया गया है। इस प्रकार जमीदारी प्रथा के उन्मूलन की माग और उसे पूर्ण सफलता तक पहुचाने मे वावूजी का विशेप योगदान रहा। इस प्रदेश मे ज़मीदारी उन्मूलन अधिनियम के अतिम रूप से विधानसभा मे स्वीकृत होने का कार्य भी उनकी अध्यक्षता मे ही सपन्न हुआ।

कांग्रेस की राजनीति मे नया मोड़

वर्प सन् १६३४ मे काग्रेस मे पुन दो विरोधी विचार धाराए उभर कर सामने आईं। यह सन् १६२२ के गया अधिवेशन जैसी परिस्थिति थी। कुछ नेता चाहते थे कि धारा सभाओ मे प्रवेश कर वहा स्वराज्य की लडाई लडी जाय और कुछ वाहर से ही अपनी लड़ाई जारी रखना चाहते थे। अप्रैल सन् १६३४ मे डॉ० अन्सारी की अध्यक्षता मे कुछ प्रमुख नेताओ की एक वैठक हुई। इसमे मालवीयजी ने भी भाग लिया। यह निश्चय हुआ कि या तो काग्रेस धारा सभाओ मे जाने की सहमति दे या स्वराज पार्टी को पुन जीवित कर उसके माध्यम से यह कार्य कराए। इसके वाद १६ मई सन् १६३४ को पटना मे काग्रेस की कार्यसमिति की एक वैठक हुई। इसमे धारासभाओ मे प्रवेश का प्रस्ताव रखा गया। यह प्रस्ताव स्वय गाधीजी ने रखा और वडे आग्रहपूर्ण तर्क रखे। वावूजी इसके पक्ष मे नही थे, अत मीटिंग के पहले जव उन्हें पता चला कि ऐसा प्रस्ताव गाधीजी की ओर से से आ रहा है तव उन्होंने गाधीजी से मिलकर वातें की। तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि गाधीजी भी स्वय इसके पक्ष मे नही थे किंतु अधिकाश लोग चाहते थे और

गाधीजी पर दवाव डाल रहे थे, इस कारण समयानुकूल स्थिति के अनुसार उन्होने इस प्रस्ताव को रखना स्वीकार किया था। वावूजी इस प्रस्ताव से सहमत नही थे और महात्माजी के द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर भी उनका मीटिंग मे उन्होने खुलकर विरोध किया। वावूजी अपने विश्वास मे किसी के प्रभाव के कारण डिग नही सकते थे। यह प्रस्ताव गाधीजी की ओर से आने पर भी केवल ११ मत के बहुमत से स्वीकृत हुआ। धारा सभाओ मे कौन कौन जाएगे यह निश्चय करने का काम गाधीजी ने मालवीयजी और डॉ० अन्सारी के सुपुर्द किया। ये लोग वावूजी को समिति मे लेना चाहते थे किंतु उन्होंने बराबर इकार किया।

देश के राजनीतिक जीवन मे सन् १९३३ से १९३६ के बीच कई उतार-चढाव आए। तृतीय गोलमेज कार्फ़ेस के बाद मार्च १९३३ मे ब्रिटिश सरकार ने भारत के लिए कुछ शासन सवधी सुधारो की घोपणा की और इन्हें कार्यान्वित करने के लिए इगलैंड की पार्लियामट ने एक सयुक्त उपसमिति नियुक्त की। इस उपसमिति की सिफारिशे प्राप्त होने के वाद एक अधिनियम तैयार किया गया जो 'गवर्नमेट आफ इडिया ऐक्ट, १९३५' कहलाया। इस ऐक्ट के अनुसार भारत के विभिन्न प्रान्तो को स्वशासन का अधिकार दिया गया, किंतु विशेप विपयो पर केंद्रीय शासन का अधिकार रहा। तत्कालीन ब्रिटिश भारत और देशी राज्यो को मिलाकर एक भारतीय सघ वनाने का भी इसमे सुझाव था। केंद्रीय शासन के पास कुछ महत्त्वपूर्ण केंद्रीय विपय रखे गए, किंतु रक्षा और वैदेशिक नीति वायसराय के अधिकार मे रखी गई। इसमे सवसे अधिक हानिकर दो धाराए थी—(१) प्रांतीय धारा सभाओ का चुनाव साम्प्रदायिक आधार पर होने का प्राविधान, तथा (२) वायसराय और गवर्नरो को क्रमश केंद्र तथा प्रातो मे ऐसे विशेषाधिकारो का दिया जाना जिनके आधार पर वे जब चाहें प्रातीय सरकारें समाप्त कर शासन-सूत्र अपने हाथ मे ले लें।

उधर १९३४ मे बबई के काग्रेस अधिवेशन मे डॉ० राजेन्द्र प्रसाद अध्यक्ष चुने गए। सन् १९३५ मे काग्रेस के पचास वर्प पूरे हो रहे थे, अत देश भर मे धूम-धाम से उसकी स्वर्ण-जयती मानने का निर्णय किया गया। वावूजी को राजेन्द्र वावू ने अपनी कार्यसमिति का सदस्य वनाया। इस बीच वावूजी प्रात की राजनीति में वहुत सक्रिय रहे। इलाहावाद में भी २८ दिसवर १९३५ को काग्रेस की स्वर्णजयती मनायी गयी और वावूजी इसके अध्यक्ष थे।

लगभग इसी समय दो अप्रत्याशित घटनायें हुईं—(१) काग्रेस से गाधीजी का त्यागपत्र, और (२) काग्रेस के भीतर ही एक समाजवादी दल का गठन (जो वाद में सन् १९४६ में एक अलग पार्टी बनी)। गाधीजी ने त्यागपत्र उस समय की परिस्थितियो की प्रतिक्रिया के कारण दिया था। काग्रेस के नवयुवक वर्ग

की आस्था अहिंसा से हट रही थी और वह गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों का खुला विरोध भी करने लगे थे। इस वर्ग मे मुख्य थे पं० जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचंद्र वोस, के० एफ० नारीमन आदि। अत. गाधीजी ने कांग्रेस की साधारण सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया, किंतु इसका प्रभाव यह हुआ कि गाधीजी का कांग्रेस से अलग होने पर भी उस पर प्रभाव बढ़ता ही गया।

लखनऊ मे अप्रैल सन् १९३६ मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। पं० जवाहर लाल नेहरू अध्यक्ष निर्वाचित हुए। स्वागत समिति के गठन को लेकर प्रांतीय समिति के सदस्यों मे कुछ मनमुटाव हो गया। विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गई। उस समय वावूजी ने ही वीच का मार्ग निकाला। पाच सदस्यो की एक सचालन समिति वनाई गई जिसमे वह स्वय एक सदस्य रहे और वहुत परिश्रम कर अधिवेशन को सफल वनाया। अपने अध्यक्षीय भाषण मे पडित नेहरू ने सन् १९३५ के गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट की कडी आलोचना की और घोषणा की कि "भारत कभी भी पूर्ण स्वतत्रता की अपनी माग से पीछे नहीं हटेगा।"

जैसी हम ऊपर चर्चा कर चुके है इस समय काग्रेस मे दो विचारधाराए हो गई थी जिसमें एक दल पदग्रहण के पक्ष में था और दूसरा दल पदग्रहण का विरोधी था। वावूजी पदग्रहण के पक्ष में नहीं थे। उनका सदा यह विचार रहा कि जव तक हम अपनी स्वतत्रता के लिए युद्ध कर रहे हैं, हमें स्वय अपने को पद-ग्रहण से पृथक् रखना चाहिए। इसी कारण सन् १९३६ में उन्होने काग्रेस द्वारा पद ग्रहण किए जाने का विरोध किया था। उनकी वरावर यह धारणा रही कि वही राष्ट्र और समाज उन्नति कर सकता है जिसमें सघर्ष की शक्ति हो। इन्ही दिनो इलाहावाद की नगर काग्रेस कमेटी की ओर से पद-ग्रहण करने के प्रश्न पर विचार करने के लिए तीन प्रमुख काग्रेस जनो की एक उपसमिति गठित की गई। वावूजी भी इसके एक सदस्य थे। उन्होने अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहा था, "पद-ग्रहण के यद्यपि कुछ छोटे-मोटे लाभ हो सकते है पर राष्ट्र का स्थायी लाभ तो हम पदो की ममता से अलग रह कर ही कर सकते हैं और तभी पूर्ण स्वराज्य के अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं।"

सन् १९३७ के चुनाव

ब्रिटिश शासन से सन् १९३६ मे समझौता होने पर प्रातीय विधान सभाओ मे जाने का निर्णय किया गया। इस निर्णय के आधार पर सन् १९३७ के चुनाव मे काग्रेस ने भाग लिया। वावूजी प्रात की विधान सभा के चुनाव मे स्वय प्रत्याशी होने के लिए तैयार नही थे। पं० जवाहरलाल नेहरू ने तव उनसे कहा, "यदि चुनाव के वाद यह स्थिति उत्पन्न हो कि काग्रेस को प्रात के शासन का भार ग्रहण करना पड़े तो तुम्हारे अतिरिक्त कौन प्रात के मुख्यमंत्री का भार

समालेगा।" बाबूजी अपनी निर्भीकता, अनुशासन मे कठाई तथा अपने सिद्धांतों की दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध थे। इसी कारण प० नेहरू की दृष्टि मे केवल बाबूजी ही इस प्रात के शासन की बागडोर सभालने के लिए कांग्रेस में सबसे अधिक उपयुक्त थे। वह ऐसा समय था जब पग-पग पर ब्रिटिश शासन से मोर्चा लेना पडता था। हमे स्मरण है कि जिस दिन चुनाव का आवेदन पत्र चुनाव कार्यालय मे जमा किए जाने की अतिम तिथि थी उस दिन प्रात काल से ही श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित हमारे मीरगज के घर में धरना देकर बैठ गई और बाबूजी से कहा, "जब तक आप चुनाव के लिए प्रत्याशी के रूप में अपने नाम का आवेदन पत्र नही भरेंगे, मैं यही बैठी रहूगी।" अत में उनकी तथा कांग्रेस के अनेक मित्रो और सहयोगियो की इच्छा और आग्रह के सामने बाबूजी को झुकना पड़ा। वह इलाहाबाद नगर से इस चुनाव में विधान सभा के लिए प्रत्याशी हुए। चुनावो में काग्रेस की बडे बहुमत से विजय हुई और उसे प्रात के शासन का भार सौंपा गया। प्रश्न आया कि विधान सभा की काग्रेस पार्टी का नेता कौन चुना जाय। यद्यपि पहले से यही कह कर बाबूजी को चुनाव मे खडा किया गया था कि पार्टी के नेता और मुख्यमत्री के पद का भार उन्हें ही सभालना पडेगा और काग्रेस के अधिकाश लोग यह समझते थे और चाहते भी थे, पर कुछ ऐसे लोगो ने, जो बाबूजी के कडे स्वभाव से परिचित थे और जानते थे कि बाबूजी के सामने उन्हें कोई विशेष लाभ नही हो सकेगा, पर्दे के पीछे दाव पेच शुरू कर दिए। बाबूजी को इस षड्यत्र की जानकारी भी नही होने पाई। ऐसे कुछ सदस्यो ने आपस में मत्रणा कर नेता पद के लिए प० गोविंद वल्लभ पंत का नाम निश्चित कर लिया और जब प्रातीय काग्रेस समिति की बैठक आरभ हुई तब आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा पत जी का नाम प्रस्तावित करा दिया। आचार्य नरेन्द्र देव उस समय प्रातीय काग्रेस समिति के अध्यक्ष थे। प० नेहरू तथा स्वय बाबूजी भी इस प्रस्ताव से चौके। आचार्य नरेन्द्र देव बाबूजी के बहुत घनिष्ठ मित्रो में से थे। वह बहुत भोले थे। उन्हें स्वय चुनाव से पहले हुई बातचीत की जानकारी नही थी। राजनीति के दाव पेंच में निपुण लोगो के कहने मे वह आ गए और प० पत का नाम प्रस्तावित कर दिया। जवाहरलालजी जब तक इस झटके से सभलकर कुछ बोलें बाबूजी ने स्वय अपनी ओर से भी पतजी के नाम का समर्थन कर दिया। इस पर नेहरूजी केवल बाबूजी को देखते ही रह गए, बोले कुछ नही। बाबूजी के स्थान पर यदि अन्य कोई व्यक्ति होता जिसे चुनाव में इस प्रकार घसीटा गया था तो अवश्य दल के नेता पद के लिए अपना नाम प्रस्तावित करा कर एक विरोध का वातावरण उपस्थित कर देता। प० नेहरू तथा अधिकाश लोग बाबूजी को चाहते भी थे और उनकी जीत भी होती, किंतु बाबूजी ने ऐसा नही होने दिया। यह था बाबूजी के चरित्र का ऊचापन और पदो तथा सम्मान के प्रति उनकी

विरक्ति। जव मत्रिमंडल का गठन हुआ तव पत जी ने अपनी इच्छानुसार मत्री चुने। वावूजी को भी पद देना चाहा और कहा कि वह अपनी इच्छानुसार विभाग चुन लें, किंतु वावूजी ने कोई पद लेना स्वीकार नही किया। इस पर नेहरूजी ने और मौलाना अवुल कलाम आजाद ने इन पर वहुत दवाव डाला और कहा, "मत्रिमडल को मजवूत वनाने के लिए आपका इसमें रहना आवश्यक है।" इस प्रकार सव लोगो का दवाव पडने पर वावूजी ने मत्रिमडल में तो नही किंतु विधान सभा का अध्यक्ष पद ग्रहण करना इस शर्त पर स्वीकार किया कि वह काग्रेस से अपना सवध विच्छेद नही करेंगे और वरावर सक्रिय राजनीति में भाग लेते रहेंगे। काग्रेस समिति ने जव उनकी यह शर्त मान ली तव उन्होने स्पीकर का पद स्वीकार कर लिया।

विधान सभा के स्पीकर

इगलैड की पार्लियामेंट की यह परपरा है कि स्पीकर चुने जाते ही व्यक्ति राजनीतिक दलो से अपना सवध-विच्छेद कर लेता है, अर्थात् वह किसी राजनीतिक दल का सदस्य नही रह जाता। इस परपरा के पीछे भावना यह निहित है कि वह व्यक्ति अध्यक्ष के रूप मे निष्पक्ष रहेगा। किंतु वावूजी का कहना था कि जीवन भर जिस राजनीतिक दल मे वह सवधित रहे उससे अपने को वाह्य रूप मे पृथक् कर लेने पर भी वह मन से उसमे अलग नही हो सकते। उनके दृष्टिकोण मे अध्यक्ष के रूप से निष्पक्ष रहना एक वात थी और सक्रिय राजनीति मे भाग लेना उससे अलग वात। यदि व्यक्ति सचाई के मार्ग पर चलता है तो इन दोनो मे कोई विरोध नही होना चाहिए। उस समय देश भर मे इस विषय पर वडा वाद-विवाद चला। समाचार-पत्रो द्वारा विभिन्न तर्क पक्ष और विपक्ष मे उपस्थित किए गए, और दूसरे देशो की परपराओ के उदाहरण भी रखे गए। किंतु वावूजी अपने विचार पर दृढ़ रहे। उनका कहना था कि हमारे लिए दूसरे देशो की नकल करना आवश्यक नही है, हमे अपनी परपरा स्वय वनानी चाहिए जो हमारी आवश्यकताओ और विशेषताओ के अनुरूप हो और भारतीय हो।

वावूजी ने २६ जुलाई सन् १६३७ को विधान सभा के सदस्य के रूप मे शपथ ली और दूसरे दिन वह सर्वसम्मति से स्पीकर चुने गए। सभी दलो ने जिसमे मुसलिम लीग भी सम्मिलित थी, एक स्वर से इनके निर्वाचन का समर्थन किया। यह इनकी लोकप्रियता के साथ-साथ विधान सभा के सभी सदस्यो का इनकी अटूट न्यायप्रियता के प्रति पूर्ण विश्वास का परिचायक था। वावूजी के स्पीकर होने पर मुख्यमत्री ने विधान सभा मे इनके अभिनन्दन मे वक्तव्य देते हुए कहा, "आपका सर्वसम्मति से स्पीकर चुना जाना इस असेम्वली के भविष्य के लिए एक वड़ा शुभ लक्षण है।...जव तक आप इस पद पर विराजमान हैं,

किसी को अपने मन मे किसी प्रकार की आशका रखने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव मे यह कहना वडा कठिन है कि इस अवसर पर हम आपको वधाई दें या आपको स्पीकर के रूप मे पाने पर हम स्वय अपने आपको वधाई दें। मेरे विचार मे सदन ने आपको सर्वसम्मति से चुनकर स्वय अपना मान वढाया है। आपने अक्षरश देश के लिए अपना सव कुछ त्यागा है। स्वतत्रता की लडाई मे आप सदा सवसे आगे रहे हैं। देश की निर्धन, अशक्त, मूक और दुखी जनता की सभी प्रकार की कठिनाइयो मे उनकी सहायता करने मे आप सदा सलग्न रहे हैं। आपका इस प्रदेश के सार्वजनिक जीवन मे एक विशिष्ट स्थान है और आपके अपने उच्च चरित्र, विद्वत्ता, सस्कृति और पूर्ण सादगी तथा असीमित त्याग के कारण सवके हृदयो मे आपके प्रति वडा सम्मान है। मुझे स्मरण है कि आप इस पद को ग्रहण करने के प्रति कितना अधिक उदासीन थे, और इसलिए मैं आपके प्रति वडा आभारी हू कि अपने सहयोगियो की सहायता के फलस्वरूप मैं आपको इस पद के गहन उत्तरदायित्वो का भार स्वीकार करने के लिए मनाने मे सफल हो सका। • आपके सामने एक नाजुक और कठिन कर्त्तव्य है। • मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप सव कर्त्तव्यो का निर्वाह करने के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त हैं और ये कर्त्तव्य चाहे जितने वडे और कठिन लगें, आप इनका निर्वाह पूर्ण योग्यता से करेंगे।"*

इस अवसर पर वावूजी ने अपने अभिनन्दन के उत्तर मे जो वक्तव्य दिया उससे स्पीकर-पद के गौरव के सवध मे उनके विचार स्पष्ट होते हैं उन्होंने कहा —

"वधुगण,

मुझे अपना स्पीकर चुनकर आपने जो उदारता प्रदर्शित की है उसके लिए मैं हृदय से आप सवको धन्यवाद देता हू। मेरे लिए यह कार्य नया है और जैसा कहा गया है, मेरा उत्तरदायित्व वडा है। मुझे आप सवके सहयोग और अनुग्रह की वडी मात्रा मे आवश्यकता होगी। जहा तक मेरा सवध है मैं विना किसी हिचक के यह वचन दे सकता हू कि इस सदन के तथा इसके प्रत्येक सदस्य के अधिकारो और विशेपाधिकारो की रक्षा करने की दिशा मे मेरा पूर्ण प्रयत्न होगा। जो उत्तरदायित्व आपने मुझे सौपा है वह एक पवित्र कर्त्तव्य है और यद्यपि मैं इस कार्य के लिए नया हू, मैं प्रार्थना करता हू कि मुझे इन कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिए उचित शक्ति और सद्वुद्धि प्राप्त हो।

"हम अपने इतिहास के एक नये दौर से गुजर रहे है। देश एक नये जीवन और नये विश्वास से उद्वेलित हो रहा है। काग्रेस का मत्रिमडल एक नयी घटना

* उत्तर प्रदेश विधानसभा की कार्यवाही खड १, पृष्ठ १०

है और देशवासियो के जीवन मे एक बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। मेरा कहना है कि देश मे राजनीतिक कार्य के संबध मे हमे अपने पुराने विचारो मे परिवर्तन लाना है। गत २६ तारीख को इस सत्र के आरंभ होने पर इस सदन की चहार-दीवारी के भीतर हमने जो कुछ देखा उससे देशवासियो की मनोभावनाओ का सकेत मिलता है।

आप सब जानते हैं कि मैं काग्रेस पार्टी का सदस्य हू और इस पार्टी का प्रत्येक सदस्य देश की राजनीतिक स्वतत्रता के लिए कार्य करने हेतु वचन-बद्ध है। यहा हमारी उपस्थिति इस कार्य की दिशा मे केवल एक कदम है। जहा एक ओर मेरे राजनीतिक कार्य का रूप और मेरे पिछले सबध अपनी जगह पूर्णत. निश्चित है, दूसरी ओर आपको निश्चित रूप से यह आशा करने का अधिकार है कि इस सदन मे मैं कार्य सचालन के अदर अपना जो मत व्यक्त करू वह पूर्णत निष्पक्ष हो। जैसा माननीय मुख्यमत्री तथा कुछ अन्य वक्ताओ द्वारा इगित किया गया है, स्पीकर के पद के सवध मे विभिन्न परपरायें विकसित हुई हैं। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे वहा की प्रतिनिधि सभा का स्पीकर देश के राजनीतिक जीवन मे जो स्थान रखता है वह इगलैड की पार्लियामेंट के स्पीकर से भिन्न है। इसी प्रकार फ्रास के चैम्बर और सेनेट के अध्यक्षो का जो राजनीतिक सपर्क और तत्सवधी उत्तरदायित्व रहता है वह इगलैंड के स्पीकर का नही रहता। हमारे देश का प्रमुख राजनीतिक दल 'भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस' या अन्य अल्पसख्यक दल जिन आधारो पर गठित हुए हैं, स्वतत्र देशो के राजनीतिक दल उन आधारो से भिन्न आधारो पर सगठित होते हैं। हमारी राजनीतिक परिस्थिति एक विशेष प्रकार की है। स्वभावत हमारी परपराओ को भी इन्ही परिस्थितियो के अनु-कूल आकार-प्रकार देना होगा। मेरे विचार मे भी, और जैसा कि आप मे से एक ने कहा भी है, हमे इन परपराओ को भारतीय रूप देना चाहिए। इगलैड की पार्लियामेंट की जो परपराए है उन्हे इस देश की विधान सभाओ की परपराओ का आधार बनाने की आवश्यकता नही है। हमारी परपराओ को हमारी आव-श्यकताओ के अनुरूप विकसित होना चाहिए।

किंतु हमारी परपराए जिस रूप मे भी विकसित हो, मैं यह अनुभव करता हू कि एक अच्छे जनतत्रीय शासन को इस मुख्य मूलभूत सिद्धात पर आधारित होना चाहिए कि विभिन्न दलो के तथा स्वतत्र सदस्यो से व्यवहार करने मे सदन का अध्यक्ष निष्पक्ष व्यवहार प्रदर्शित करे। मेरा विश्वास है कि इस सदन का प्रत्येक सदस्य—चाहे उसके राजनीतिक विचार कुछ भी हो—सदस्य के रूप मे अपने अधिकारो की रक्षा की अपेक्षा स्पीकर से कर सकता है। मेरा यह पूरा प्रयत्न होगा, मेरी यह प्रार्थना है और मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि स्पीकर के प्रमुख कर्त्तव्यो का निर्वाह करने मे मेरी ओर से कोई त्रुटि न

आनेपाए ।

मैं इस पद पर आपके द्वारा चुने जाने और उत्साह दिलाने के लिए आप सब के प्रति पुन आभार प्रकट करता हू ।"

विधान सभा के अध्यक्ष के रूप मे बाबूजी ने जिस निष्पक्षता से गभीर प्रश्नो पर अपने निर्णय दिए उसकी सराहना सभी राजनीतिक दलो ने मुक्त कठ से की। उनके द्वारा दी गई व्यवस्थायें आज भी मान्य है और सभी विधान सभाओ के अध्यक्षो का मार्गदर्शन करती हैं। उन्होने अध्यक्ष-पद की गरिमा को बढाया। प्राय उनके सबध मे लोगो की यह धारणा थी कि बाबूजी को कोई निर्णय लेने मे बहुत समय लगता है। किंतु वास्तविकता यह थी कि वह प्रत्येक प्रश्न को बहुत गहराई से सोचते थे और तब अपना निर्णय देते थे। इसीलिए उनके दिए हुए निर्णयो की गरिमा सदा बनी रही। जिन लोगो ने अध्यक्ष के रूप मे उनको कार्य करते देखा है उनका कहना है कि बाबूजी ने अपने निर्णय और व्यवस्थायें देने में चमत्कारिक ढग से समयानुकूल तत्परता दिखलाई, और अपनी कार्यशैली में शासकीय निपुणता प्रदर्शित की। डॉ० सपूर्णानद ने लिखा है, "काल अनत है, ऐसा सिद्धात रूप में सभी मानते हैं किंतु टडनजी व्यवहार में भी इस सिद्धात को अवतरित किया करते हैं। विधान सभा की अध्यक्षता के समय किसी ने भी उनको देर से पहुचते नही देखा। परतु इसके सिवाय और किसी काम को वह स्यात् ही ठीक समय पर कर पाते हो।"

उन दिनो प्रातीय तथा केंद्रीय विधान सभाओ में समस्त कार्यवाही अग्रेजी भाषा में होती थी। बाबूजी को यह प्रणाली दोषपूर्ण जान पडी क्योकि विदेशी भाषा के माध्यम से अपने विचारो को स्पष्ट रूप में व्यक्त कर सकना कुछ ही लोगो के लिए सभव होता है। अतएव बाबूजी ने विधान सभा की कार्यवाही के लिए भाषा सबधी नीति के सबध में जो निर्णय दिया उसके फल-स्वरूप प्रत्येक सदस्य को यह स्वतत्रता मिली कि वह अपने विचार प्रात की किसी भी मान्य भाषा में रख सके। अध्यक्ष पद का भार-ग्रहण करने के दो दिनो बाद इस सबध मे उन्होने अपनी व्यवस्था दी। उन्होंने बतलाया कि

"विधान सभा में प्रयोग की जाने वाली भाषा के सबध में ऐक्ट में निम्न-लिखित प्राविधान है —

'विधान सभा की कार्यवाही अग्रेजी भाषा में होगी किंतु कोई भी सदस्य, जिसे अग्रेजी भाषा की पर्याप्त योग्यता नही है, प्रदेश की किसी भी मान्य भाषा में इस सभा में अपना भाषण दे सकता है।

'स्पीकर को यह अधिकार है कि वह किसी भी सदस्य को ऐसी भाषा में

बोलने की अनुमति दे सकता हूँ जिसमें बोलने में वह समर्थ है।' "*

आगे उन्होंने कहा, "उक्त प्राविधान के अन्तर्गत मुझको यह अख्तियार दिया गया है कि अगर कोई साहब किसी जबान को अच्छी तरह जानते हैं तो उसके बोलने मे रुकावट न डालू। मेरा अपना ख्याल है कि इस सभा मे ज्यादातर आदमी ऐसे हैं जो हिंदी बोलने मे प्रवीण या दक्ष हैं। अगर कोई साहब हिंदी मे बोलना चाहेगे तो मुझे कोई एतराज नही होगा। मैं खुद पसंद करूगा कि लोग ऐसी जबान में बोलें जिसे सब समझ सकें। मुझको जरूर अग्रेजी बोलनी पड़ेगी क्योकि कायदा यह है कि यहा की जबान अग्रेजी है, लेकिन मैं खुद बराबर यह कोशिश करूगा कि मैं जो कुछ खास बात कहू वह हिंदी मे भी कहू जिससे सब लोग समझ लें।"

अपने भाषण मे उन्होंने यह भी कहा कि, "माननीय सदस्यो का केवल यही अधिकार नही है कि वे यहा बोलें, अपितु उनका यह भी अधिकार है कि यहा जो बोला जाय उसे सदन में समझा भी जाय। बहुसख्यक सदस्य जो भाषा नही समझ सकते वह सदन की भाषा नही हो सकती।"

बाबूजी की भाषा सबधी इस व्यवस्था को सभी प्रातो की विधान सभाओ ने मान्यता दी जिसके फलस्वरूप उनके यहा की विधान सभाओ में भी अपनी-अपनी भाषाओ का प्रचलन हुआ।

विधान सभा का अध्यक्ष पद बाबूजी ने इसी शर्त पर स्वीकार किया था कि वह कांग्रेस दल से अपना सबंध विच्छेद नही करेंगे और सदन के बाहर सक्रिय राजनीति में भाग लेते रहेंगे। विरोधी दल के सदस्यो ने (जिनमें प्रमुख मुसलिम लीग के सदस्य श्री लारी थे) उनके स्पीकर होते हुए काग्रेस दल का सदस्य बने रहने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक स्थगन प्रस्ताव विधान सभा में सन् १९३७ में प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव के प्राप्त होने पर बाबूजी ने अपनी जो व्यवस्था दी वह विशेष महत्त्व रखती है और इस प्रकार है —

"मेरे पास एक एडजर्नमेंट मोशन का नोटिस आया है। इसमें कहा गया है

---

* The business of the Assembly shall be transacted in the English language, but any member, who is not acquainted or sufficiently acquainted with the English language, may address the Assembly in any recognised language of the Province

Provided that the Speaker may call upon any member to speak in any language in which he is known to be proficient"

विधान सभा की कार्यवाही, खड ५, पृष्ठ १८-१९

कि राजनीति में स्पीकर के हिस्सा लेने के मसले पर गौर करना जरूरी है। मुझको बहुत खुशी होती अगर इस मसले पर यहा बहस होती। लेकिन मैं समझता हू कि महज इसलिए कि यह मसला मेरे बारे में है, इसके बहस करने की इजाजत देना ठीक नही होगा। इससे आइन्दा के लिए गलत रास्ता खुल जाएगा कि स्पीकर के बारे में यहा बहस हो। मेरा ख्याल है कि लारी साहब भी अच्छी तरह से कायदो से वाकिफ होगे कि स्पीकर के बारे में कोई एडजर्नमेंट मोशन नही लाया जा सकता। लारी साहब बहुत होशियार आदमी हैं। उन्होने कुछ समझ कर ही यह मोशन दिया होगा। राजनीति में बहुत सी ऐसी बातें होती है जिनकी वजह से उन्होने यह तजवीज देना मुनासिब समझा। मेरी राय है कि स्पीकर का मसला एडजर्नमेंट का विषय नही हो सकता। इसलिए मैं इस तजवीज को पेश करने की इजाजत नही देता हू।

इसके साथ-साथ हमेशा से मेरी यह राय रही है कि जहा जिम्मेदारी का पद हो वह सिर्फ बहुमत की ताकत से ही नही लेना चाहिए। मैंने जिंदगी भर सिर्फ बहुमत की ताकत से किसी पद पर जाने की ख्वाहिश नही की है। मुझे इस वक्त मौका नही है कि मैं आपको बताऊ कि कहा-कहा बहुमत की ताकत पर पदो के लेने से मैंने इकार किया है। अपोजिशन में मेरे इलाहाबाद के एक दोस्त मौजूद हैं जो इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं। इसलिए मेरे भाई जो अपोजिशन में है अगर यह समझते है कि राजनीति यानी सियासी मामलो में मेरा हिस्सा लेना ठीक नही है और साथ में वे यह भी समझते हैं कि मेरे राजनीति में हिस्सा लेने से मेरे ऊपर उनका भरोसा कम होता है तो उनमे मेरा कहना है कि बहुमत के बल पर मैं यहा नही रहूगा। अगर सिर्फ आपोजिशन के लोग मुझसे यह कह दें कि आप पर हमारा भरोसा नही है तो मैं किसी से पूछने नही जाऊगा, आज ही मेरा इस्तीफा चला जायगा। स्पीकरी या मिनिस्टरी आदि छोटी चीजें है। अपनी आत्मा का सतोष उनसे ज्यादा कीमती है। मैं जिस चीज को ठीक समझता हू उसको न अपोजिशन के डर से और न काग्रेस दल के दबाव से बद करने वाला हू। मुल्क की जैसी हालत है उसके लिहाज से स्पीकर को राजनीति के काम में भाग लेने की इजाजत देनी ही चाहिए, नही तो किसी तीसरे दर्जे के आदमी को यहा लाकर बैठाना पडेगा। मेरी कतई राय है कि आपको अपना नया कन्वेनशन बनाना चाहिए। मैं तो अपनी राय पर कायम हू और मैं अपोजिशन के मेम्बर साहबान से फिर कहूगा कि मैं सिर्फ बहुमत की ताकत पर यहा रहना नही चाहता। अगर उनका मुझ में विश्वास नही है तो वे काफी तादाद में मुझको एक पर्चे पर लिख कर अभी भेज दें, मैं आज ही अपना इस्तीफा दे दूगा।"*

* विधान सभा की कार्यवाही, १९३७

किसी एक भी सदस्य ने उनमें अविश्वास प्रकट करने का साहस नही किया।
सन् १९३८ मे पुन यह चर्चा उठाई गई कि स्पीकर को किसी राजनीतिक दल का सदस्य नही रहना चाहिए क्योकि एक दल विशेष से सबद्ध रहने के कारण उसके द्वारा दी गई व्यवस्था पर उस दल का प्रभाव पड सकता है। ऐसे अवसर पर उन्होने विधान सभा मे जो वक्तव्य दिया था उसका कुछ अश इस प्रकार है—

"मैं यह सोच भी नही सकता कि कांग्रेस दल एक क्षण के लिए भी यह सपना देखेगा कि मेरे अध्यक्षीय कर्त्तव्यो से सबध रखने वाले विषयो मे वह मेरे ऊपर प्रभाव डाले और यदि कांग्रेस कार्यसमिति कभी चाहे कि वह मेरे अध्यक्षीय कार्य मे मुझे कोई आदेश दे तो उस दिन मेरी अध्यक्षता समाप्त हो जाएगी। मेरा अनुमान है कि अपने जीवन मे अब तक अपने और अपने अन्त करण के बीच कभी तीसरे पक्ष को मैंने दखल नही देने दिया, और भविष्य मे भी ऐसी सभावना न होगी कि मैं ऐसा करने दू। जो भी मेरे कार्य पर प्रभाव डालना चाहता है उसे पहले मेरी सम्मति को प्रभावित और मेरे मत को परिवर्तित करना पडेगा। मेरे लिए मेरा अत करण ही ईश्वर का शब्द है और वही मुख्य अधिकारी है जिस के सामने मैं नमता हू। दूसरा अधिकारी जिसके सामने मैं झुकता हू स्वय यह सारा सदन है, उन दलो मे से कोई दल-विशेष नही जिनसे कि यह बना है।"

इस भाषण से प्रभावित होकर अपोजिशन ने अपना प्रस्ताव वापस लेलिया।
अध्यक्ष के रूप मे विधान सभा मे बाबूजी का अनुशासन आदर्श रूप माना जाता है। आज भी उनके अनुशासन की तथा उनके द्वारा स्थापित परपराओ की लोग प्रशसा करते हैं। उन्होंने सदा विधान सभा के गौरव की रक्षा का ध्यान रखा। सभा के नियमो के विरुद्ध या उसकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल जब कभी किसी भी सदस्य की ओर से, चाहे वह मत्री हो चाहे सामान्य सदस्य, कोई भी बात होती थी तो वह तुरत कडा रुख अपनाते थे। उनके अध्यक्ष काल मे किसी भी सदस्य का यह साहस नही होता था कि वह कोई भी बात सभा की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल कर सके। सारा वातावरण गभीर और शात बना रहता था। उनकी कार्यप्रणाली का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है —

प्रश्नो के लिए नियत समय मे विरोधी दल के एक सदस्य ने एक प्रश्न पूछा। पतजी ने उत्तर देने के स्थान पर उन सज्जन से एक दूसरा प्रश्न कर लिया मानो उसी प्रश्न मे उत्तर निहित हो। बाबूजी ने तुरत सतर्कता से कहा, "सावधान, सावधान।" इस पर पतजी बैठ गए। तब बाबूजी ने कहा, "माननीय सदस्यो का ही अधिकार प्रश्न करने का है। सरकार को यह अधिकार नही है। उसका उत्तर देने का ही उत्तरदायित्व है।"

सितम्वर १९३९ मे द्वितीय विश्व युद्ध आरंभ हुआ जिसमे ब्रिटेन भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध मे सम्मिलित हुआ। ब्रिटिश शासन के अधीन होने के कारण हमारे देश को भी अग्रेजो ने अपने साथ युद्ध मे सम्मिलित कर लिया। इस सवध मे न तो प्रातीय न केंद्रीय विधान सभा से कोई परामर्श किया गया। साथ ही ब्रिटिश शासन ने प्रातीय विधान सभाओ के कुछ अधिकार भी छीन लिए। ऐसी परिस्थिति मे काग्रेस कार्यसमिति ने १४ सितम्वर सन् १९३९ को निर्णय किया कि उन प्रातो मे जहा काग्रेस दल का मन्त्रिमडल है, मन्त्रिमडल अपना त्यागपत्र दे दे। इस निर्णय के अनुसार उत्तर प्रदेश के मन्त्रिमडल ने भी अपना त्यागपत्र दे दिया। किंतु वाबूजी नियमानुसार स्पीकर वने रहे, क्योकि विधानसभायें समाप्त नही की गई थी।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

मौलाना अवुल कलाम आजाद की अध्यक्षता मे अप्रैल १९४० मे रामगढ (विहार) मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। गाधीजी को अधिकार दिया गया कि उस समय की परिस्थिति के अनुसार जिस प्रकार का आदोलन वह उचित समझें आरभ करायें। गाधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के रूप मे आदोलन आरभ किए जाने की योजना रखी। आचार्य विनोवा भावे प्रथम सत्याग्र ही हुए। इस आदोलन से जनता मे एक जागृति उत्पन्न हुई। आन्दोलन के इस क्रम मे २ अप्रैल सन् १९४१ को वावूजी वदी वनाए गए और कुछ ही दिन नैनी जेल मे रखे जाने के वाद फतेहगढ जेल भेज दिए गए। वहा से ७ दिसम्वर १९४१ को छोडे गए। वावूजी के जेल जाने के कुछ दिनो वाद ही विधान सभा भी भग कर दी गई और फलस्वरूप वावूजी अध्यक्ष भी नही रहे।

विश्वयुद्ध की स्थिति ने सन् १९४१ मे नया मोड लिया। जापान भी जर्मनी के पक्ष मे युद्ध मे अवतरित हो गया और अमरीका, ब्रिटेन तथा फ्रास आदि के विपक्ष मे युद्धरत हुआ। जापान के युद्ध मे सम्मिलित होने से ऐसा लगने लगा था कि भारत की भूमि पर भी युद्ध होने की आशका वढ गई है। सिंगापुर और मलाया पर अपना अधिकार जमाकर जापान वर्मा मे प्रवेश कर चुका था। इसी वीच सुभापचन्द्र वोस छिपकर भारत से बाहर चले गए और दक्षिण-पूर्व एशिया मे पहुच कर उन्होने एक 'आजाद हिन्द फौज' का सगठन किया। इसका उद्देश्य था कि जापान के साथ मिलकर भारत को अग्रेजो की अधीनता से मुक्त कराया जाय। इस सेना ने जो शौर्य और पराक्रम दिखलाया उससे भी ब्रिटिश शासन को लगने लगा कि भारतवर्ष को यदि वह उसकी स्वतन्त्रता की माग की दिशा मे कोई सतोष नही देगा तो परिस्थिति ब्रिटिश शासन के वहुत विरुद्ध हो जाएगी। अत ब्रिटेन की सरकार ने मार्च सन् १९४२ मे सर स्टैफर्ड क्रिप्स को एक राज-

नीतिक मिशन का संदेशवाहक वनाकर भारतवर्प इस उद्देश्य से भेजा कि वह विभिन्न राजनीतिक दलो से वातें कर समझौते का कुछ रास्ता निकालें। यह दल अपने उद्देश्य मे असफल रहा और एक मास वाद वापस लौट गया।

भारत छोडो आंदोलन

सन् १९४२ के अप्रैल महीने मे वर्धा मे काग्रेस कार्यसमिति की वैठक कई दिनो से चल रही थी। यह प्रश्न विचाराधीन था कि देश की वर्तमान परिस्थिति मे काग्रेस क्या कदम उठाए। कुछ सदस्य इस मत के थे कि शासन के विरुद्ध आदोलन पुन आरंभ किया जाय किंतु कुछ अन्य सदस्य इसके पक्ष मे नही थे। कोई निर्णय नही हो पा रहा था। इन्ही दिनो वर्धा मे राष्ट्रभापा प्रचार समिति की वैठक भी महात्माजी के आश्रम मे हो रही थी। वावूजी इस वैठक मे सम्मिलित होने के लिए वहा गए हुए थे। इसी वीच एक दिन सध्या समय सरदार पटेल वावूजी के पास आए और कहा, "मैं काग्रेस कार्य समिति की वैठक के लिए आपको आमन्त्रित करने आया हू। कल वैठक मे आप अवश्य उपस्थित हो। हमे आपके परामर्श की आवश्यकता है।" वावूजी ने उत्तर दिया, "निमत्रण के लिए आभारी हू, किंतु वैठक मे आ नही सकूगा।" फिर पूछा, "किस विषय पर मेरा परामर्श आप चाहते है।" तव सरदार पटेल ने वतलाया कि हम कई दिनो से काग्रेस कार्यसमिति मे वातचीत और वहस कर रहे हैं कि क्या कोई नया आदोलन इस समय चलाया जाय या नही। किंतु कोई निर्णय हम नही कर पा रहे हैं। इस पर वावूजी ने कहा, "इतने वर्षों के राजनीतिक जीवन का मेरा अनुभव है कि जव-जव हमने कोई आदोलन आरभ किया, हम आगे वढ़े हैं और कुछ प्रगति हुई है, और जव हमने आंदोलन वद रखा हमारी प्रगति रुकी है। अत मेरा तो निश्चित मत है कि आंदोलन आरभ होना चाहिए।" वावूजी की यह वात सुनकर सरदार पटेल ने कहा कि "ठीक है। मुझे आपका परामर्श मिल गया। मैं भी आपसे सहमत हू। मुझे आशा है कि कार्य समिति मे हम लोग अव इसी दिशा मे कोई निश्चय कर सकेंगे।" उक्त घटना से स्पष्ट है कि सरदार पटेल वावूजी के मत को कितना महत्त्व देते थे। इसके वाद कांग्रेस कार्यसमिति की १४ अप्रैल १९४२ की वैठक मे यह निश्चय हुआ कि ब्रिटिश शासन से यह माग की जाय कि वह हमारे देश से अपनी सत्ता हटा ले और यदि यह माग स्वीकार न हो तो शासन से सीधा सघर्ष किया जाय। सरकार ने इस माग पर कोई ध्यान नही दिया। अतिम निर्णय के लिए ७ अगस्त १९४२ को काग्रेस कार्यसमिति की एक वैठक ववई में विडला भवन में हुई जिसमें पूर्ण स्वतंत्रता की मांग का प्रस्ताव पुन स्वीकृत हुआ और नारा दिया गया 'अग्रेजो, भारत छोडो'। यह आदोलन 'भारत छोडो' आदोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस आदोलन का नेतृत्व भी गाधीजी को सौंपा गया।

कांग्रेस द्वारा इस आदोलन का निश्चय होते ही दूसरे दिन प्रातःकाल कार्यसमिति के सब सदस्य तथा देश के अन्य स्थानो में कांग्रेस के वरिष्ठ नेता गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गए। बाबूजी भी ८ अगस्त को इलाहाबाद में गिरफ्तार कर नैनी जेल भेजे गए जहा से बाद में उन्हें बरेली जेल भेज दिया गया।

नेताओ के जेल में बद किए जाने के बाद जनता ने स्वय आदोलन की बाग-डोर सभाली। बडी तीव्रता से आदोलन चला। जनता की ओर से सरकारी सपत्ति को जगह-जगह नष्ट करने और उसमे आग लगाने की घटनायें होने लगी। फलस्वरूप शासन ने अपना दमनचक्र भी चलाया। जगह-जगह गोलिया चलाई और काफी लोग मरे। शासन के दमनचक्र तथा जनता के हिसात्मक कार्यों के विरोध में गाधीजी ने ८ फरवरी १९४३ को इक्कीस दिन का उपवास जेल में ही किया। इसका बहुत ही गभीर प्रभाव जनता और सरकार दोनो पर पडा। इसके बाद आदोलन शातिपूर्ण ढग से धीरे-धीरे चलता रहा और सरकार की दमन नीति भी कुछ शात हुई। जब अधिकाश नेतागण जेल में थे तब बाहर रह गये कुछ नेताओ ने छिपकर आदोलन का सचालन किया। धीरे-धीरे ये भी गिरफ्तार हो गए। जो कार्यकर्ता जेल से बाहर रह गए वे रचनात्मक कार्य करते रहे। अतः जनता में निष्क्रियता और निराशा आ गई। मार्गदर्शक कोई नही था। सामूहिक जुर्माने और कर्जे बेरहमी से वसूल किए जा रहे थे। इसी बीच बाबूजी हर्निया रोग से ग्रस्त होकर बरेली जेल में बहुत अस्वस्थ हो गए और फलस्वरूप शासन ने उन्हे २२ अगस्त १९४४ को छोड दिया। जेल से बाहर आते ही उन्होने परिस्थिति को देखा और कांग्रेस को पुन सगठित करना आरभ किया। गवर्नर हैलेट के अत्याचारो और दमनचक्र से जनता बहुत पीडित थी। बाबूजी ने इसके विरोध में सार्वजनिक रूप से बोलना आरभ किया। उस समय के वातावरण को उन्होने 'गुडाशाही' (स्काउण्ड्रेलिज्म) का नाम दिया था। लोगो को आशका थी कि वह पुन शीघ्र पकडे जाएगे किंतु उन्हें इसकी चिन्ता नही थी।

'सयुक्त प्रातीय प्रतिनिधि असेम्बली' की स्थापना

कानपुर में १० से १२ अक्टूबर १९४४ को कांग्रेसजनो की एक बैठक बाबूजी ने आमन्त्रित की। कांग्रेस गैर-कानूनी सस्था घोषित हो चुकी थी। अत इस बैठक में 'सयुक्त प्रातीय प्रतिनिधि असेम्बली' नाम से एक नई सस्था बनाई गई। बाबूजी इसके सभापति चुने गए। इस सबध मे ३ नवम्बर १९४४ को बाबूजी ने स्यालकोट जेल में नजरबद श्री देवराज सेठी को जो पत्र लिखा था। उसका मुख्य अश नीचे दिया जा रहा है—

"मेरा स्वास्थ्य साधारण है। अब की बार जेल में मुझको हर्निया अवश्य हो

गया। एक दिन जेल में ऐंठन के कारण विशेष कष्ट भी हुआ था। परतु साधारण रीति से यह कष्टदायक नही है। उसमें चीरा लगाने की वात डाक्टरो ने अभी टाल दी है, क्योकि मुझे जेल में खासी भी हो गई थी और वह प्राय रहती है। ब्रौंकाइ-टिस वताई गई है।

जेल से आने के वाद ही मेरे कंधो पर काम का वोझा आ गया है। जयपुर हिंदी साहित्य सम्मेलन सितवर के अतिम सप्ताह में हुआ। वहा होकर मैं दिल्ली रुकता हुआ कानपुर में काग्रेस-जनो के अधिवेशन में शरीक हुआ। पुरानी कांग्रेस कमेटियो के गैर-कानूनी होते हुए हम लोगो ने 'सयुक्त प्रातीय प्रतिनिधि असेम्वली' वनाई है जिसके द्वारा हम काग्रेस का कार्य कर रहे हैं। उसका सभापति मैं चुना गया हू। इससे मेरा काम वहुत वढ़ गया है। नयी रीति से हर जिले, शहर और कस्वे में 'प्रतिनिधि असेम्वली' की शाखाए खोलने का यत्न जारी है।"

राजनीतिक पीड़ितो की सहायता

राजनीतिक पीडितो को सहायता देने के लिए प्रातीय प्रतिनिधि असेम्वली ने दो समितिया गठित की—(१) कानूनी सहायता समिति, और (२) जिला सहायता समिति। इन दोनो समितियो द्वारा राजनीतिक पीडितो को आवश्यक सहायता मिली जिससे उनका मनोवल और उत्साह वढा।

देश के वहुत से नवयुवको को सन् १९४२ के आदोलन मे व्रिटिश शासन से विद्रोह करने के कारण लवी सजायें दी गई थी और कई को फासी की भी सजा दी गई थी। इसी संदर्भ मे उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के आठ नवयुवको को फासी की सजा दी गई थी। वावूजी ने प्रतिनिधि असेम्वली की ओर से इन्हें फासी से वचाने के लिए अथक् प्रयत्न किया। इनके मुकदमे के लिए धन सग्रह किया और जगह जगह से अपीलें कराईं। फलस्वरूप एक प्रवल जनमत तैयार हुआ और इन आठ नवयुवको मे से सात की फासी की सजा हटी और कारावास मे परिणत हुई। कुछ समय वाद ये सातो जेल से मुक्त भी कर दिए गए। किंतु एक नवयुवक को फासी लगने से नही वचाया जा सका।

जव काग्रेस के सभी नेता और कार्यकर्त्तागण सन् १९४५ मे जेलो से छूटे और काग्रेस पर से रोक हटा ली गई तव यह प्रतिनिधि असेम्वली काग्रेस मे विलीन कर दी गई।

सिंध सरकार द्वारा सत्यार्थ-प्रकाश पर रोक लगाने की नीति का विरोध

लगभग इन्ही दिनो सिंध प्रात की सरकार ने आर्य समाज के धर्मग्रथ

'सत्यार्थ प्रकाश' के कुछ भाग जब्त करने का आदेश निकाला। सिंध सरकार के इस आदेश के विरोध मे बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक हिन्दुस्तान' का एक विशेषाक ३ दिसम्बर सन् १९४४ को निकला। इसके संपादक श्री सत्यदेव विद्यालकार ने बाबूजी से इस विशेषाक के लिए उनका सदेश मागा। बाबूजी का जो सदेश इसमे प्रकाशित हुआ वह इस प्रकार है, "वास्तव में सिंध सरकार ने एक धार्मिक पुस्तक के भाग को जब्त करने मे बडी भूल की है। इस काम के लिए भारत-रक्षा-विधान का प्रयोग करना तो बहुत ही अनैतिक है। सत्यार्थ प्रकाश बहुत वर्षों पूर्व लिखा गया था और वह समय आजकल के समय से भिन्न था। यदि मुझे किसी धार्मिक पुस्तक की आलोचना करनी होती, विशेषकर ऐसी धर्म पुस्तक की जिसके अनुयायी मेरे निकट सबधी नही है, तो मैं सत्यार्थ प्रकाश की शैली का प्रयोग न करता। परतु मैं यही बात कुछ अन्य धार्मिक पुस्तको के विषय मे भी कह सकता हू। ब्रिटिश शासन के अतर्गत सभी प्रातीय सरकारो की यह नीति रही है कि किसी भी धर्म के ग्रथो के साथ हस्तक्षेप न किया जाय। सिंध सरकार ने यह बुरा रास्ता दिखाया है। सिंध सरकार की इस नीति का दूसरे प्रातो मे बुरा असर पडेगा और अन्य धर्मो के ग्रथो मे भी इस प्रकार के हस्तक्षेप होने की सभावना है। मैं आशा करता हू कि भारतीय सरकार सब प्रकार के अतर्प्रातीय धार्मिक झगडो को देश मे बढने से रोकेगी।"

इसी सबध मे बाबूजी का एक दूसरा वक्तव्य लाहौर से प्रकाशित होने वाले अग्रेजी दैनिक 'ट्रिब्यून' के ८ फरवरी सन् १९४५ के अक मे छपा था*। उसके कुछ अश का हिंदी रूपान्तर नीचे दिया जा रहा है—

"काग्रेस विधान सभा के काग्रेस दल ने इस धारा सभा मे सत्यार्थ प्रकाश पर लगी रोक के विरोध मे प्रस्तुत स्थगन प्रस्ताव का समर्थन न कर एक डरपोकपने की नीति प्रदर्शित की है। किसी भी अन्याय का विरोध न करना कायरता है।

सिंध सरकार ने अपनी इस नीति से अपना मुह काला किया है। जिस कारण से उसने सत्यार्थ प्रकाश पर रोक लगाई है उसी कारण के अनुसार उसे

---

*"The Congress Party of the Central Assembly have displayed a timid policy by not supporting the Adjournment Motion moved in the Central Assembly against the ban on the Satyarth Prakash as it is cowardice not to oppose an unjust thing

Sind Government by this policy of theirs have blackened their face As they have placed a ban on Satyarth Prakash, similarly they should have placed ban on the Quran as it contains offensive language against non-Muslims"

कुरान पर भी रोक लगानी चाहिए थी क्योकि उसमे भी गैर-मुसलमानो के विरुद्ध आपत्तिजनक भाषा का प्रयोग किया गया है ।"

विधानसभाओं के नये चुनाव और मन्त्रिमंडल का गठन

ब्रिटेन का शासन मजदूर दल के हाथ मे सन् १९४६ के आरभ मे आया। भारतवर्ष को आशा बधी कि मजदूर दल की यह सरकार उसकी स्वतत्रता की माग को स्वीकार करेगी। इस सरकार ने यह घोषणा भी की थी कि भारत की समस्त राजनीतिक पार्टिया परस्पर मिलकर एक सविधान बना लें तो ब्रिटेन भारतीयो को उनके देश का शासन सुपुर्द कर देगा। मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व मे मुसलिम लीग ने देश के विभाजन और पाकिस्तान बनाने की जो माग रखी थी उसमे किसी प्रकार का समझौता जिन्ना करने को तैयार नही थे। इधर कांग्रेस के नेतागणो को भारत के विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार नही था। इस प्रश्न को सुलझाने के लिए गाधीजी कई बार जिन्ना साहब से मिले किंतु समझौते का कोई मार्ग नही निकल सका। ऐसा लगने लगा कि मुसलिम लीग की माग ही एकमात्र बाधा है जिसके कारण ब्रिटेन भारत को स्वतत्रता नही देना चाहता। इन दिनो देश भर मे जगह जगह, और विशेषकर उन प्रातो मे जहा मुसलमान बहुमत मे थे, हिंदू मुसलिम सांप्रदायिक दगे हुए। कुछ स्थानो मे तो इन दगो ने भीषण रूप लिया। इन सब दगो के पीछे मुसलिम लीग की पाकिस्तान की माग को मजबूत बनाना मुख्य ध्येय था।

ऐसे ही विषम वातावरण मे अप्रैल सन् १९४६ मे प्रातीय विधान सभाओ के नए चुनाव हुए। इन चुनावो मे भी सिंध, पजाब और बगाल को छोडकर अन्य सभी प्रातो मे काग्रेस बहुमत से जीती और उसने अपने मत्रिमडल बनाए। उत्तर प्रदेश मे बाबूजी पुन विधानसभा के अध्यक्ष निर्विरोध चुने गए। उनके इस समय के अध्यक्ष काल के आरभिक दिनो के एक प्रसंग का उल्लेख करना उचित होगा जिससे उनके सार्वजनिक जीवन के महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। नैनीताल मे विधान सभा का ग्रीष्मकालीन अधिवेशन हो रहा था। कांग्रेस दल के कुछ असतुष्ट सदस्य मुख्यमत्री प० गोविन्द वल्लभ पत के विरुद्ध अपने दल मे अविश्वास का प्रस्ताव लाना चाहते थे और उनके स्थान पर बाबूजी को मुख्यमत्री बनाना चाहते थे। पतजी चिंतित थे। उस परिस्थिति को बाबूजी ने अकेले ही सभाला। एक ओर उन्होने पंतजी से अकेले मे बातें कर असतुष्ट लोगो की शिकायतें बता कर उन्हे सचेत किया और उन शिकायतो का समाधान करने की सलाह दी। दूसरी ओर विरोधी कांग्रेस जनो को समझाया कि उन्हे ऐसा कोई कदम नही उठाना चाहिए जिससे काग्रेस दल की प्रतिष्ठा को ठेस लगे। छोटी-मोटी असंतोष की बातो से पार्टी के नेता के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रखना

बहुत गलत बात है। यह भविष्य के लिए गलत परपरा होगी। उन्होंने असंतुष्ट काग्रेसजनो से यह भी स्पष्ट कह दिया कि 'यदि पंतजी को हटाकर आप मुझे नेता बनाना चाहते हैं तो मैं इसे कभी स्वीकार नही करूगा।" बाबूजी की बातो से ये लोग सतुष्ट हो गए और परिस्थिति सुधर गई।

लोकतत्र के प्रति बाबूजी मे अदम्य निष्ठा थी। इसी कारण वह विरोधी दल को भी अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार दिलाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। एक बार उत्तर प्रदेश शासन ने 'पीपुल्स वार' नामक कम्युनिस्ट समाचार-पत्र पर प्रतिबध लगाया। बाबूजी इसे लोकतत्र के सिद्धांत के विरुद्ध मानते थे। उन्होने सबसे पहले इसके विरुद्ध अपना वक्तव्य दिया था।

केंद्र मे अतरिम मत्रिमडल का गठन

इसी बीच वायसराय ने केंद्र में एक अतरिम मत्रिमडल बनाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया और काग्रेस तथा मुसलिम लीग दोनो को उसमें सम्मिलित होने का निमत्रण दिया। काफी विचार विमर्श के बाद काग्रेस कार्यसमिति ने २६ जून १९४६ की अपनी बैठक मे निश्चय किया और इस अतरिम मत्रिमडल में सम्मिलित होना स्वीकार किया। फलस्वरूप प० नेहरू के नेतृत्व मे २ सितम्बर १९४६ को केंद्र मे एक अतरिम मत्रिमडल बना। इसमे मुसलिम लीग के सदस्य भी रखे गए। मुसलिम लीग के सदस्यो ने पग-पग पर ऐसी रुकावटें और बाधाए डालनी आरभ की कि मत्रिमडल के लिए देश का शासन उचित रूप मे कर सकना सभव न हो सका। इन्ही दिनो उन प्रातो मे जहा मुसलिम लीग का शासन था साप्रदायिक दगे भीषण रूप मे हुए। पूर्वी बगाल के नोआखाली स्थान मे हिंदुओ पर इतना अधिक अत्याचार हुआ कि अनेक हिंदू परिवार समाप्त हो गए। जो किसी प्रकार वहा से भाग सके वही बचे।

जब मुसलिम लीग ने सन् १९४६ मे देश मे 'डाइरेक्ट ऐक्शन' या 'खूनी साप्रदायिक दगे' शुरू किए तब बाबूजी ने इस चुनौती को स्वीकार किया और कहा कि "अब चर्खा छोडकर बदूक उठाने का समय आ गया है।" दैनिक 'आज' के सपादक पराडकरजी बाबूजी के इस आह्वान से बहुत प्रभावित हुए और इसके पक्ष मे अपनी सशक्त लेखनी से बहुत सहयोग दिया।

भारतीय सस्कृति सम्मेलन का जन्म

बाबूजी केवल मुसलिम लीग की हिंसा के प्रतिरोध को ललकार लगाकर ही सतुष्ट नही रहे, हिंदू समाज को जात-पांत और पृथकता के रोग से छुडाकर उसे सबल और स्वस्थ बनाने के लिए उन्होंने भारतीय सस्कृति सम्मेलनो की परपरा

आरभ की। यह वावूजी का ही व्यक्तित्व था कि तथाकथित साप्रदायिक माने जाने वाले कार्यों मे प्रवृत्त होने पर भी उन पर किसी को अगुली उठाने का साहस नही हुआ। इसका कारण उनकी असदिग्ध राष्ट्रीयता ही थी। वह अपनी अत-रात्मा की पुकार पर चलते थे। उन्हे इस बात की चिंता नही रहती थी कि कौन उनके साथ है और कौन नही। वह देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को दल के अनुशासन से ऊचा मानते थे। इसी कारण वह काग्रेस की सत्तात्मक राजनीति मे न तो स्वय गए और न ही उस प्रकार के लोगो ने उन्हें अपनाया।

भारत का विभाजन और स्वतंत्रता प्राप्ति

ब्रिटिश शासन की ओर से ३ जून १९४७ को वायसराय लार्ड माउटवेटन ने यह घोपणा की कि १५ अगस्त सन् १९४७ को भारतीयो को शासन सत्ता सौंप कर अग्रेज यहा से अपना शासन हटा लेंगे, और इस प्रकार यहा ब्रिटिश शासन का अत हो जाएगा। भारत को शासन हस्तातरित करने की जो योजना रखी गई थी उसके अनुसार मुसलिम वहुमत वाले भागो को पृथक् होने और अपना अलग शासन स्थापित करने का अधिकार दिया गया था।

देश मे हिंदू-मुसलमानो के वीच हो रही भीषण मारकाट तथा अतरिम मत्रिमडल मे मुसलिम लीग की अडगे की नीति—इन दोनो ही वातो ने काग्रेस के नेताओ को वाध्य किया कि वे मुसलिम लीग के देश के विभाजन के प्रस्ताव पर पुर्नविचार करें। प० नेहरु, सरदार पटेल आदि काग्रेस के प्रमुख नेताओ ने अनुभव किया कि मुसलिम लीग की माग के अनुसार देश के विभाजन के अति-रिक्त अव दूसरा कोई मार्ग नही है और मुसलिम वहुमत वाले प्रात यदि पृथक् होकर पाकिस्तान वनाते हैं तो उसे कार्यान्वित करने की सहमति प्रदान कर देनी चाहिए। महात्माजी विभाजन के पक्ष मे विल्कुल नही थे, किंतु इन नेताओ ने उन्हें भी समझाकर इसके लिए तैयार कर लिया। वावूजी आरभ से ही देश के विभाजन के विरोधी थे और अत तक उनका यही विचार दृढ रहा। इस सवध मे जव वह महात्माजी से मिले महात्माजी का मौन दिवस था और उन्होने वावूजी की वातें सुनकर अपनी एक अगुली उठाकर सकेत द्वारा वावूजी से अपनी भावना व्यक्त की कि वह इस प्रश्न मे अकेले है और कोई भी नेता उनके साथ नही है। तव वावूजी ने अपनी दो अगुलिया उठाकर व्यक्त किया और कहा कि वह उनके साथ हैं और इस प्रकार विभाजन के पक्ष मे वे दो हैं।

जव १४ जून १९४७ को अखिल भारतीय काग्रेस समिति मे यह प्रश्न प्रस्तुत हुआ तव वावूजी ने विभाजन का तीव्र विरोध किया किंतु विभाजन का प्रस्ताव स्वी-कृत हुआ और केवल वावूजी का अकेला मत ही इसके विपक्ष मे रहा। वावूजी को

सबसे बडा आश्चर्य और दुख इस बात से हुआ कि विभाजन के प्रस्ताव का स्वयं गाधीजी ने भी समर्थन किया। बाद मे बाबूजी को ज्ञात हुआ कि महात्माजी ने अन्य नेताओ द्वारा बाध्य किए जाने पर ऐसा किया था।

काग्रेस द्वारा विभाजन के इस प्रस्ताव के स्वीकृत किये जाने के बाद ब्रिटिश सरकार ने १५ अगस्त १९४७ को सत्ता हस्तांतरण की योजना पूरी करने की कार्यवाही आरभ की। देश का विभाजन हुआ और पाकिस्तान बना। इस विभाजन की योजना मे सबसे दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय सेना का साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन सिद्ध हुआ। यद्यपि देश के विभाजन की योजना मे नये भारत तथा पाकिस्तान से अल्पमत वाले लोगो को विस्थापित किए जाने की बात नही थी पर पजाब मे अल्पमत वाले हिन्दुओ के साथ वहा की मुसलमान जनता तथा सेना ने जो मारकाट और अत्याचार किये उनकी बडी दुखद कहानी है। करोड़ो की सख्या मे विस्थापित हिंदू पाकिस्तान से भारत मे आये और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक मुसलमानो को यहा से जाना भी पडा।

बाबूजी विभाजन से इतने दुखी थे कि १५ अगस्त १९४७ को जब दिल्ली मे स्वतत्रता दिवस के उपलक्ष मे समारोह मनाया जा रहा था, वह दिल्ली के अपने निवास स्थान के कमरे मे अकेले मौन बैठे रहे। उनके हृदय के दुख और उनके आसुओ को देखने वाला कोई वहा नही था। वास्तव मे देश के विभाजन से बाबूजी के हृदय को बडा गहरा धक्का लगा था। अपने जीवन के अत तक उनकी यही धारणा बनी रही कि विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार करना काग्रेस के नेताओं की भारी भूल थी और इसी के फलस्वरूप भविष्य की अनेक समस्याए उत्पन्न हुई।

विस्थापितो के लिए कार्य

देश का विभाजन हुआ और भारत एक स्वतत्र राष्ट्र बना किंतु एक नई समस्या बडे भीषण रूप मे नए शासन के सामने आई। लाखो की सख्या मे पाकिस्तान के पजाब के भाग से तथा सिन्ध से विस्थापित हिंदू दिल्ली तथा आस-पास के दूसरे भागो मे एकत्र होने लगे। इन विस्थापितो मे अनेक ऐसे परिवार थे जो विभाजन से पूर्व बडे सपन्न थे और अब उनके पास एक पैसा भी नही था। इनके कष्टो को देखकर बाबूजी का हृदय द्रवित हो गया। उनके हृदय मे यह बात स्पष्ट रूप से बैठी थी कि राजनीतिज्ञो की भूल का परिणाम इन निरीह लोगो को भुगतना पडा है। अत अब इनको पुनर्वासित करने मे सब प्रकार की सहायता देना शासन का धर्म और कर्त्तव्य है। उनकी स्पष्ट बातो से शासन के लोग भी प्राय रुष्ट हो जाया करते थे। किंतु बिना किसी की चिंता किये वह अपने विचारो पर अटल रहे। देश के विस्थापित भाई इसे भली प्रकार जानते हैं कि उन्हे जो कुछ मिला उसमे बाबूजी का कितना बडा श्रेय था। इन दिनो इनके कष्टो को

दूर करने तथा इनकी सहायता करने मे बाबूजी ने अथक परिश्रम किया। इनके परिश्रम और प्रयत्नो का ही यह फल हुआ कि केंद्रीय शासन मे एक पुनर्वास मत्रालय की स्थापना हुई जिसके द्वारा विस्थापितो को विभिन्न प्रकार की सहायता उपलब्ध कराकर उन्हे पुन स्थापित होने मे सहायता मिली।

हिंद रक्षक दल की स्थापना

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद केंद्रीय तथा प्रातीय शासन अपने नये कार्य सभालने और विस्थापितो की समस्या को सुलझाने मे बहुत व्यस्त हो गए। इस बीच कुछ असामाजिक तत्त्वो ने देश के विभिन्न भागो में अराजकता फैलानी आरभ की। ऐसे तत्त्वो से नागरिको की रक्षा करने के लिए बाबूजी को यह आवश्यक लगा कि एक गैर-सरकारी रक्षा-दल का सगठन किया जाय। उनके विचार मे यह कार्य सेना और पुलिस के लिए कर सकना सभव नही था। प्रत्येक गाव और नगर मे नागरिको का एक अच्छा सगठन बनाने से ही यह कार्य सभव हो सकता था। इसी हेतु उन्होंने "हिंद रक्षक दल" की स्थापना की। इस हिंद रक्षक दल के लिए अनुशासन सबंधी शब्द हिंदी मे बाबूजी ने तैयार कराए। उन दिनों इस दल ने जनता में सामाजिक वैषम्य और भारत विभाजन से उत्पन्न परिस्थिति मे लोगो के मनोबल को स्थिर रखने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। ग्रामीण अचलो मे सुरक्षा के भाव भरने मे इसका बडा योगदान रहा। उनकी इस योजना की पूरी रूपरेखा उनके दो पत्रों से जो परिशिष्ट ६ और ७ मे दिए गए हैं, स्पष्ट हो जाएगी। कुछ समय बाद उत्तर प्रदेश सरकार ने इस प्रदेश की 'हिंद रक्षक दल' योजना को स्वय अपने हाथ मे ले लिया और यह "प्रांतीय रक्षक दल" के नाम से आज भी चल रही है।

सविधान निर्मातृ परिषद् मे

देश के लिए नया सविधान बनाने हेतु दिल्ली मे जो 'सविधान निर्मातृ परिषद्' बनाई गई उसके भी बाबूजी एक सदस्य बने। उस समय के कुछ संविधान निर्मातृ परिषद् के सदस्यो से हमे ज्ञात हुआ था कि आरभ मे इसका अध्यक्ष बाबूजी को बनाने की चर्चा की गई थी किंतु बाद मे डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी को इस पद हेतु चुना गया। बाबूजी की अनुशासन की कडाई से लोग उनसे घबराते थे। सविधान को तैयार करने के लिए जो समिति बनी उसके भी बाबूजी एक सदस्य थे। सविधान निर्मातृ परिषद् के कार्य के लिए उन दिनो इन्हे प्राय लखनऊ से दिल्ली जाना पडता था। सन् १९४८ मे बाबूजी उत्तर प्रदेश काग्रेस के अध्यक्ष भी चुने गए थे। इस अवधि मे बाबूजी के पास कई प्रकार के उत्तरदायित्व होने से कार्यभार बहुत बढ गया था और वह बहुत व्यस्त रहने लगे थे। फिर भी

उन्होने इन सब कार्यो और उत्तरदायित्वो का निर्वाह सफलता पूर्वक किया।

सविधान मे हिंदी का प्रश्न

सविधान बनाने और उसका हिंदी प्रारूप तैयार करने मे वाबूजी का जो योगदान था उसके अतिरिक्त उनका एक बडा काम इस परिषद् मे हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप मे मान्यता दिलाना था। जब सविधान निर्मातृ परिषद् मे केंद्र की राजभाषा का प्रश्न उपस्थित हुआ और वह जटिल रूप धारण करने लगा, तब हिंदी वालो का नेतृत्व उनके हाथ मे था। जिस लगन और दृढता से उन्होने कार्य किया वह इतिहास के पृष्ठो मे स्वर्णाक्षरो मे अंकित रहेगा। सविधान मे हिंदी को जो स्थान प्राप्त हुआ है उसका बहुत बडा श्रेय वाबूजी को है। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के यत्न मे उन्होने भारत की दूसरी समृद्ध भाषाओ की निंदा या अवहेलना कभी नही की। दूसरी भाषा वालो के साथ सदा प्रेम और सद्भाव से काम लेते रहे। जिसका परिणाम यह हुआ कि सविधान मे हिंदी को प्रमुख स्थान देने के पक्ष मे सभी हो गए और अंग्रेजी के स्थान मे हिंदी केंद्र की राजभाषा स्वीकृत हुई।

सविधान मे राष्ट्रीय गान का प्रश्न

सविधान परिषद् मे जिस समय अपने देश के लिए राष्ट्रगीत निश्चित करने का प्रश्न था उस समय वाबूजी ने अपना मत व्यक्त किया था कि बंकिम बाबू का लिखा "वन्देमातम्" गीत राष्ट्रगीत के रूप मे स्वीकृत किया जाय, क्योकि यह गीत भारतमाता की प्रशस्ति मे लिखा गया था और इस गीत ने आरभ से ही देश-भक्तो को देश की स्वतत्रता के लिए बलिदान होने की प्रेरणा दी थी तथा एक प्रकार से यह आरभ से ही राष्ट्रगीत के रूप मे माना भी जाता रहा था। वाबूजी के मत से सविधान परिषद् के अनेको सदस्य सहमत थे और 'वन्देमातरम्' गीत को ही राष्ट्रगीत बनाने के पक्ष मे थे। किंतु प० नेहरू का प्रस्ताव था कि रवीद्रनाथ ठाकुर का गीत 'जनगणमन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता" राष्ट्रगीत के रूप मे मान्य किया जाय। यह गीत रवीन्द्र बाबू ने सन् १९११ मे दिल्ली दरबार के समय जार्ज पचम की प्रशस्ति मे लिखा था। वाबूजी को तथा कुछ अन्य लोगो को भी यह आपत्ति थी कि ऐसा गीत जो जार्ज पचम की प्रशस्ति मे लिखा गया था, जिसके साम्राज्य की पराधीनता से मुक्त होने की हमने लडाई लडी थी, राष्ट्रगीत के रूप मे अपनाना देश के गौरव को कलंकित करना होगा। इन लोगो का कहना था कि इस बीच न तो जनता के स्वतत्रता सग्राम मे कभी इस गीत की चर्चा ही हुई थी और न इससे कभी किसी ने प्रेरणा ही ली थी। किंतु प० नेहरू का रवीन्द्र बाबू के प्रति जो लगाव था उसके कारण उन्होने इस गीत के पक्ष मे

ही जोर दिया और इस गीत को राष्ट्रगीत के रूप मे स्वीकार करा लिया। इसके साथ ही 'वदेमातरम्' को भी राष्ट्रगीत माना गया पर धीरे-धीरे इसका महत्त्व हटा दिया गया। आज भी वहुतो को, जिन्हे ऐतिहासिक तथ्य की जानकारी है, ऐसा अनुभव होता है कि जिस ब्रिटिश साम्राज्य की अधीनता से देश को मुक्त कराने के लिए लाखो करोडो देशवासियो ने अपना सर्वस्व वलिदान किया, उसी साम्राज्य के सम्राट की प्रशसा मे गाये हुए गीत को राष्ट्रगीत के रूप मे अपनाना हम सवके लिए वडी लज्जाजनक वात हुई। ऐसा लगता है कि हमारी आत्मगौरव की भावना उस समय सुप्त हो गई थी।

काग्रेस के अध्यक्ष के पद पर चुनाव

अखिल भारतीय काग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए सन् १९४८ मे वावूजी का नाम सरदार वल्लभ भाई पटेल ने प्रस्तावित किया। सामान्यत वावूजी का स्वभाव परस्पर के चुनावो मे पडने का नही था किंतु सरदार पटेल के दवाव के कारण उन्हे चुनाव मे भाग लेना पडा। डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या दूसरे प्रत्याशी थे और वही चुनाव मे सफल हुए। सन् १९५० मे पुन वावूजी का नाम सरदार पटेल ने प्रस्तावित किया। वावूजी की इच्छा इस वार भी चुनाव मे पडने की नही थी। इलाहावाद से फोन पर सरदार पटेल से वावूजी की जव वाते हुईं, उस समय हम भी वहा उपस्थित थे। वावूजी ने उनसे इस पद के चुनाव मे पडने की अपनी अनिच्छा प्रकट की। किंतु सरदार पटेल का वहुत आग्रह रहा और अत मे वावूजी को यह कहना पडा, "आपका आदेश है तो मैं इसे स्वीकार करता हू।"

वास्तव मे उन दिनो काग्रेस सगठन और काग्रेस शासन के अधिकार क्षेत्र के सवध मे सिद्धात रूप मे मतभेद उत्पन्न हो गया था। सरदार पटेल और उनकी विचारधारा के लोग काग्रेस सगठन की प्रमुखता मे विश्वास करते थे, प० नेहरू और उनके अनुयायी काग्रेस शासन के पक्ष की प्रमुखता चाहते थे। सरदार पटेल की विचारधारा के अनुसार काग्रेस सगठन मुख्य सस्था थी और शासन सवधी कांग्रेस दल की नीतियो के सवध मे शासन को मार्गदर्शन देना उसका अधिकार था, और उन नीतियो का निर्वाह करना शासन पक्ष का कर्त्तव्य था। वावूजी सरदार पटेल की विचारधारा से सहमत थे। स्वभावत इस समय काग्रेस के अध्यक्ष का पद वडा महत्त्वपूर्ण हो गया था, क्योकि यह चुनाव एक प्रकार से सरदार पटेल और प० नेहरू की विरोधी विचारधाराओ की लडाई थी। इससे पूर्व के अध्यक्ष डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या ने कुछ ऐसे कार्य किए थे जिससे लगने लगा था कि उन्होंने नेहरू की विचारधारा चुपचाप स्वीकार कर ली थी। सरदार पटेल का विश्वास था कि इस स्थिति मे वावूजी ही सिद्धात की रक्षा कर कुछ स्वस्थ परपराए स्थापित कर सकेंगे। उनका वावूजी की सिद्धात-दृढता मे पूरा

विश्वास था। इसी कारण उन्होंने बाबूजी का नाम प्रस्तावित किया था। नेहरू जी भी इसका अर्थ समझते थे और उन्होंने आचार्य कृपलानी का नाम प्रस्तावित किया।

चुनाव के पूर्व प० नेहरू ने बाबूजी को एक सज्जन द्वारा यह संदेश कहलवाया कि वह स्पीकर है और कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार उस पद पर रहते हुए वह कांग्रेस के अध्यक्ष नही हो सकते। बाबूजी ने उत्तर दिया, "मुझे कांग्रेस के इस प्रस्ताव का ज्ञान है। अनुशासन भग नहीं करूंगा। जवाहरलाल को स्मरण दिलाने की आवश्यकता नही है।" इसके बाद प० नेहरू ने एक पत्र बाबूजी को लिखा और बाबूजी ने उसका उत्तर दिया। इन दोनो के ये पत्र अंग्रेजी मे है और बहुत महत्त्वपूर्ण है। हम यहा इन दोनो पत्रो का हिंदी रूपान्तर दे रहे है। मूल अंग्रेजी पत्र परिशिष्ट ८ मे दिये गये है—

प्रधान मत्री
भारत

गोपनीय तथा व्यक्तिगत
नई दिल्ली,
८ अगस्त १९५०

प्रिय पुरुषोत्तम,

पिछले कुछ समय से कांग्रेस के अध्यक्ष पद के सबध मे मैं बहुत चिंतित रहा हू। स्वभावत हमने आपस मे यहा अपने कुछ साथियो के बीच इस विषय पर विचार-विमर्श किया। मुझे किसी चुनाव मे पड़ना कभी पसद नही रहा और सामान्य रूप से मेरी इच्छा यही है कि कोई दृढ और प्रभावी अध्यक्ष चुना जाय। कांग्रेस इस समय बुरी स्थिति मे है, और यदि इसे पुनर्जीवित करने के लिए कुछ दृढ कदम नही उठाए जाएगे तो इस सस्था के लुप्त हो जाने की सभावना है। इस समय जैसी स्थिति है उसमे ऐसा लगता है कि इस सस्था मे जो आतरिक बल था वह समाप्त हो गया है और हम लोग मुख्यरूप से वर्गगत झगड़ो मे पड गए है, और पद तथा उच्च स्थानो को प्राप्त करने के लिए सब प्रकार के यत्न करते रहते हैं। इस महान् सस्था का इस निम्न स्तर पर कार्य होना दु खद है।

जो समस्या इस समय मुझे कष्ट दे रही है वह कुछ भिन्न है। तुम अध्यक्ष पद के लिए एक प्रत्याशी हो और कुछ अन्य पुराने साथी भी इस चुनाव मे खडे हुए हैं। इनमे से अधिकाश बहुत पुराने मित्र है और तुम इन सबसे ज्येष्ठ हो। तुम्हारे प्रति मेरा जो स्नेह है, और तुम्हारी सत्यता तथा ईमानदारी के प्रति मेरी जो ऊची भावना है, उसे मुझे तुम्हें बतलाने की आवश्यकता नही है।

फिर भी हम मानसिक रूप से परेशान और दु खी रहे हैं। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि पिछले दो-तीन वर्षों मे हम दोनो कुछ सीमा तक एक-दूसरे से कुछ दूर हो गए हैं। इसमे मेरा सकेत इस बीच हमारी आपस मे कम बार भेंट होने से नही है, किंतु मेरा सकेत यह है कि हमारे विचार और हमारी कार्यशैली भिन्न होती

जा रही है। सभवत· तुम यह समझते हो कि जो कुछ मैं कहता हूं या करता हू वह अधिकाशत गलत है। जहा तक मेरा सबंध है मुझे प्राय तुम्हारे भाषणो को पढ कर आश्चर्य और दु ख·हुआ है, और ऐसा अनुभव हुआ है कि तुम ऐसी शक्तियो को प्रोत्साहित कर रहे हो जो मेरी दृष्टि मे हानिकर हैं।

हमारे सामने देश की वहुत सी बडी समस्याए हैं किंतु मैं अनुभव करता हू कि इन समस्याओ मे सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि हम किस प्रकार से कांग्रेस के मूल आदर्शों को उसी रूप मे जीवित रख सकें जैसे वे पहले रहे हैं। इनमे से आज जो सबसे प्रमुख महत्त्व की समस्या है वह है साप्रदायिकता के विरुद्ध हमारी लडाई। मुझे ऐसा दिखलाई दे रहा है कि साप्रदायिक भावना भारत मे वढ रही है और चारो ओर इस रूप मे फैल रही है जिसे मैं रूढिवादिता कहूगा। पाकिस्तान मे जो कुछ हुआ है वह मैं जानता हू और यह भी समझता हू कि भारतवर्ष मे उसकी प्रतिक्रिया है। किंतु यह स्थिति का एक आशिक स्पष्टीकरण है। इससे हमे कोई सहायता नही मिलती। इसने हमारी जनता में असहनशीलता, छोटेपन और सकुचित विचारो को उभारा है, और मुझे ऐसा लगता है कि यदि हम इस प्रकार से सोचने और कार्य करने लगेंगे तो भारतवर्ष कभी भी प्रगति नही कर सकता।

कुछ ही दिन पूर्व दिल्ली मे आयोजित विस्थापितो की सभा मे तुम्हारे अध्यक्षता करने से भी मुझे दु ख हुआ, क्योकि उस सभा ने ऐसे विचारो को व्यक्त किया है जो मुझे अत्यत असहनशील, साप्रदायिक और अव्यावहारिक लगते हैं। हम सब विस्थापितो को सहायता देना तथा पुनर्वासित करना चाहते हैं और यह सभव है कि जितना हमे करना चाहिए था उतना हमने नही किया है। किंतु हमारे गलत रास्ते पर जाने के लिए यह कोई कारण नही होना चाहिए। मैं सोचता हू कि यदि देश को आगे वढना है और एक सूत्र मे वधे रहना है तो आज सबसे वडा प्रश्न अपने अल्पसख्यको की समस्या को सतोषपूर्ण ढग से सुलझाना है। किंतु ऐसा न कर हम अपने अल्पसख्यकों के प्रति अधिक असहनशील हो गए हैं और उसके लिए पाकिस्तान के बुरे व्यवहार का तर्क देते हैं। पाकिस्तान मे क्या होता है यह मेरी प्रमुख चिंता नही है। किंतु भारतवर्ष मे क्या होता है इससे मेरा घनिष्ठ सबध है, और इसी कारण जीवन के कुछ आधारभूत सिद्धातो मे क्रमश होता हुआ पतन चितापूर्ण है। दुर्भाग्य से भारतवर्ष की जनता की एक वडी सख्या के सम्मुख तुम साप्रदायिकता और रूढिवादिता के दृष्टिकोण के एक प्रतीक से वन गए हो। अत मेरे मन मे यह प्रश्न उठा कि क्या कांग्रेस उस मार्ग पर जा रही है? यदि हा, तो चाहे वह कांग्रेस सस्था हो, चाहे वह कांग्रेस द्वारा सचालित शासन हो, उसमे मेरा क्या स्थान है? इस प्रकार यह एक वड़ा सवाल मेरे अपने कार्यो से सवधित हो जाता है।

कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर तुम्हारे चुनाव का मैं बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करता, किंतु जब मैं इस प्रश्न पर अवैयक्तिक रूप से तथा देश के बड़े परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से सोचता हू तो मुझे लगता है कि चुनाव का अर्थ होगा, देश मे कुछ ऐसी शक्तियो को प्रोत्साहन देना जिन्हें मैं देश के लिए घातक समझता हू। इसी कारण मेरे सामने कठिनाई है और क्लेश है।

इस प्रश्न का एक दूसरा पक्ष भी मेरे सामने रहा है। क्या मुझे इन सब बातो पर चुप रहना चाहिए या किसी रूप मे अपने विचार व्यक्त करने चाहिए? मेरी पहली भावना थी कि मैं इस अवसर पर चुप रहू। किंतु मैंने जितना अधिक इस पर विचार किया मुझे लगा कि यह दृष्टिकोण न तो देश के लिए उचित है और न स्वय मेरे तथा अन्य सम्बन्धित लोगो के लिए। हम अपना सार्वजनिक जीवन इस प्रकार नही बना सकते, और यदि बाद मे मुझे अपना विचार व्यक्त करना पड़ेगा तो क्या जनता यह नही कहेगी कि मैं पहले क्यो चुप रहा। अत मैं अनुभव करता हू कि मुझे अपना विचार किसी रूप मे कांग्रेस के चुनाव के पहले व्यक्त कर देना चाहिए।

कुछ लोगो ने बिना मेरी जानकारी के अध्यक्ष पद के लिए मेरा नाम रखा है। मेरा यह दृढ विश्वास है कि जब तक मैं प्रधान मत्री हू यह बड़ा सम्मान और उत्तरदायित्व का पद स्वीकार करना अनुचित होगा। उसका अर्थ केवल भावनात्मक हो सकता है किंतु उसका कोई वास्तविक अर्थ न होगा। मैं तुम्हें आज इस लिए लिख रहा हू क्योकि मैं अपना यह कर्तव्य समझता हू कि मेरे जो विचार हैं वह तुम्हें पहले बतला दू। मुझे विश्वास है कि राजनीति तथा अन्य महत्त्व की समस्याओ के सबध मे हम दोनो के दृष्टिकोण के अतरो का हमारी परस्पर की मित्रता और एक-दूसरे के प्रति स्नेह भावना पर कोई प्रभाव नही पड़ेगा।

सप्रेम,
तुम्हारा
जवाहरलाल नेहरू

बाबूजी का उत्तर निम्नवत् था—

विधायक निवास,
दारुलशफा,
लखनऊ
१२ अगस्त १९५०

प्रिय जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारा ८ तारीख का पत्र मिला। इसके कुछ भाग को पढकर मुझे दु ख

हुआ और साथ ही आश्चर्य भी।

मैं तुमसे सहमत हू कि काग्रेस इस समय बुरी दशा मे है और इसको नष्ट होने से बचाने के लिए कुछ उपाय करने आवश्यक है। हमारा पूर्ण सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न होता जा रहा है और सब ओर नैतिकता का स्तर जिस भयकर रूप से गिरता जा रहा है काग्रेस उसका एक उदाहरण है। देश की आत्मा को बचाना है। मेरे विचार मे तुम यदि इस बडे कार्य का भार अपने ऊपर लेते तो अधिक अच्छा होता, यद्यपि प्रधान मत्री का कार्य महत्त्व का है पर यह उमसे कही अधिक बडा और महत्त्व का है।

तुमने काग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए मेरे नामाकन की चर्चा की है। इसके पीछे न मेरी इच्छा रही है और न मैं उसके लिए कभी प्रयत्नशील रहा हूं। मेरा नामाकन लगभग उसी प्रकार से हुआ है जिस प्रकार हमारे प्रदेश के पिछले काग्रेम अध्यक्ष के चुनाव मे मेरा नाम आया था और जिसकी तुम्हे कुछ जानकारी है। मैंने अपने मित्रो को, जो मेरे नामाकन के लिए बहुत उत्सुक थे, ऐसा करने से रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न किया, किंतु अत मे उनकी इच्छाओं के सामने मुझे झुकना पडा।

तुमने मेरे उन कुछ भाषणो की चर्चा की है जिन्हें तुमने पढा है। साथ ही तुमने विस्थापितो की सभा की मेरे द्वारा अध्यक्षता किए जाने की भी चर्चा की है। मैं तुम्हें बताना चाहता हू कि तुम समाचार-पत्रो की या अन्य लोगो की सूचनाओ की अपेक्षा अपनी आखो और कानो पर अधिक विश्वास करो। ऐसा लगता है कि तुम मुझे सकुचित सांप्रदायिकता से और उस भावना से, जिसे तुम रूढिवादिता कहते हो, सबधित कर रहे हो। जहा एक ओर हम दोनो अनेक महत्त्व की समस्याओ पर एक मत रहे हैं और साथ मिलकर कार्य किया है, वही दूसरी ओर कुछ ऐसे प्रश्न भी रहे हैं जिन पर हम दोनो का दृष्टिकोण भिन्न रहा है। ऐसे प्रश्नो मे जिनमे हमारा मत-वैभिन्य रहा है, हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप मे मान्यता देना और देश का विभाजन तथा उसमे सबधित समस्याए मुख्य हैं। महान् पुरुषो मे भी यह मानवीय कमजोरी होती है कि 'वे अपने काच के टुकडो को मणि समझते है' और 'अपने विचारो को ही मूल सिद्धात समझते है'। मैं चाहूगा कि तुम इस प्रश्न को अनासक्त दृष्टिकोण से देखो। यह सभव हो सकता है कि दूसरो के दृष्टिकोण ठीक हो और तुम्हारा गलत। फिर भी इसकी क्या आवश्यकता है कि दूसरो पर, जिनका तुमसे मतभेद हो, सकुचित दृष्टिकोण का आरोप लगाया जाय?

स्पष्ट है कि साप्रदायिकता की चर्चा करते समय तुम्हारे मन मे हिंदू-मुस्लिम प्रश्न है। अपने प्रदेश की पिछली राजनीतिक सभा मे, जिसमे मैंने लगभग डेढ घटे तक अध्यक्ष के रूप मे अपना भाषण दिया था, तुम उपस्थित थे। तब मैंने सामान्य रूप से हिंदू-मुस्लिम प्रश्न पर, और विशेष रूप मे दोनो मतावलबियो

के सास्कृतिक सबधो पर, अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त किए थे। उस समय व्यक्त किए गए अपने विचारो से मैं कभी जरा भी विचलित नही हुआ हू। मैं इस्लाम सस्कृति और हिंदू सस्कृति जैसी कोई चीज़ नही मानता। मैं यह भी नही मानता कि ससार मे कोई ऐसी पुस्तक है जिसने अतिम रूप से यह कहा हो कि मनुष्य को क्या करना चाहिए। मेरी दृष्टि मे न वेद और न कुरान मानव के विचारो के क्रम मे अतिम शब्द हैं। मुसलमान धार्मिक पुरुष मेरे इस विचार पर आपत्ति उठाते है और मुझे मुसलमान विरोधी कहते हैं। मैं सोचता था कि कम-से-कम तुम तो इस प्रकार के दृष्टिकोण से अपने को ऊपर रखोगे। बनारस के रूढिवादी पडित भी मेरे विचारो को पसद नही करते और अपने पत्रो मे खुले रूप मे मुझ पर आरोप करते है। दैनिक हिंदी पत्र "सन्मार्ग" उनके विचारो का प्रवर्त्तक है। राजनीतिक क्षेत्र मे मेरी प्रमुख धारणा रही है कि परस्पर की आवश्यक भिन्नताओ को, जो न बदली जा सकें, उचित सीमा के अदर बाधते हुए देश के सभी वर्गों मे व्यापक रूप से एकता स्थापित रहे। मैंने खुले रूप मे हिंदू-मुसलमानो के बीच विवाह-सबधो का भी समर्थन किया है, और जैसा तुम जानते हो जातिगत रूढिवादिता का मेरे जीवन मे कोई स्थान नही रहा है। अत मुझे इस बात से आश्चर्य है कि तुम मुझे साप्रदायिक दृष्टिकोण से सबधित करते हो।

रूढिवाद एक भ्रमात्मक शब्द है। इसका अर्थ पुनर्जागरण भी हो सकता है और प्रतिक्रियावादिता भी हो सकता है। मैं आज कुछ उन ऊचे आध्यात्मिक विचारो को पुनर्जीवित करना चाहूगा जिन पर प्राचीन समय मे हमारे देश ने बल दिया था। मैं उन्हें अपनी बहुमूल्य निधि समझता हू। इसके साथ ही मैं उन सब तर्कहीन विश्वासो को, जो हिंदू और मुसलमान दोनो धर्मो मे प्रचलित है, त्याज्य समझता हू, चाहे वे हिंदुओं और मुसलमानो के धर्मग्रथो में प्रतिपादित किए गए हो। मेरा मत है कि समस्त धार्मिक विश्वासो को हमे अपनी बुद्धि की तराजू पर तौलना चाहिए और केवल किसी भी ग्रथ की प्रामाणिकता के आधार पर उन्हे किसी को स्वीकार नही करना चाहिए। विस्थापितो का प्रश्न हिंदू-मुसलमानो के परस्पर सबध से पृथक् प्रश्न है। यह एक मानवीय प्रश्न है। देश का विभाजन हमारे राष्ट्रीय कर्म के परिणामस्वरूप हुआ है, और इस कारण विस्थापितो की समस्या ने गभीर रूप धारण कर लिया है। विस्थापितो की समस्याओ के प्रति सहानुभूति रखना मेरे और तुम्हारे दोनो के लिए स्वाभाविक है। मैं अनुभव करता हू कि जितना अभी तक हमने उनके लिए किया है उससे कही अधिक हमे करना चाहिए था। दैव के अतिरिक्त तुम, मैं और देश के जन नेता विस्थापितो के दु खो और कष्टो के लिए उत्तरदायी है। अत अपने सार्वजनिक जीवन के सामान्य क्रम मे मैंने विस्थापितो की सभा की अध्यक्षता कुछ महीनो पूर्व स्वीकार की थी जिसके लिए डॉ० चोथराम गिडवानी और लाला अचिंतराम का बहुत आग्रहपूर्ण निमत्रण

था। मैंने वहा जो कुछ कहा उसके लिए मैं उत्तरदायी हू। मैंने वहा सुझाव रखा था कि एक पूजी-कर लगाया जाय जिसके द्वारा करोडो नही कई अरबो रुपये हमे विस्थापितो के पुनर्वास के लिए प्राप्त हो सकेंगे। यह सभवत: एक दुस्साहसपूर्ण सुझाव कहा जायगा, किंतु मैं समझता हू कि यह सुझाव व्यावहारिक है, और गभीरता तथा निर्भयता से मनन करने योग्य है। एक वर्ष मे तीस करोड़ रुपये या इसके लगभग की धनराशि इस वडी समस्या को नहीं सुलझा सकती।

इस सभा मे व्यक्त किए गए विभिन्न सब विचारो से मुझे सबधित करना न्यायोचित नही होगा। मैं केवल इतना ही कह सकता हू कि अध्यक्ष के रूप मे मेरा जो प्रभाव पड सकता था वह विचारो और भाषा पर सयम रखने के प्रति वरावर था। तुम चाहो तो उस सभा मे उपस्थित समझदार लोगो से यह जानकारी प्राप्त कर सकते हो कि वहा अध्यक्ष के रूप मे मेरा प्रयत्न क्या रहा। मै यह अनुभव कर रहा था कि वहा कुछ ऐसे व्यक्ति उपस्थित थे जो विस्थापितो के कष्टो की ओट मे काग्रेस को अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए वदनाम करना चाहते थे। यह स्पष्ट था कि वे लोग विस्थापितो की समस्या को हानि पहुचाएगे। किंतु मुझे विश्वास है कि सार्वजनिक सभाओ मे और व्यक्तिगत रूप से विस्थापितो को समझाकर और उनके विचारो को उभार कर मैंने उन पर ऐसे लोगो के प्रभावो को निष्फल करने मे सफलता प्राप्त की है। एक हिंदी समाचार-पत्र की कर्तनी सलग्न है। यह एक नमूना है जिससे तुम्हें ज्ञात हो जाएगा कि वहा कुछ अतिवादी लोगो ने मेरे सबंध मे क्या धारणा वनाई थी। इस समाचार-पत्र ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि विस्थापितो ने मुझे अपनी सभा का अध्यक्ष चुनकर वडी गलती की। उनकी इस अप्रसन्नता का कारण, जहां तक मैं समझता हू, यह था कि मैं उनकी अशोभनीय भाषा और उपद्रव नीति को रोक सका था।

तुमने लिखा है कि तुम यह अनुभव करते हो कि काग्रेस के अध्यक्ष पद के चुनाव के संबध मे तुम्हे अपना मत व्यक्त करना चाहिए। इससे यह सकेत मिलता है कि तुम्हे मेरे सबध मे कुछ अरुचिकर वातें कहनी पडेंगी। मैं प्रसन्न हूगा यदि मेरा नाम हटा दिया जाय। यदि ऐसा नही होता और तुम्हारे वक्तव्य के फल-स्वरूप चुनाव मे मेरा नाम स्वीकार नही किया जाता तो मुझे कोई विशेष दु ख नही होगा। मैं तुम्हे यह विश्वास दिलाना चाहता हू कि तुम चाहे जितनी कटु से कटु भाषा मेरे विरुद्ध प्रयोग करो, तुम मुझे अपने प्रति कटु न वना सकोगे और न इससे जो तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह है उसमे कोई कमी आएगी। इतने वर्षों तक मैंने तुम्हें अपने छोटे भाई के रूप मे स्नेह किया है, यद्यपि इस भावना का मैंने कभी दिखावा नही किया है। छोटा भाई कभी अपने वडे भाई के प्रति कटुता और वैमनस्य भी प्रदर्शित कर सकता है, किंतु वडा भाई अपने छोटे भाई के प्रति, जिसके प्रति उसका स्नेह है, ऐसा कदाचित ही करता है।

तुम्हारे कुछ विचारो और प्रशासकीय कार्यों को मै ठीक नही समझता। मै चाहता हू कि तुम इन वातो के सबध मे अधिक सतुलित दृष्टिकोण अपना सकते और कुछ अन्य वातो के प्रति अधिक कडाई का रुख अपनाते। किंतु इससे तुम्हारे या तुमसे सबधित लोगो के प्रति मेरी जो स्नेह की भावना है उसमे कोई अतर नही आ सकता, क्योकि यह मेरे स्वभाव का एक अग है। कांग्रेस का अध्यक्ष पद या देश के प्रधानमत्री का पद निस्मदेह आकर्षक स्थान है किंतु ये सव भी हमारे अपने कर्तव्य के उचित मूल्याकन के परिप्रेक्ष्य मे या उन सव वातो के परिप्रेक्ष्य मे, जिन पर हमारी प्रसन्नता निर्भर करती है, वहुत छोटी चीजें हैं। ससार के परिप्रेक्ष्य मे अपना देश भी एक छोटी वस्तु रह जाता है। हमारी आखो के सामने ही ससार की पृष्ठभूमि मे व्यक्तिगत देशो का पृथक् महत्त्व समाप्त होता जा रहा है। कदाचित सद्बुद्धि प्राप्त होने पर या प्राचीन सद्विचारो के पुन स्थापन के फलस्वरूप यह भी सभव है कि वहुतो को यह ससार ही जीवन का अतिम ध्येय न लगे।

मैंने चीजो को कुछ अवैयक्तिक दृष्टिकोण से देखना सीखा है। मैं सत्य को जिस रूप मे समझता हू उस पर सदैव दृढ रहने का प्रयत्न करता हू और उसे व्यक्त करने मे मैं इसका भरसक प्रयास करता हू कि दूसरो को कष्ट न पहुचे। किन्तु मैं यह जानता हू कि मेरे विचार कभी-कभी भ्रम पैदा कर देते है और मैं सदा उसे दूर करने मे सफल नही हो पाता हू।

सप्रेम,
तुम्हारा
पुरुषोत्तम दास टडन

इन पत्रो से उस समय की स्थिति का तथा वावूजी की विचार दृढता का कुछ आभास मिलता है। इन्ही दिनो कुछ प्रचार ऐसा भी किया गया कि वावूजी हिंदू-महासभाई है। जव यह वात उन्हे वतलाई गई तव उन्होने वडे सामान्य पर दृढ भाव से कहा, "इस सभा के जिस एकमात्र अधिवेशन मे मैंने भाग लिया था वह सन् १९२३ का अधिवेशन था, जिसमे मैं और प० नेहरू दोनो ही इस कार्य के लिए प्रयाग से काशी गए थे।" काग्रेस के अध्यक्ष पद का चुनाव हुआ और वावूजी अच्छे वहुमत से अध्यक्ष चुने गए।

स्पीकर-पद का त्याग

काग्रेस अध्यक्ष के पद के चुनाव के कुछ समय पूर्व ही ४ अगस्त १९५० को वावूजी ने विधान सभा के अध्यक्ष पद से अपना त्यागपत्र भेज दिया। उनके त्यागपत्र की प्रतिलिपि नीचे दी जा रही है—

स्पीकर भवन,
लखनऊ
४-८-५०

प्रिय नफीसुल हसन जी,

आज जमींदारी विनाश और भूमि व्यवस्था विधेयक विधानसभा से पारित हो गया। मैं अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने के लिए इस विधेयक के पारित होने की प्रतीक्षा कर रहा था। अब मैं १० अगस्त तक अध्यक्ष के पद पर कार्य करूंगा और ११ तारीख से इस पद का त्याग करता हू।

शुभैषी,
पुरुषोत्तम दास टंडन

बाबूजी का यह त्यागपत्र ६ अगस्त को विधानसभा मे पढ़ा गया। अगले दिन १० तारीख को इस पर बात करने का समय निर्धारित हुआ। उस दिन विधान सभा मे मुख्यमत्री प० गोविन्द वल्लभ पंत ने जो उद्‌गार व्यक्त किये उसका कुछ अश यहा दिया जा रहा है—

"श्रीमान् अध्यक्ष महोदय,

आपने इस सदन के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने का निश्चय किया है और जो सूचना उपाध्यक्ष जी ने यहा सदन मे दी थी उसके मुताबिक यह आज अतिम दिन है जब कि आप इस आसन को सुशोभित करेंगे और हमे आपकी अध्यक्षता मे कार्य करने का अवसर मिलेगा। इस बात को सुन कर और जानकर कि आपने इस पद को छोडने का निश्चय किया है हम सब को वेदना, मायूसी, दुख और चिता सभी हुए। मुझसे तो इस बारे मे पहले भी कई बार आपसे बातें हुई। परतु मेरे निवेदन और अनुरोध से आपने अपने विचार को अब तक रोका। अत मे आपने निश्चय किया और मुझे भी आपकी आज्ञा का पालन करना पडा। मैं आज बहुत सी बातें क्या कहू। आपसे इस सदन का सबध बडा गहरा और ऐसा अटूट है कि हम आशा करते हैं कि नित्य बना रहेगा। परतु आप अध्यक्ष नही रहेगे यह सोच कर ही काफी व्यथा और कष्ट होता है। ३० जुलाई सन् १६३७ को जब कि आपने इस पद को सुशोभित किया था उस समय मैंने कुछ बातें कही थी, और उस समय भी आप इस आसन को लेना नही चाहते थे। परतु मेरी और मेरे अन्य मित्रो और इस सदन के सदस्यो की अभिलाषा और विज्ञप्ति को सुनकर आपने इस पद को ग्रहण करना मजूर किया था। उस समय आपने जो बातें कही थी अक्षरश उसके अनुसार कार्य होता रहा।...

मैंने उस समय जरूर अपना विश्वास और जो अपना ऐसा यकीन और उम्मीद जाहिर की थी, वह पूरी हुई, और केवल एक मेरे ही मत मे नही, बल्कि मैं विश्वास करता हू कि इस सदन के प्रत्येक सदस्य के मत के अनुसार। इसके

पश्चात् फिर अप्रैल १९४६ मे दोबारा हमें अवसर मिला। कुछ वर्षों के लिए इस सदन मे हम लोग नही रहे थे और फिर शुरू मे सारे सदन ने आपको दुबारा अध्यक्ष चुना। पहले अनुभव के बाद आपको चुनना इस बात को प्रमाणित और साबित करता है कि इस सदन के प्रत्येक सदस्य को आपके वास्तविक व्यवहार से और जिस ढग से पहले, जब हम लोग सदन मे थे, इसकी कार्यवाही का संचालन आपने किया था, उससे हर एक को संतोष हुआ और उससे हर एक का सम्मान और श्रद्धा आपके प्रति बढ़ी, और उसके फलस्वरूप सन् १९४६ में सबने मिलकर पुन आपको अध्यक्ष चुना। उस समय भी मैंने कुछ बातें कही थीं। उनको दोहराना मैं अनावश्यक समझता हू। आपके बारे मे हम क्या कहें? जहा तक इस सदन का सबध है, इस सदन के आप प्रतीक हैं और इस सदन पर आप छाये हुए हैं। इस सदन की कल्पना आपको पृथक् करके करना बहुत ही कठिन है।……आपने जो कुछ इस देश के लिए किया है और जिस तरह का नेतृत्व आपका बाल्यकाल से आज तक रहा है उससे सभी परिचित और वाकिफ है। आप स्कूल और कालेज मे रहे तो वहा भी छात्र-समूह के अगुवा थे। उसके बाद जब से आप बाहर आए आप निरतर देश की सेवा करने मे लगे रहे। अपने विश्वास के अनुसार निर्भीकता से जिस कार्य मे आपको देश और समाज का हित मालूम हुआ उसे आप करते आए और उसके अतिरिक्त आपने किसी दूसरी बात की परवाह नही की। आपका सदाचार, आपकी शुद्धता, आपका शुद्ध व्यवहार, आपका निष्पक्ष रीति से कार्य का करना, ऊचे आदर्शो को सामने रख सरल जीवन के जरिए ऊचे कार्यों का सपादित करना आदि बातें हम सबको मार्ग दिखा रही हैं। आपने इस एक राजनीतिक क्षेत्र मे ही नहीं बल्कि और क्षेत्रो मे भी, साहित्य मे, लिपि मे, भाषा मे और धर्म मे, सभी मे एक प्रमुख भाग लिया है और आशा है लेते रहेगे। आपने केवल देश को स्वतत्र करने मे ही नही, बल्कि स्वतत्रता के प्राप्त होने के बाद एक नए समाज के निर्माण करने के लिए भी निरतर उद्योग किया है और अपने विचार के अनुसार आप कार्य करते रहे हैं। इन सब कार्यो के साथ ही आपने हमारे अध्यक्ष के पद के भार को लेना स्वीकार किया, और ऐसे समय मे जबकि हम पहले-पहल यहा इस लोक-सत्तात्मक राज्य प्रणाली का कार्य आरभ कर रहे थे, जनतत्र (डेमोक्रेसी) का श्रीगणेश हो रहा था, आपने इस भार को लिया। वैसे तो हमेशा ही इस प्रकार के सदन की सफलता, उसके सुचारुपूर्ण कार्य करने की सफलता, बहुत कुछ अध्यक्ष पर निर्भर करती है, परतु जब यह काम शुरू ही होता हो, जबकि नई परपरायें (कन्वेनशस) बनानी हो, नई बातो को कायम करना हो, और पहले-पहल वास्तव मे जनता के प्रतिनिधियो का अधिकार सदन मे आया हो, तब तो और भी कार्य का भार और उत्तरदायित्व बढ जाता है, परतु आपने इन सब बातो को बडे सुचारु रूप से किया। हम यह जानते हैं कि आपने इस काम के साथ-साथ और भी

काम किया। आप अपनी पार्टी के कार्य मे भी लगे रहते थे। जहा तक हमारा सवध है आप केवल इस सदन के अध्यक्ष ही नही वरन वास्तव मे हमारी गवर्नमेंट के, हमारी पार्टी के, सवके, एक सवसे ऊचे नेता हैं और रहे हैं। आपको 'फ्रेंड, फिलास्फर ऐंड गाइड' (मित्र, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक) के नाम से कहे तो ठीक होगा। आपके नेतृत्व मे हम लोग अपना कुछ कार्य करते रहे हैं और आपके अध्यक्ष पद पर होते हुए सभी को, चाहे आपने राजनीतिक क्षेत्र मे किन्ही विचारो के अनुसार कार्य किया हो, पूरा भरोसा और पूरा विश्वास था, यह एक मामूली वात नही है। आपने एक घोषणा कर दी कि आप अपना सवध जो पोलिटिकल पार्टी के साथ है, जो आपकी कार्यशैली रही है, उसे कायम रखेंगे। उस समय हमारे सामने अमरीका, इगलैंड आदि भिन्न-भिन्न देशो के कन्वेनशन्स या नियम मौजूद थे, परतु भिन्न-भिन्न देशो मे इस वारे मे भिन्नता है। हमारे देश मे भी भिन्न-भिन्न व्यवस्थापिका सभाओं मे अलग-अलग नियम रखे गए थे, परतु आपने पहले ही यह पूरी तरह से निश्चय कर लिया कि आप अपने राजनीतिक कार्यो को करते रहेगे। यह कन्वेनशन आपने उस समय स्थापित किया जवकि हमारा देश स्वतत्रता और स्वराज्य के लिए लड रहा था।

आज जव आप जाहिरा अध्यक्ष नही होंगे फिर भी आप हम सवके अध्यक्ष वने रहेगे और सर्वांगीण अध्यक्षता के नाते हमारा और आपका जो सवध रहा है वह आगे भी कायम रहेगा और आपके आशीर्वाद और प्रेरणा से हमे अपने कार्य करने का अवसर प्राप्त होता रहेगा। आज ऐसे अवसर पर, जवकि आप जा रहे हैं, मैं अपनी व्यथा को प्रकट करते हुए भी आपको वधाई ही देना चाहता हूं। किसी भी मनुष्य के लिए जो किसी वड़े काम की जिम्मेदारी रखता हो, वधाई का समय वास्तव मे उस समय, जवकि वह काम शुरू करता है, इतना नही होता जितना कि उस समय होता है जवकि वह अपना काम पूरा करता है।···

आपकी अध्यक्षता से हमारे जीवन का स्तर ऊचा रहा है और आप जिन सिद्धातो को रखते थे और आपसे जो आशायें हमने प्रकट की थीं, उनको पूरी तरह से आपने सदन मे पालन किया। सभी का आपके लिए आदर और सम्मान का भाव रहा है।··

मेरी एक उत्कट अभिलाषा थी कि कम-से-कम जमीदारी उन्मूलन विल के वाद-विवाद खत्म होने तक आप हमारे अध्यक्ष वने रहे क्योंकि उसमे ऐसे जटिल प्रश्न आ सकते थे जवकि हमे एक वयोवृद्ध और अनुभवी अध्यक्ष की आवश्यकता थी। आपने मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार किया।

आपको इस वात से कुछ हर्ष होगा कि आपकी अध्यक्षता मे यह वडा विल पारित हुआ जिसके वारे मे हमारे प्रात मे सवसे पहले आपने दुदुभी वजाई थी। इसके अनुसार प्रात के करोड़ो कृषको को सव तरह के अधिकार प्राप्त होंगे, जो आप

अतर न आने पावे।

हमारे दल ने वहुत कुछ मेरे ऊपर यह भार डाला था कि मैं अपने डिप्टी स्पीकर का चुनाव करू और आज आपके सामने डिप्टी-स्पीकर वैठे हुए हैं, जिनके चुनने मे मेरा ही विशेष हाथ था। मैं उनको उसके पहले अधिक नही जानता था, परतु मैंने उनको इस सदन मे देखा था, उनके वारे मे मेरे दूसरे भाई अधिक जानते थे, उन्होने मुझसे वताया था—उनके तरीके और काम के वारे मे। हालाकि वे एक विरोधी दल मे थे, मैंने अपने दल की राय से उनको डिप्टी स्पीकर के लिए चुना, यह जानते हुए कि उनकी राजनीतिक स्थिति मेरी स्थिति से विल्कुल अलग है। मुझको अपने सिद्धातो पर भरोसा है, जो चीज मैं अपने लिए कहता था वही मैं दूसरो के लिए भी चाहता था। यह आप सवके देखने की वात है कि उन्होने किस सुदरता से काम किया है। मैं इस उदाहरण को अपने सिद्धात की सफलता मानता हू। मेरा विश्वास है कि इगलैड का जो तरीका है वह जरूरी नही है कि सव जगह चलाया जाय, और मैं आपसे यह भी अपने दिल की वात वतला सकता हू कि जो राजनीतिज्ञ यह कहते है कि वे किसी दल के नही है उनके लिए भी पक्षपात करना सभव रहता है। जो खुला हुआ ऐलान करता है कि मैं एक दल के साथ हू उसको अहतियात वरतनी पडती है।

मेरे इस त्यागपत्र से आप भाइयो को जो खेद हुआ है इसका मैं हृदय से अनुमान करता हू क्योकि इस नाते को, अध्यक्षता के नाते को, तोडते समय मेरे हृदय मे तनाव हो रहा है, ठेस लग रही है, परतु हम सवको अपनी वातो को, प्यारी वातो को छोडकर कर्त्तव्य पालन करना है। मेरे सामने भी इस समय एक कर्त्तव्य-पालन की भावना है। सूवे की कांग्रेस की प्रेसिडेंटी जव मैं करने पर तैयार हुआ, उस समय ही मैंने अपना त्यागपत्र अपने दल के नेता के हाथ मे धरा था, परतु वह मेरे सिद्धात को जानते थे और उन्होने यह कहा, "तुम अपने सिद्धात पर अमल करो।" इसलिए उन्होने यह त्यागपत्र स्वीकार नही किया। मेरे मन मे आया कि जव मैं सूवा काग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए वुलाया गया हू और मेरे भाइयो ने मुझे उधर खीचा है तो स्पीकरी से मैं अलग हो जाऊ। परतु हमारे दल के नेता ने उसको स्वीकार नही किया।

अभी इस भवन के सदस्य श्री गोपाल नारायण सक्सेना ने कुछ हवाला दिया कि काग्रेस की कार्यसमिति की और कुछ नेताओ के मन की वात है कि स्पीकरी और सूवे के कागेस का अध्यक्ष पद, दोनो एक साथ एक व्यक्ति के पास न हो। कुछ अशो मे उनका विचार ठीक है। परतु उनका यह विचार ठीक नही है कि मैंने काग्रेस कार्यसमिति की राय के विरुद्ध स्पीकरी के साथ काग्रेस अध्यक्ष का पद लिया। मैं नियत्रण का पावद हू। अपने को वहुत आसानी के साथ नियत्रण मे रखने का अभ्यास मैने किया है। जिसके हाथ मे नियत्रण है उसकी राय का कभी-

कभी विरोधी रहते हुए भी मैं नियंत्रण का कायल रहता हू और सदा उससे अपने को वधा मानता हू। यह सभव नही था कि मुझे यह सूचना मिले कि कांग्रेस की कार्यसमिति की राय इस प्रकार की है तो मैं उसके विरुद्ध काम करु। हा, व्यक्तियो की राय से मैं अपने को अलग रख सकता हू। एक ऊचा व्यक्ति जिसका देश मे मान हो वह एक राय रखे और अपनी अलग राय रखू, तो उसके कहने मे मुझे सकोच न होगा। यह सच है कि यह जो मैंने त्यागपत्र दिया है कुछ अश मे नियत्रण के ही कारण है, और उसको स्पष्ट कर देना मुनासिव होगा। कई महीने हुए एक पत्र मेरे पास कांग्रेस के एक ऊचे अधिकारी का आया था जिसमे उन्होंने मेरे दोनो पद रखने की चर्चा की थी और इस विषय मे अपनी राय दी थी। मैंने पत्र का उत्तर दिया कि मैं आपसे सहमत नही हू, परतु मैं अपने आपको धन्यवाद दूगा और आपका कृतज्ञ होऊंगा अगर आप हमारे सूवे के काग्रेसी दल के नेता की स्वीकृति द्वारा मुझे इस कार्य से सुवुकपोश करा दें। उसके वाद उन्होंने क्या किया, मुझे मालूम नहीं। कुछ समय हुआ मेरे कान मे यह वात आई कि इस विषय की चर्चा कार्य समिति मे हुई कि कांग्रेस का सभापति और विधान सभा का अध्यक्ष एक ही व्यक्ति न हो। मैं ही देश भर मे ऐसा व्यक्ति था। इस लिये यह चर्चा स्पष्ट ही इस सूवे से सवध रखती थी। मैं राह देखता था कि अगर कोई राय कार्य समिति ने निश्चित की है तो मुझको उसकी इत्तिला आएगी, परतु मुझे कोई इत्तिला नहीं मिली, मेरे पास कोई सूचना नही आई कि कार्यसमिति की क्या राय वनी। मुझको तो कुछ सुनी हुई वात से यह पता लगा था और जैसे मुझे पता लगा मैंने अपने दल के नेता से निवेदन किया कि मैं अध्यक्ष के पद से सुवुकपोश हो जाना चाहता हूं। मैंने उनसे निवेदन किया कि मुझको छोड दिया जाय लेकिन उन्होने मुझको इजाजत नही दी। मैंने कई वार इस वात का प्रयत्न किया कि उनकी अनुमति मुझे मिल जाय, परतु मैं उनकी अनुमति प्राप्त न कर सका। उनका यही कथन रहा कि जव तक हमारा यह विल और वजट है तव तक हम नही जाने देंगे। उनका मेरे ऊपर इतना भरोसा है, उनका इतना स्नेह है, कि उनको मेरा हटना सहन न था। वडी कठिनता से उस दिन जव आपका विल पारित हुआ मै उनकी अनुमति पा सका। उनका स्नेह उस समय भी अनुमति देने मे उन्हे रोक रहा था, परतु मेरे विशेष आग्रह पर मुझे अनुमति मिली और उसी दिन मैंने तुरत ही, जैसे वातें करके आया, त्यागपत्र दे दिया।

मैं तो यहा ही आपके वीच मे रहूगा, यहा के जो कार्य हैं उनमे भाग लूगा। और अपनी जो राय दे सकूगा, वह दूगा। संभव है पहले से अधिक खुले ढंग से वह राय दे सकू। इस पद का त्याग करते हुए मेरे मन मे कर्त्तव्यपालन की दृष्टि से सतोप है। मैं आप सव सदस्यो का, जिनके साथ मेरा इतने दिनो का सवध है, हृदय से आपके प्रेमपूर्ण व्यवहार के लिए वहुत आभारी हू। मैं जानता हू कि कभी-

कभी मैंने नियत्रण के लिए कठोरता भी की है, परतु मुझे यह भी भरोसा रहा है कि मेरे कठोर शब्दो के पीछे आपने मेरे कोमल हृदय का अनुमान किया है। अपने साथियो के साथ कठोर व्यवहार करने मे मैं निताात अशक्त हू। मैं जानता हू अपने हृदय को। मैं पत्थर से नही बना हू। नियत्रण और कर्तव्य-पालन के लिए मुझे कभी कभी ऐसे काम भी करने पडते हैं जिनमें हमारे दूसरे भाइयो को, देशवासियो को, ठेस पहुचती है, परतु मैं हृदय की बात कह सकता हू कि उनके पीछे कभी कठोरता नही, आवश्यकता रहती है। मैं आप सबो के प्रति फिर अपनी कृतज्ञता और प्रेम प्रकट करता हू।"

स्पीकर-पद से विदाई लेने के बाद जब वह सध्या समय सरकारी-भवन सरकारी मोटरगाडी पर पहुचे तो उतरते ही चालक को आदेश दिया कि वह मोटरगाडी वापस ले जाकर राज्य सम्पत्ति अधिकारी को सुपुर्द कर दे। वह कहता ही रहा, "बाबूजी आपको दारुलशफा पहुचाकर चला जाऊगा।" पर उनका स्पष्ट उत्तर था, "अब इस गाडी का उपयोग करना अनैतिक होगा।" चालक कुछ देर खडा आसू बहाता रहा और फिर बाबूजी के चरण छूकर मोटर लेकर चला गया। उसी सध्या को उन्होने सरकारी चपरासियो तथा वैयक्तिक सहायक आदि सबको मुक्त कर दिया और अपना सामान तागे मे लेकर अकेले ही दारुल-शफा चले आए जहा विधान सभा के सदस्य के रूप मे उन्हे निवास दिया गया था। नैतिकता का इस प्रकार का उदाहरण आज के भारत मे मिलना सभव नही है।

काग्रेस के अध्यक्ष के रूप मे

जिस समय काग्रेस के अध्यक्ष पद के चुनाव की सूचना उन्हे मिली वह दारुल-शफा मे ही थे। काग्रेस अध्यक्ष चुने जाने की घोषणा होते ही उनके भक्तो की भीड दारुलशफा मे उन्हे घेरे रहती थी। उनके कुछ मित्रो को यह आशका होने लगी कि बाबूजी इस भीड-भाड मे अपना अध्यक्षीय भाषण न लिख सकेंगे और वह समय पर न छप सकेगा। बाबूजी का आरभ मे यह विचार था कि वह अपना भाषण मौखिक रूप मे ही अधिवेशन मे देंगे, लिखेंगे नही। किंतु उनके मित्रो ने उन पर दबाव डाला कि उन्हे भाषण लिखकर ही तैयार करना चाहिए क्योकि उस समय प० नेहरू से विचार वैभिन्य होने के कारण उनके मौखिक भाषण से कुछ आधारहीन भ्रातिया फैलाई जा सकती हैं। अत बाबूजी ने भाषण लिखने का निर्णय किया। उनके कुछ मित्रो ने उन्हे चुपचाप ७ सितबर सन् १९५० की रात को लखनऊ नगर से लगभग आठ मील दूर उतरेटिया के डाक बगले मे पहुचा दिया जहा वह एकात मे बैठकर अपना भाषण लिख सकें। काग्रेस का अधिवेशन नासिक मे २० सितबर को होना था। उनका भाषण इसके पूर्व तैयार होकर छप जाना चाहिए था। इस प्रकार समय थोडा ही था फिर भी रात-दिन लगकर बाबूजी ने भाषण

का प्रारूप हिंदी मे तैयार किया। इसका अग्रेजी अनुवाद करने के लिए उनके कुछ मित्रो को सुपुर्द किया गया जिनका अग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार था। अग्रेजी प्रारूप तैयार होकर उनकी नासिक यात्रा से कुछ ही पूर्व उन्हें मिला। अपनी नासिक की रेलयात्रा मे ही उन्होने इसे पढा और आवश्यक सशोधन किए। अग्रेजी का प्रारूप बम्बई मे छपाया गया था और अधिवेशन के दिन ही छप कर प्राप्त हुआ था।

काग्रेस के कुछ नेताओ का सुझाव था कि काग्रेस अध्यक्ष की 'स्पेशल ट्रेन' लखनऊ से नासिक जाय पर बाबूजी ने मना कर दिया। उनके लिए तीसरे दर्जे का एक डिब्बा गाडी मे लगाया गया। उनके साथ इस डिब्बे मे इन पक्तियो के लेखक और श्री मोहन लाल गौतम के अतिरिक्त कुछ उनके मित्रगण थे दो रातें ट्रेन मे बिताकर तीसरे दिन वह नासिक पहुचे। रास्ते भर स्टेशनो पर उनका बडा स्वागत हुआ, सोना भी कठिन था। दूसरी रात मे एक बजे के बाद गाडी मे उनके मित्रो ने उन्हें सोने के लिए बाध्य किया। वह कहते ही रहे, "इतनी रात मे यदि लोग आते हैं तो क्या मैं जाग भी नही सकता।" नासिक पहुचने पर वहा की जनता ने उनका बडा दिव्य स्वागत किया। उस स्नेह को देखकर बाबूजी का हृदय द्रवित हो गया और उनके नेत्र छलछला आए।

उनके एक मित्र के शब्दो मे, "वास्तव मे काग्रेस का अध्यक्ष मनोनीत होने के बाद कई बार राजर्षि के नेत्र छलछला आए थे। सभवत स्नेहमूर्ति बाबूजी ने इस समय अनुभव किया कि जिस भारतभूमि की सेवा मे उन्होने अपना जीवन होम दिया और जिस पुण्यभूमि की सर्वोच्च मानवीय परपराओ का उन्हे उत्कृष्ट उपासक माना जाता है, उसी भूमि के लोगो ने उनसे कितना स्नेह किया, उनको कितना आदर प्रदान किया।" उन्ही मित्र ने आगे लिखा है, "लखनऊ के निकट के उस अज्ञातवास के काल मे मध्यप्रदेश अथवा महाराष्ट्र की किसी बहिन ने बाबूजी को रोली, अक्षत और माला भेजी थी, साथ मे पत्र भी था। यह पत्र रात को लगभग ११ बजे ही खोलने का मौका मिला। कमरे मे मिट्टी के तेल का लैंप जल रहा था। राजर्षि उस समय बडे द्रवित हुए। नेत्रो मे बरबस छलकते हुए आसुओ को उन्होने रोकने का कठिन प्रयास किया, पर असफल रहे। स्नेहशील बाबूजी का स्नेह से इस प्रकार द्रवित रूप मैं कभी भूल नही सकता।"

नासिक मे काग्रेस अधिवेशन बडी धूमधाम से सपन्न हुआ। काग्रेस के सभी वरिष्ठ नेता उसमे उपस्थित हुए थे। इस प्रकार की चर्चा भी उस समय फैलाई गई थी कि इस चुनाव परिणाम से प० नेहरू सतुष्ट नही हैं, इस कारण वह सभवत अधिवेशन मे सम्मिलित न हो। किंतु वह भी सम्मिलित हुए और पूरी कार्यवाही मे भाग लिया। २० सितम्बर सन् १९५० को खुला अधिवेशन था

जिसमे अपार भीड थी। इस दिन केवल बावूजी ने अपना भाषण पहले हिंदी मे और फिर बाद मे अग्रेजी मे पढा। सभी ने इस भाषण की उस समय बडी प्रशंसा की। काग्रेस के उन लोगो ने भी जो बावूजी के निर्वाचन के समर्थक नही थे, उनके भाषण की मुक्त कठ से सराहना की। श्री राजगोपालाचारी भी उसी भवन मे ठहराये गए थे जिसमे बाबूजी ठहरे थे। हमे स्मरण है कि अधिवेशन के दूसरे दिन प्रात काल राजाजी बावूजी के कमरे मे आए और अन्य बातो के सिलसिले मे उनके भाषण और उसमे व्यक्त विचारो के लिए बहुत उन्हे बधाई दी। बावूजी के भाषण का हिंदी प्रारूप मूलरूप मे परिशिष्ट ६ मे दिया जा रहा है।

अधिवेशन के अतिम दिन समापन के अवसर पर दिया गया बावूजी का भाषण बडा मर्मस्पर्शी था। अपने भाषण मे उन्होने काग्रेसजनो को बढते हुए भ्रष्टाचार और पद-लोलुपता पर रोक लगाकर त्याग की भावना से देश के नव-निर्माण मे लगने का आह्वान किया था। इस भाषण मे उन्होने इग्लैड की एक कहानी का उदाहरण दिया था जिसमे "एक गडरिये की सत्यनिष्ठा और न्याय-प्रियता से प्रभावित होकर इग्लैड के एक राजा ने उसे अपना मत्री बनाया था। मत्री के रूप मे इस गडरिए को जो घर दिया गया था उसके एक कमरे मे वह बराबर ताला बन्द रखता था और उसे कभी किसी को नही खोलने देता था। राजा के सभासद, जो इस गडरिए मत्री के कारण अपनी मनमानी नही कर पाते थे और उससे वैमनस्य रखते थे, बराबर उसके विरुद्ध राजा के कान भरा करते थे। राजा से इन सभासदो ने अनेक बार कहा, "यह मत्री अपने घर के एक कमरे मे बराबर ताला बन्द रखता है और कभी उसे खोलने नही देता। उसमे अवश्य ही उसने बहुत-सा धन और जवाहरात छिपाकर रखा होगा।" बराबर ऐसी शिकायतें सुनते-सुनते राजा को भी उसके प्रति सदेह होने लगा और एक दिन अचानक मत्री के घर पहुचकर राजा ने उस कमरे को खोलने के लिए मत्री को आदेश दिया। मत्री ने उस कमरे को खोल दिया। राजा यह देखकर स्तभित रह गया कि उसमे केवल गडरिये के वे पुराने कपडे थे जो मत्री बनने से पूर्व वह पहनता था। राजा ने उससे उन पुराने कपडो को इतनी सुरक्षा मे रखने का कारण पूछा। मत्री ने उत्तर दिया कि वह जानता था कि किसी दिन राजा दूसरो की शिकायतो को सुनकर उसके प्रति सदेह करेंगे और तब वह अपने उन्ही कपडो को पहन कर वापस चला जाएगा। यह कहकर उसने मत्री के परिधान और पद को त्याग कर अपने उन्ही पुराने कपडो को पहना और राजा से यह कहकर कि अब जब आपको स्वय भी मुझ पर सदेह होने लगा है मैं यहा नहीं रह सकता और अपना पद छोडकर चला गया। राजा ने बहुत चाहा किंतु वह रुका नही।" बावूजी ने उक्त कहानी सुनाने के बाद काग्रेसजनो को यह प्रेरणा दी कि उन्हे

वैभव और पदो के प्रलोभन मे नही पडना चाहिए। "हम सबने देश की स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए गरीबी का बाना अपनाया था और आज भी हमे उसी प्रकार के त्याग के लिए तैयार रहना चाहिए। तभी हम अपने नये राष्ट्र का निर्माण और उन्नति उचित दिशा मे कर सकेंगे, और ऐसे रामराज्य की स्थापना करने मे सफल हो सकेंगे जिसकी कल्पना गाधीजी ने की थी।" उनका यह समापन भाषण बडा ओजस्वी और प्रेरणादायक था। उपस्थित जन समूह ने बडी देर तक करतल ध्वनि कर अपनी प्रशसा व्यक्त की थी।

अधिवेशन की समाप्ति के बाद काग्रेस की कार्यसमिति के गठन का प्रश्न उपस्थित हुआ। काग्रेस के विधान के अनुसार अध्यक्ष को ही अपनी कार्यसमिति बनाने की पूरी स्वतत्रता रही है। बाबूजी ने कार्यसमिति के गठन के लिए अपना एक नया सिद्धात बनाया। उन्होने निश्चय किया कि देश के वरिष्ठ काग्रेस नेताओ के साथ साथ प्रादेशिक काग्रेस कमेटियो के अध्यक्षो को भी कार्यसमिति मे लिया जाए जिससे पूरे देश का अधिक प्रतिनिधित्व हो सके। सरदार पटेल तथा अपने अन्य कुछ साथियो से परामर्श कर उन्होने कार्यसमिति का गठन किया। प० नेहरू को अपनी कार्यसमिति मे सम्मिलित करने के लिए उनका नाम भी रखा। प० नेहरू से उनकी स्वीकृति प्राप्त करने के लिए वह स्वय उनसे मिलने भी गए। प० नेहरू ने श्री रफी अहमद किदवई को भी सम्मिलित करने के लिए कहा। साथ ही महामत्रियो के रूप मे जिन व्यक्तियो को बाबूजी ने चुना था उनमे भी परिवर्तन चाहा। बाबूजी ने प० नेहरू से स्पष्ट कहा, "श्री रफी अहमद किदवई उनके विचारो और नीतियो से मतभेद रखते हैं। ऐसी परिस्थिति मे वह अपनी कार्यसमिति मे उन्हे कैसे रख सकते हैं?" अत बाबूजी अपनी सूची मे प० नेहरू के कहने से भी कोई परिवर्तन करने को तैयार नही हुए। आरभ मे तो प० नेहरू ने कार्यसमिति मे रहना स्वीकार नही किया, किंतु दो-तीन दिनो के बाद कुछ विचार कर तथा कुछ लोगो के आग्रह पर स्वीकार कर लिया।

काग्रेस अध्यक्ष होने के बाद बाबूजी जब इलाहाबाद आये तो नगर की जनता की ओर से उनका बडा भारी स्वागत किया गया। अपार जनसमूह उनके स्वागत के लिए एकत्र हुआ और उन्हे एक खुली मोटर मे बैठाकर बडा लबा जुलूस निकाला गया। अपनी खुशी और श्रद्धा व्यक्त करने के लिए उनके कुछ भक्त नगरवासियो ने गाडियो मे केले तथा अन्य फल भरकर जुलूस के पूरे मार्ग भर जनता मे वितरित किए। ऐसा बडा और सुदर स्वागत इसके पूर्व नगर मे कभी देखने मे नही आया था। इसी प्रकार कलकत्ते मे भी जब अध्यक्ष होने के बाद प्रथम बार वह पहुचे तो वहा भी स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए इतना जनसमूह एकत्र हुआ कि बाबूजी को स्टेशन से बाहर मोटर तक पहुचाने मे कई घंटो का समय लग गया और तेज धूप की गर्मी से उन्हें कुछ बेहोशी सी आने लगी। तब किसी प्रकार

शीघ्रता कर उन्हें उनके निवास स्थान पर पहुचाया गया।

जब बाबूजी ने काग्रेस के अध्यक्ष का भार ग्रहण किया तब काग्रेस के केंद्रीय कार्यालय के दिल्ली मे होने के कारण उन्हें अधिकतर दिल्ली मे ही रहना पड़ा। उन दिनो वह दिल्ली मे वियोगी हरिजी के साथ किंग्सवे कैंप (पुरानी दिल्ली) मे स्थित हरिजन आश्रम मे रहते थे। वहा से वह प्रतिदिन काग्रेस कार्यालय, ७ जतर-मतर मार्ग (नई दिल्ली), आते थे। अभी तक अखिल भारतीय काग्रेस के कार्यालय मे अध्यक्षो के प्रतिदिन बैठने की परपरा नही थी, परन्तु बाबूजी प्राय: प्रतिदिन ही प्रात. से साय तक कार्यालय मे बैठते थे। कभी कभी-कभी रात मे काफी देर भी हो जाती थी। इससे कार्यालय के कार्य मे सुविधा और शीघ्रता हुई, तथा काग्रेसजनो को भी उनसे मिलने मे सुविधा हुई। अपने कार्य-काल की छोटी सी अवधि मे बाबूजी ने काग्रेस कार्यालय की कार्य-प्रणाली मे कई महत्त्वपूर्ण सुधार किए। काग्रेस की ओर से हिंदी मे 'आर्थिक समीक्षा' नाम की एक पत्रिका का प्रकाशन आरभ होना एक बडा महत्त्वपूर्ण कार्य था।

काग्रेस कार्यालय तथा अन्य व्ययो के लिए काग्रेस कोष मे उन्हें कमी दिखलाई गई। तब धन एकत्र करने की चिता भी उन्हें हुई। विभिन्न स्थानो की यात्रा कर उन्होंने आवश्यक धन भी एकत्र किया। सरदार पटेल ने गुजरात से काग्रेस के लिए एक लाख रुपये अहमदाबाद मे आमत्रित अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के अधिवेशन के समय दिये जाने का भार लिया, किंतु इस बैठक के पूर्व ही उनका देहात हो गया। फिर भी उनके वचन का निर्वाह उनकी पुत्री, मणि बेन पटेल, ने किया और एक लाख रुपये की थैली काग्रेस को भेंट की गई।

अचानक १५ दिसबर १९५० को सरदार वल्लभ भाई पटेल का स्वर्गवास बबई मे हो गया। इसकी सूचना बाबूजी को कोटा में मिली जहा वह हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन मे सम्मिलित होने के लिए गए हुए थे। बाबूजी तुरत बबई पहुचे और उनकी अत्येष्टि क्रिया मे सम्मिलित हुए। सरदार पटेल के देहात के बाद काग्रेस की स्थिति फिर बदली। बाबूजी को सरदार पटेल का ही एक मजबूत समर्थन था। प० नेहरू तो बाबूजी से असतुष्ट थे ही। प० नेहरू को अवसर मिला और उन्होने बाबूजी से कार्यसमिति के पुनर्गठन की बात कही। साथ ही यह धमकी भी दी कि यदि उनकी इच्छानुसार कार्यसमिति का गठन नही किया जाएगा तो वह स्वय भी कार्यसमिति मे नही रहेंगे। बाबूजी के सामने बडी विषम परिस्थिति थी। एक ओर उनके सामने अपने सिद्धात की रक्षा का प्रश्न था और दूसरी ओर प० नेहरू के त्यागपत्र को स्वीकार करना था। यद्यपि वह प० नेहरू के दृष्टिकोण से सहमत नही थे पर यह अनुभव कर रहे थे कि प० नेहरू का उस समय देश और काग्रेस मे जो प्रभाव था उसके कारण यदि प० नेहरू का त्यागपत्र वह स्वीकार करते तो उसका अर्थ था काग्रेस का विघटन। जिस

संस्था मे रहकर जीवन पर्यंत उन्होंने देश का कार्य किया था उसको उनके द्वारा कोई हानिपहुचे यह उनको सह्य नही था। साथ ही वह अपने सिद्धात से भी नही हट सकते थे। अत उन्होंने निश्चय किया कि वह स्वय ही अध्यक्ष पद से अपना त्याग-पत्र दे देंगे। जिस समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक इस प्रश्न के निर्णय के लिए बुलाई गई, सारा वातावरण तनावपूर्ण था किंतु बाबूजी बहुत शान्त और गभीर मुद्रा मे वहा बैठे थे। लोग अपना अपना अनुमान लगा रहे थे कि काग्रेस की नीति क्या मोड़ लेगी। बाबूजी ने किसी को यह आभास नही दिया था कि वह क्या निर्णय करने वाले थे। जब बैठक आरंभ हुई तब बाबूजी ने एक हृदयस्पर्शी वक्तव्य दिया जिसमे उन्होंने स्पष्ट किया कि "मैं अपने सिद्धात से विचलित नही हो सकता, किंतु मैं समझता हू कि इस समय देश को प० नेहरू की आवश्यकता है। अत मैं अध्यक्ष-पद से स्वय अपना त्यागपत्र दे रहा हू।" उनके इस वक्तव्य से पूरी समिति मे सन्नाटा छा गया। बहुतो की आखो मे आसू आ गए। कुछ समय तक कोई भी सदस्य कुछ बोल न सका। कुछ बडे नेताओ ने परस्पर यहा तक कहा कि टडनजी के साथ बड़ा अन्याय किया गया।

इस पूरी घटना का बडा रोमाचक और विस्तृत विवरण हिंदुस्तान टाइम्स के दूसरे दिन के अक मे छपा था जिसमे यह भी लिखा था कि नासिक के काग्रेस अधिवेशन मे समापन भाषण देते हुए बाबूजी ने जिस गडरिये की कहानी सुनाई थी उसी के त्याग को अपने जीवन मे उतारा। देश की समस्त जनता और सब नेताओं के बीच चारो ओर बाबूजी के त्याग और महानता की बडी चर्चा हुई। बाबूजी के अध्यक्ष पद से हटने के बाद प० नेहरु ने स्वय इस पद का भार सभाला। पं० नेहरू प्रधानमत्री और कांग्रेस अध्यक्ष दोनो पदो पर बने रहे, यद्यपि दो पदो पर एक साथ बने रहना काग्रेस के पूर्व निश्चय के विपरीत था। प० नेहरू ने अध्यक्ष के रूप मे अपनी जो कार्यसमिति बनाई उसमे बाबूजी को सम्मिलित होने के लिए आमत्रित किया। उन्होने इसे स्वीकार किया। यह उनके हृदय की विशालता थी। साथ ही वह यह चाहते थे कि कोई यह न समझे कि उनके मन मे पिछली घटना की कोई प्रतिक्रिया है। अध्यक्ष-पद छोडने के बाद जब वह इलाहाबाद आए तब पुरुषोत्तम दास टडन पार्क मे एक विशाल जनसभा के बीच उनका भाषण लगभग तीन घटे तक हुआ। अपने भाषण मे उन्होने अपने अध्यक्ष-पद के निर्वाचन के पूर्व से लेकर इस पद से त्यागपत्र देने तक का पूरा विवरण विस्तार से जनता के सामने रखा। अपने भाषण मे न तो उन्होने किसी के प्रति रोष प्रकट किया और न किसी की निंदा की। सभी लोगो ने कहा, "यह टडनजी के चरित्र का ऊंचापन है जो वह इतना बड़ा त्याग कर सके और बिना किसी राग-द्वेष के अब भी काग्रेस को अपना सहयोग दे रहे हैं।"

इलाहाबाद की जन-सभा मे दिए गए उनके भाषण की एक सबसे बड़ी

विशेषता यह थी कि उन्होंने पूरे तथ्य जनता के सम्मुख रख दिए किंतु कही रोष की भावना या काग्रेस के प्रति कटुता की भावना प्रकट नही की। उन्ही की महानता थी कि इतना होने पर भी उस दल को त्यागा नही—आजीवन उसी मे रहकर उसकी भरसक सेवा की। आज छोटी-छोटी बातो से रुष्ट होकर दल त्याग करना और नये दल बनाना राजनीति का एक अग हो गया है। कुछ लोगो ने कहना आरभ किया कि अब सरदार नही रहे और नेहरू रुष्ट है, अत टडनजी का राजनीतिक जीवन समाप्त हो गया, पर क्या ऐसा हो पाया ? जनताके बीच वह बराबर ही ऊचा उठते गए और यदि जनता की आवाज सुनने-मानने की प्रणाली हमारे देश मे अपनाई गयी होती तो जनता सिद्ध करती कि वह क्या ठीक और क्या गलत समझती है।

बाबूजी सच्चे काग्रेसी थे, सत्य और अहिसा के अनन्य उपासक थे। किंतु उनकी अहिसा कायरता नही थी। जिस समय १९४६ मे मुस्लिम लीग ने खूनी क्राति का नारा लगाया बाबूजी ने कहा 'अब चर्खा छोडकर बन्दूक सभालने का समय आ गया है।'

लोकसभा की सदस्यता

लोकसभा के सन् १९५२ के चुनाव के लिए काग्रेस के आदेश से वह इलाहाबाद नगर क्षेत्र से प्रत्याशी हुए और निर्विरोध चुने गए। लोकसभा मे समय-समय पर उनके कई महत्त्वपूर्ण भाषण हुए। उनके कुछ भाषण पुस्तकाकार छपे हुए है।* उनका एक भाषण तिब्बत के सबध का बडे महत्त्व का है। जब तिब्बत को आत्मसात करने के लिए चीन बढ रहा था तब बाबूजी ने लोकसभा मे अपने भाषण मे शासन को सचेत किया था कि चीन के इस कार्य का वह समर्थन न करे, किंतु शासन ने उनकी बात पर ध्यान नही दिया जिसका परिणाम देश को सन् १९६२ मे चीन के आक्रमण के रूप मे भुगतना पडा। यद्यपि बाबूजी उस समय यह देखने के लिए इस ससार मे जीवित नही थे पर लोगो ने अनुभव किया कि उनकी तिब्बत के सबध की चेतावनी सत्य सिद्ध हुई।

जब हमने स्वतत्रता की लडाई आरभ की थी तब हमारा यह दावा था कि स्वतत्रता मिलने के बाद हमारे देश की गरीबी और बेकारी की समस्याए तथा अन्य सभी प्रकार की समस्याए दूर हो जाएगी। आज स्वतत्रता मिलने के ३४ वर्षों बाद भी हमारी बेकारी और गरीबी कम होने की अपेक्षा बढी ही है, और अब लोगो का ध्यान ग्रामो तथा लघु उद्योगो की ओर जा रहा है। किंतु बाबूजी ने इस विषय की ओर शासन का ध्यान सन् १९५२ मे ही लोकसभा मे अपने भाषण

* 'शासन पथ निर्देशिका'—प्रकाशक आत्माराम एड सस दिल्ली।

द्वारा आकर्षित किया था। उन्होंने कहा था कि हमारी योजनायें ग्रामोन्मुखी होनी चाहिए। शासन ने यदि उस समय उनके द्वारा कही गई बातो पर ध्यान दिया होता तो सभवत. आज तक ये समस्याए वहुत अश तक सुलझ चुकी होती। वाबूजी ने जो भाषण १८ दिसवर सन् १९५२ को पचवर्षीय योजना के सवध मे वोलते हुए लोकसभा मे दिया था उसका कुछ अश नीचे दिया जा रहा है—

"... मेरे ऊपर यह प्रभाव पडा कि देशभक्ति और वुद्धि की कमी न होते हुए भी जिस दिशा मे रिपोर्ट दी गई है उससे हमारे देश मे कोई नई सृष्टि, नई सुदर रचना, जिसको हम देखना चाहते हैं, नही आने वाली है।.. मैं यह सुझाव देता हू कि वे गावो की तरफ अधिक ध्यान दें, गावो की नई रचना करें।...सवसे वडी आवश्यकता इस समय यह है कि नए गाव वसाये जाए या पुराने गाव इस प्रकार से ठीक किये जाए कि वहा आप से आप एक सौंदर्य दिखलाई पडे। गाव मे मैं कही भी जाता हू, विशेपकर उत्तरी भारत मे, तो मुझे वस्तिया गदी दिखाई पडती हैं आप उद्योग धधो की तरफ ध्यान दें पर सवसे पहले गावो को अच्छा वनावें · गाव के प्रत्येक घर के लिए, जो नये गाव वसते हैं उनमे, प्रत्येक कुटुव के लिए, ५-७ व्यक्तियो के कुटुव के लिए, आप आधी एकड भूमि दें फिर आप देखें कि कैसी सुदर वस्ती वसती है। तव आपका यह क्षयरोग और मलेरिया का प्रश्न ही गावो मे नही रहेगा और ये चीजें फिर सुनाई नही देंगी। दवाइयो पर रुपए खर्च करना वुद्धिमानी नही है। वुद्धिमानी यह है कि वस्तिया ऐसी वनाइये कि लोग स्वास्थ्य से रहे, वीमारी का प्रश्न ही न आए।

हमारे देश मे वस्तुओ की वरवादी कई दिशाओ मे वहुत है.. जिन चीजो की हम रक्षा कर सकते है वह रक्षा नही कर रहे हैं। आपका ध्यान भी देश के मल-मूत्र की तरफ नही जाता, आपका रुपया-पैसो पर ध्यान जाता है, सोने-चादी पर ध्यान जाता है, मगर देश के मल-मूत्र पर ध्यान नही जाता। आवश्यकता है इस देश के मल-मूत्र की हम रक्षा करें। उसमे वडी सपत्ति है। अगर हर एक घर मे आप आधी एकड भूमि देंगे जैसा मेरा सुझाव है, तो उस घर का मल-मूत्र वहा की मिट्टी मे जाएगा। ९ इच मिट्टी के नीचे मल-मूत्र स्वर्ण होता है।"

वह कट्रोल के भी विरुद्ध थे। इस सवध मे उन्होंने कहा, "आपने इस रिपोर्ट मे फिर कट्रोल की चर्चा की है और कट्रोल की चर्चा करते हुए 'सीलिग प्राइसेज' रखने की वात की है।...घर-घर मे वेईमानी हुई है सीलिग प्राइसेज की वजह से जाति की जाति और नगर के नगर वेईमान वनाये गए हैं। मैंने एक रोज उदाहरण दिया था कि खुले वाजार मे चना, जिसकी सीलिग प्राइस गवर्नमेट की ओर से १२ रुपए मन थी, १९ और २० रुपए मन विक रहा था।· 'आपने एक वस्तु की सीलिग प्राइस रख दी अर्थात् इससे अधिक भाव पर वह वस्तु न

विक पाएगी, परतु परिणाम उसका यह हुआ है कि उससे अधिक भाव पर वह खुले बाजार मे बिकी, आपकी आखो के सामने, लेकिन आप मे साहस नही है कि आप उस अपराध करने वाले के विरुद्ध कोई मुकदमा चला सकें।

आप जानते हैं कि जो कार्यवाही आप कर रहे है उससे बेईमानी फैलती है। आपको लोगो की रोटी और भौतिक चीजो का तो ख्याल है, लेकिन लोगो की आत्मा कहा जा रही है, गड्ढे मे गिर रही है, उधर बिल्कुल आपका ध्यान नही है। गाधीजी चले गए। आज आप गाधीजी से लाखो कोस दूर बहते चले जा रहे है। शासनकर्त्ताओ के लिए गाधीजी का नाम लेना असत्य है। गाधीजी सत्य को सबसे ऊपर रखते थे। क्या आप आज जो कुछ कर रहे हैं, वह सत्य की रक्षा करेगा?"

इसके बाद उन्होने सरकारी विभागो के अपव्यय, घूसखोरी आदि की विस्तृत चर्चा उदाहरण देते हुए की।

जैसा हम पीछे बतला चुके हैं बाबूजी ने अपने जीवन के आरभ से ही सत्य और नैतिकता पर बल दिया था। उनका यह विश्वास था कि देश के शासन और अर्थव्यवस्था मे भी इसका पूरा ध्यान रखा जाय, तभी हमारे देश की समस्याए सुलझेंगी और वह शक्तिशाली बनेगा। लोकसभा के अपने १९ मार्च सन् १९५६ के भाषण मे उन्होने कहा था—

" मैंने पिछले वर्ष जब आर्थिक स्थिति की चर्चा हो रही थी अपने भाषण मे यह कहा था कि यह उचित है कि हम देश मे धन की वृद्धि करें परतु धन की वृद्धि मे भी सन्मार्ग का ध्यान रखें। अनुचित रास्ते न अख्तियार करें। उस पर मैं कुछ ब्यौरे मे गया था। बाद मे मैंने सुना कि हमारे प्रधानमत्री ने मेरे उस भाषण की चर्चा काग्रेस पार्टी मे की। मैं वहा उपस्थित नही था। उनके शब्द मेरे सामने आये थे। मैंने अपने भाषण मे कहा था कि हमको नैतिकता की आवश्यकता अधिक है, भलमनसाहत की आवश्यकता अधिक है, केवल पैसे की उतनी आवश्यकता नही। हमारे प्रधानमत्री ने अपने भाषण मे कहा था कि "टडनजी ने 'मारल स्टैंडर्ड' की चर्चा की, यह तो उद्योगो को बढाने का विषय था, वह बहक गए।" उन्होने मेरे कथन को बहकना कहा था। जो व्यापारी लोग हैं और जिनका मुख्य उद्देश्य 'येन केन प्रकारेण' लक्ष्मी की वृद्धि करना है, वह नैतिकता की बात को बहकना ही कहते हैं। परतु मेरा निवेदन है कि यदि गाधीजी का नाम, कभी-कभी हम गाधीजी का नाम व्यर्थ ही अपनी त्रुटियो को छिपाने के लिए ले लेते हैं, कुछ अर्थ रखता है और उनके नाम के पहले यदि हमारी सस्कृति का कुछ अर्थ है, जिसके कारण हमारे लोगो का आज तक नाम चला आ रहा है, तो वह यह है कि हमारे जीवन का मुख्य आदर्श नैतिकता है। लेकिन आज जितने काम हैं, क्या व्यापार, क्या सरकारी नौकरी, क्या इजीनियरिंग और उनके साथ उनकी ठेकेदारी, क्या वकालत, सब जगह आज

अनैतिकता वढी हुई है। मैं कुछ अपने अनुभव से कह रहा हू। ये वडे-वड़े महल शुद्ध कौडी के ऊपर नही वने हैं…न वंवई के, न कलकत्ते और न दिल्ली के। मैं उनको देखता हूं तो हृदय रो उठता है। कारण कि जितने ऊचे महल उठे हैं वह प्राय वेईमानी से ही उठे हैं। आज वेईमानी का पारावार नही है।

…ऐसी हालत मे हमारा कर्त्तव्य है कि हम गांवो की ओर देखें न कि वडे महलो को। हम देहातियो के पास जाए, उन दरिद्र लोगो के पास जाए, जिनकी आमदनी वहुत कम है। उनकी हम हैसियत वढाएं। इन महल वालो को ऐसा अवसर न दे कि महल पर महल वनाते जाए। ऐसा करने मे कोई लाभ नही वरन् हर प्रकार की हानि होगी।"

लोकसभा मे शिक्षा प्रणाली के संवध मे २७ मार्च १९५४ को अपने भाषण मे वावूजी ने कहा था—

"वडी आवश्यकता तो इस वात की है कि वच्चो मे चारित्रिक प्रौढता, वल, पुरुषार्थ और नियत्रण उत्पन्न किया जाय। यह मुख्य वात है और इस ओर जाने का जो मार्ग है हमे उस पर चलना चाहिए। जो आज की प्रणाली है वह उस ओर ले जाने वाली तो विल्कुल भी नही है। हमारे विद्यार्थी जो अपनी शिक्षा पूरी करके निकलें उन्हे आज की तरह से जीविका के लिए मारे-मारे नही फिरना चाहिए। उनको इस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए कि वे शिक्षा प्राप्त करने के वाद तुरत ही किसी न किसी काम मे लगाए जा सके। जीविका के योग्य वनाना और उनके चरित्र का निर्माण करना, शिक्षा के ये दो मुख्य तथा आवश्यक अग हैं। लेकिन खेद है कि इन दोनो अगो की ओर से हमारी आज की शिक्षा प्रणाली उदासीन है।" इसी क्रम मे उन्होंने शिक्षा मत्रालय द्वारा दिये जाने वाले अनुदानो की चर्चा विस्तार से की। कई सस्थाओ को अनुदान स्वीकृत किए गए थे किंतु हिंदी का कार्य करने वाली मुख्य सस्था 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के लिए कोई अनुदान स्वीकृत नही हुआ था। उन्होंने कहा कि हिंदी को राष्ट्रभाषा की मान्यता देने के वाद शासन का यह कर्त्तव्य है कि उसका कार्य करने वाली सस्थाओ को विशेष रूप से सहायता दे। इसके विपरीत शिक्षा-मत्रालय ने ऐसी सस्थाओ की उपेक्षा की है।

शिक्षा मत्री मौलाना अवुल कलाम आजाद ने २९ मार्च १९५४ को अपने विभाग की ओर से जो उत्तर दिया और उस क्रम मे उस दिन जो वहस हुई उसका कुछ अश यहा दिया जा रहा है—

मौलाना आजाद, "…उनके (टडनजी) सामने यह नही है कि वह कोई कन्सट्रक्टिव* तजवीज पेश करें। पहले उन्होने एजूकेशन मिनिस्टर के खिलाफ

---

* Constructive.

एक मुकालफाना नक्शा बनाया और नक्शा बनाने के बाद वह अपना एक केस बनाना चाहते है और इसका मैटर जमा करना चाहते हैं, वह सही हो या गलत। चुनाचे मैं भी आपको बतलाऊगा कि उन्होने क्या नक्शा बनाया। नक्शा यह बनाया कि एजूकेशन मिनिस्टर के मुतल्लिक हमे मालूम है कि कान्स्टिट्यूएंट असेंबली मे जब बहस शुरू हुई थी तो वह हिंदुस्तानी के हक मे थे, चुनाचे अब भी एजूकेशन मिनिस्टर जो कुछ कार्य कर रहे हैं, जो कुछ मदद दे रहे हैं, वह हिंदी के लिए नही दे रहे हैं बल्कि हिंदुस्तानी के लिए दे रहे है। यह उन्होंने हमे बतलाया।"

टडनजी—"मौलाना मुझे माफ करें अगर मैं उनसे कहू कि जिस नाप-तौल के साथ मैंने कहा था आप भी जरा उसी नाप-तौल से बात कीजिए। मैंने यह नही कहा कि हिंदी नही चाहते। मैंने कुछ 'सेंस ऑफ प्रपोर्शन' को सामने रखकर कहा था कि उधर ज्यादा झुकाव है। एक महज गुस्से मे अपनी तौल न छोडिए। तौल रखिए और तौल कर बात कीजिए।"

मौलाना आजाद—"ये सोचना गलत है।···कहा तक दयानतदारी के साथ उन्होने अपना नक्शा बनाया। दलील मे उन्होने यह पेश की है कि एजूकेशन मिनिस्टरी वर्धा की 'हिंदुस्तानी प्रचार सभा' को मदद दे रही है। अब यह जाहिर है कि हिंदुस्तानी प्रचार सभा के नाम मे हिंदी का लफ्ज नही है, हिंदुस्तानी का लफ्ज है। उसको एजूकेशन मिनिस्टरी मदद दे रही है तो सुनने वालो के दिमाग पर यह असर पडेगा कि वाकई एजूकेशन मिनिस्टरी का झुकाव हिंदुस्तानी की तरफ है। क्योंकि वह हिंदुस्तानी प्रचार सभा वर्धा को मदद दे रही है। मैं आपको बतलाना चाहता हू कि इसके अदर एक पुरफरेब तखय्युल है। वाक्या क्या है मैं आपको बतलाता हू···"

टडनजी—"डिप्टीस्पीकर साहब, मुझे एतराज है इस लफ्ज पर। पुरफरेब के क्या मानी? मैं कहता हू मौलाना साहब से कि मिनिस्टर होने से वह मुझसे ज्यादा ईमानदार नही हो गए। इस बात का उनको मुझसे सबक सीखना पडेगा। डिप्टी स्पीकर साहब, शिक्षा मत्री को मुझसे सबक लेना पड़ेगा कि शब्द कैसे बोलना चाहिए। पुरफरेब का लफ्ज मेरे लिए इस्तेमाल करते है। यह गलत है। पुरफरेब वह बोल रहे हैं। मैंने जो कुछ कहा दलील देकर कहा था। 'इन दोनो चीजो को साथ रख कर मैंने कहा था कि वह हिंदी सस्था है, हिंदी की प्रतिनिधि सस्था है। उसे एक पैसा नही देते और हिंदुस्तानी सभा को इतने रुपये? आप एक ही न लें। आप लिस्ट पढ लीजिए। मैंने पढा था। यह तकरीर पुरफरेब है कि एक लफ्ज को चुन लिया जाय और उसके ऊपर यह दावा किया जाय और कुल तकरीर का जो रौ है—उसको छोड दिया जाय। आप पूरी फेहरिस्त पढें। मैंने पूरी फेहरिस्त पढ कर कहा था कि यह मेरा यकीन है।"

इस पर अनेक सदस्यो ने इस शब्द का अर्थ पूछा ।

टडनजी—"प्रधानमत्री से इस शब्द का अर्थ पूछें ।"

अलगूराय शास्त्री—"मौलाना ने अपनी तकरीर मे दो फ्रेज़ेज इस्तेमाल किए हैं। पहले तो यह कहा कि कहा तक दयानतदारी का नक्शा सामने आया। दूसरे यह कहा कि पुरफरेब तखय्युल। इन दोनो लफ्जो के माने हैं 'वाट ऑफ आनेस्टी'[1] और 'फ्रॉडुलेंट'[2] अग्रेजी मे। मौलाना साहब ने माननीय पुरुषोत्तमदास टडन के ऊपर आनेस्टी आफ पर्पस'[3] के न होने और 'फ्रॉडुलेंट' चीजें कहने का चार्ज लगाया है। इससे खराब वात और क्या हो सकती है? यह नही होना चाहिए। यह गलत माने 'कन्वे'[4] करता है और 'अनफार्चुनेट'[5] है। इसे वापस लिया जाय।"

टडनजी—"मैंने एक लफ्ज भी मौलाना की शान के खिलाफ इस्तेमाल न करने का वरावर प्रयत्न किया। मैंने जो कुछ कहा दलील देकर कहा।"

इस प्रकार का वातावरण उपस्थित होने पर मौलाना ने अपने शब्द वापस लिए। इसके वाद अपने विभाग के अनुदानो के सबध मे उत्तर देते हुए उन्होने स्वय अपने विषय मे जो कुछ कहा उसका सार निम्नवत है—

"मैं आत्मप्रशसा नही करता। मेरा कोई स्वार्थ नही है। ४० वर्ष पूर्व सन् १६०७ से मैंने अपना जीवन देश के लिए लगाया है। उस समय से मेरा जीवन पूरे ससार के सम्मुख एक खुली पुस्तक के रूप मे रहा है। मेरी कोई निजी इच्छा, अभिलाषा नही है ' किंतु मेरा विश्वास है कि इस प्रकार की (वावूजी द्वारा व्यक्त) मनोभावना पाकिस्तान वनाने के लिए उतनी ही जिम्मेदार है जितना गलत दिशा प्राप्त मुसलमान।"

इसके वाद उस दिन की कार्यवाही समाप्त हो गई। वाद मे २१ अप्रैल को स्वास्थ्य मत्रालय के अनुदानो पर वोलते हुए वावूजी ने मौलाना द्वारा उन पर २६ मार्च को लगाये गये आरोपो का उत्तर देते हुए कहा—

"इसके वाद मैं कुछ शब्द शिक्षा विभाग के सवध मे कहना चाहता हूं। मैं चद मिनटो मे ही कह सकूगा। शिक्षा मत्री ने उस रोज अपना असर डालने के लिए वहुत कुछ कहा। लेकिन मेरा निवेदन है कि उन्होंने न्याय से काम नही लिया। जो वातें मैंने नही कही थी वह उन्होने अपनी तरफ से मेरे मुह मे रख दी।

---

१ Want of honesty—ईमानदारी की कमी।
२ Fraudulent—कपटपूर्ण।
३ Honesty of purpose—उद्देश्य की सच्चाई।
४. Convey—इगित करना।
५ Unfortunate—दुर्भाग्यपूर्ण।

उन्होंने विल्कुल गलत वयानी से काम लिया। मैंने उम्र भर अलग हिंदू मुसलमान के हित की चर्चा नही की। मेरे सामने सस्कृति का सवाल रहता है। लेकिन यह हिंदू है, यह मुसलमान है, लानत है उस पर जो इस तरह सोचता हो। मेरे लिए सव इसान वरावर है। मैंने अपना हमेशा यह उसूल रखा है—

"न हिंदुअम, न मुसलमा, न काफिरम, न यहूद।"

मौलाना साहव ने अपना जिक्र करते हुए कहा कि उनकी जिदगी के पन्ने खुले हुए हैं। यहा पर वहुत लोग हैं जिनकी जिंदगी के पन्ने खुले हुए हैं, कुछ मानी मे। न मालूम उन लोगो ने स्वतत्रता के लिए कितनी-कितनी सजाए पाई हैं, कितनी-कितनी तकलीफें उठाई है, मगर उनका जिक्र वे नही करते। जो लोग करनी करते हैं वे

'कहि न जनावहि आप',

अपनी वात अपने मुह से नही करते।

"सनाय खेश रा गुफ्तन, न ज़ेवद मर्दरा साहव।"

अपनी कारीगरी को अपने मुह से वयान करना वहुत अच्छी वात नही होती। यहा वहुत लोग हैं जो वडे कारीगर हैं, जिन्होंने कष्ट सहे है।·· शिक्षा मत्री ने वहुत से ऐसे लफ्ज इस्तेमाल किए, मैं लौटकर उनको नही कहना चाहता। मेरे दिमाग मे वे इस समय है भी नही। लेकिन मुझे इस समय एक वात याद आ रही है और वह यह है कि गाधीजी के वारे मे मैंने पढा था कि जव नागपुर मे गाधीजी ने हिंदी का पक्ष लिया तो उर्दू तहरीक को चलाने वाले मौलाना अव्दुल हक साहव ने, जो अजुमान तरक्की उर्दू का काम करने वाले थे, गाधीजी के वारे मे उस समय कहा था कि 'उनके चेहरे से रया का नकाव उतर गया।' रया के अर्थ हैं फरेव। यह लफ्ज मौलाना साहव ने मेरे लिए इस्तेमाल किया था। जो चीज अव्दुल हक साहव ने महात्मा गाधी जैसी शख्सियत के लिए कही, आज वही चीज मौलाना साहव ने मेरे जैसे छोटे आदमी के लिए कहना मुनासिव समझा। तगदिली की वात कह देना वडा आसान है। यह तगदिली किसकी है, यह समझने की वात है। मैं पूछना चाहता हू कि आज आप फारसी लिपि को क्यो पकडे हुए हैं? फारसी की लिपि इस देश की नही है। आप उसको पकडे क्यो हैं? क्या यह तगदिली नही है? हमारे देश मे जो नागरी लिपि चल रही है, जिसके लिए मेरा निवेदन है कि वह हमारी सस्कृति और तमद्दुन का जुज है और उसी को हम फैलाना चाहते हैं और ग्रहण करना चाहते हैं, क्या यह कहना तगदिली है? मैं यह कहना चाहता हू कि आप फारसी लिपि को जो पकडे रखना चाहते हैं, यह तग-दिली नही तो क्या है? क्या यह फराखदिली है? मैं इस पर क्या कहू, अधिक नही कहना चाहता। उन्होंने उस रोज वहुत गलत वयानी से काम लिया। मैं तो हिंदू, मुसलमान को एक करना चाहता हू, एक सस्कृति उनकी हो, एक तमद्दुन

मे वे रहे और इसके लिए मेरा वार-वार यह निवेदन है कि देश के सव लोगो को एक लिपि, नागरी लिपि, मे वांधना उचित है। वह क्या कोई आपके मजहव के खिलाफ जाता है? चीन मे जो मुसलमान हैं वह चीनी लिपि मे अपना सव काम-काज करते है और कुरान शरीफ का भी अध्ययन वह चीनी भाषा मे ही करते हैं, अरवी लिपि मे वह अपना काम नही चलाते। मैं चाहता हू कि हम सव मिलकर इस सवाल को हल करें।"

वावूजी के लोकसभा मे पहुचने से हिंदी की प्रगति को भी विशेष वल मिला। लोकसभा सचिवालय मे हिंदी के अधिक प्रयोग के लिए जो समिति अध्यक्ष ने गठित की उसके अध्यक्ष वावूजी वने। सविधान की धाराओ के अनुसार हिंदी की प्रगति पर विचार करने के लिए जो समिति शासन ने वनाई उसके भी वावूजी सदस्य थे। इस समिति मे वावूजी ने हिंदी माध्यम अपनाए जाने के पक्ष मे, जहा तक सभव हुआ, दूसरे प्रदेशो के सदस्यो की वातो का ध्यान रखा, किंतु कुछ मौलिक वातो मे उनका मतभेद रहा और उन्होने अपना विगति टिप्पण दिया। दूसरे प्रदेशो के कुछ सदस्यो ने भी इस टिप्पणी पर हस्ताक्षर किए।

उडीसा के राज्यपाल वनाये जाने का प्रस्ताव

इसी वीच दिसवर सन् १९५३ में प० नेहरू ने इनसे वहुत आग्रह किया कि वह उडीसा के राज्यपाल का पद स्वीकार कर लें। किंतु वावूजी ने इसे अस्वीकार करते हुए जो पत्र नेहरूजी को लिखा वह नीचे दिया जा रहा है—

१०, क्रास्थवेट रोड,
इलाहावाद,
६-१-१९५४

प्रिय जवाहरलाल,

नमस्कार।

तुमने जो यह प्रस्ताव २६ दिसवर को किया था कि उडीसा के राज्यपाल पद पर मैं कार्य करू उसका उत्तर जाने मे कुछ देरी हुई है। अधिकतर वाहर रहा हू। कल रात वादा से लौटा, क्षमा मागता हू।

तुम्हारे प्रस्ताव के वारे मे मेरे मन मे यह सघर्ष रहा है कि उन कामो से कुछ हटकर, जिनमे मैं लगा हू, क्या राज्यपाल पद पर मेरी उपयोगिता होगी? अत मे मेरा हृदय यह कहता है कि तुम्हारी उदारता के प्रति कृतज्ञ होते हुए भी मैं इस पद को न लेने के लिए तुमसे क्षमा मागू।

सस्नेह

पुरुषोत्तमदास

देश और हिंदी के कार्य से हटकर वह कोई भी पद स्वीकार करने को तैयार नही थे। उन्हे अपने इस ध्येय से कभी कोई प्रलोभन विचलित नहीं कर सका।

राज्यसभा की सदस्यता

वाबूजी मन् १९५७ मे राज्यसभा के सदस्य चुने गए। कुछ समय वाद उनका स्वास्थ्य काफी खराव हो गया। स्वास्थ्य जब कुछ सुधरा भी तो पुरानी शक्ति उनमे नही आ पाई। धीरे-धीरे निर्बल होने के कारण उनका दिल्ली जाना और वहा रहना सभव न हो सका। अत वह प्रयाग रहने लगे और १ जनवरी १९६१ से उन्होने राज्यसभा से अपना त्यागपत्र भी दे दिया। अपने त्यागपत्र मे उन्होने लिखा था, "मैं रुग्ण हू। सदस्य के कार्यभार का निर्वहन नही कर सकता। अत त्यागपत्र देता हू।" सार्वजनिक जीवन की मर्यादा का यह एक और ज्वलत उदाहरण है तथा दूसरो के लिए पथ-प्रदर्शक।

अभिनदन ग्रथ का भेंट किया जाना

वावूजी की राष्ट्र और हिंदी की सेवाओ के उपलक्ष मे दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हे एक अभिनदन ग्रथ समर्पित करने का निर्णय किया। वावूजी से जब इसकी चर्चा की गई तो उन्होने वहुत मना किया कि उनका इस प्रकार का कोई अभिनदन करने की आवश्यकता नही है। उन्होने तो केवल अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। वावूजी के इस प्रकार मना कर देने पर दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिकारी लालवहादुर शास्त्रीजी को लेकर वावूजी से मिले और इन सवके आग्रहवश ही उन्होने इस अभिनदन ग्रथ को ग्रहण करना स्वीकार किया। एक वडा अभिनदन समारोह प्रयाग मे म्योर सेंट्रल कालेज के प्रागण मे २३ अक्टूवर सन् १९६० को आयोजित किया गया। राष्ट्रपति राजेन्द्र वावू प्रयाग केवल वावूजी को इस समारोह मे अभिनदन ग्रथ भेंट करने के लिए विशेष रूप से आए। प० सुमित्रानदन पत स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। वावू सपूर्णानन्द ने इस समारोह की अध्यक्षता की थी। अपनी अस्वस्थता के कारण कुर्सी पर वैठा कर पडाल मे वावूजी लाए गए थे। अपने दुर्वल और क्षीण स्वास्थ्य के कारण कुछ ही शब्द वह धन्यवाद के वोल सके थे।

भारत रत्न की उपाधि का दिया जाना

राष्ट्र के प्रति की गई उनकी सेवाओ के उपलक्ष मे भारत सरकार ने उन्हे सन् १९६१ मे 'भारत रत्न' की उपाधि से विभूषित किया। अपनी अस्वस्थता के कारण इस उपाधि को प्राप्त करने के लिए वह दिल्ली नही जा सके थे। इलाहावाद

हिंदी की सेवा और हिंदी साहित्य सम्मेलन

हिंदी की सेवा के सबध मे बाबूजी के शब्द है—

"हिन्दी की सेवा का भाव मेरे श्वास श्वास मे रमा है, मैं हिंदी का और हिंदी मेरी है। हिंदी के लिए मेरे प्राण भी प्रस्तुत हैं।"

प्रत्येक राष्ट्र को अपनी भाषा होती है जो उसी देश मे उपजती और विकसित होती है। अपनी भाषा के बिना राष्ट्र गूगा होता है। यह भाषा उस राष्ट्र के समस्त निवासियो मे एकात्मता की भावना उत्पन्न करती है। इसी एकात्मता की भावनात्मक अनुभूति से राष्ट्र सगठित और मजबूत होता है। अत इसमे कोई दो मत नही हैं कि प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति और प्रगति अपनी भाषा के द्वारा ही सभव होती है। इसी भाषा के माध्यम से देश के समस्त कार्य होते हैं और मौलिक चिंतन होता है। प्रत्येक देश के मनीषियो के विचार अपनी ही भाषा मे प्रस्फुटित होते हैं और वही भाषा उस देश की सपूर्ण सस्कृति की प्रतीक होती है।

इस देश मे मुसलमानी शासन काल मे यहा की भाषा की अवहेलना कर राजकार्य मे फारसी भाषा को प्रधानता दी गई। इस शासन के बाद जब अंग्रेजो का आधिपत्य इस देश मे हुआ तो अग्रेजी भाषा राजभाषा के रूप मे हमारे देश पर आरोपित कर दी गई। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि देश की बौद्धिक उन्नति लगभग अवरुद्ध सी हो गई। बहुत सीमा तक मानसिक दासता भी लोगो मे आ गई। देश की एकता पर भी इसका हानिकारक प्रभाव पडा। ऐसी परिस्थिति मे देश के मनीषियो ने, जिनमे देशप्रेम की उच्च भावना थी, अग्रेजी के इस प्रभुत्व के हानिकर प्रभाव पर विचार किया और देश मे एक राष्ट्रभाषा अपनाए जाने की बात उठाई। ऐसे मनीषियो मे राजा राममोहन राय प्रमुख थे। उन्होंने कहा था, "यदि समस्त देश को एक सूत्र मे बांधना है तो हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप मे अपनाना होगा।" इसके बाद बगाल तथा दक्षिण के अनेक मनीषियो ने

हिंदी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी लिपि को राष्ट्रलिपि अपनाए जाने की वात कही। ऐसे वातावरण मे काशी मे भारतेन्दु वावू हरिश्चन्द्र ने हिंदी साहित्य के नवनिर्माण का कार्य सगठित रूप मे अपने कुछ सहयोगियो के साथ आरंभ किया। काशी एक प्रकार से हिंदी साहित्य का केंद्र हो गया और भारतेंदु हरिश्चद्रजी के वाद हिंदी की सेवा की परपरा को वनाये रखने के लिए नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई।

राष्ट्रभाषा के सवध मे देश के मनीषियो ने जो विचार-धारा प्रसारित की थी उसका प्रभाव वावूजी के मन पर विद्यार्थी जीवन से ही पड गया था। एक सुयोग और वन गया। हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक और हिंदी पत्र 'प्रदीप' के सपादक प० वालकृष्ण भट्ट का निवास-स्थान वावूजी के घर के विल्कुल समीप था। भट्टजी गवर्नमेंट स्कूल मे हिंदी के अध्यापक थे और उस स्कूल मे वावूजी उनके शिष्य भी थे। भट्टजी के ज्येष्ठ पुत्र महादेव भट्ट वावूजी के वचपन के साथी थे और मोहल्ले मे खेल-कूद तथा अन्य सव कार्यो मे भी वावूजी के साथ रहते थे। भट्टजी के शिष्य होने के नाते तथा महादेव भट्ट के मित्र होने के नाते वावूजी का भट्टजी के घर मे आना-जाना था। वावूजी भट्टजी का वड़ा आदर करते थे। भट्टजी का भी उनके प्रति वड़ा स्नेह था। वावूजी की सहज वुद्धि और प्रतिभा देखकर भट्टजी ने उन्हे 'प्रदीप' के लिए हिंदी में लेख लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार भट्टजी की प्रेरणा से हिंदी साहित्य और लेखन की ओर उनका झुकाव हुआ।

कचहरियो मे हिंदी के लिए आदोलन

कचहरियो में हिंदी को मान्यता दिलाए जाने का आंदोलन मालवीयजी ने सन् १९०० मे आरभ किया था। उस समय वावूजी कालेज के विद्यार्थी थे। उन्होने मालवीयजी के साथ उस आंदोलन मे सक्रिय भाग लिया। इस प्रकार हिंदी को सार्वजनिक जीवन तथा राजकीय कार्यों मे उचित स्थान दिलाने के आदोलन मे मालवीयजी की प्रेरणा से विद्यार्थी जीवन से ही उन्होने भाग लेना आरभ कर दिया था।

हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना और प्रगति

हिंदी का कार्य करने के लिए काशी मे नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हो चुकी थी। इस सभा के तत्वावधान मे हिंदी भाषा का व्यापक रूप से प्रचार करने के लिए तथा उसे राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए मालवीयजी की अध्यक्षता मे 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के नाम से हिंदी प्रेमियों की एक सभा १० अकटूवर सन् १९१० के दिन काशी मे वुलाई गई। वहा यह निश्चय हुआ

कि नागरी प्रचारिणी सभा से पृथक् "हिंदी साहित्य सम्मेलन" के नाम से एक दूसरी सस्था बनाई जाय। इसका मुख्य उद्देश्य हिंदी का प्रचार और हिंदी भाषा को राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन कराने का प्रयास करना होगा। इस निश्चय के अनुसार इस सस्था की अलग रजिस्ट्री कराई गई। मालवीयजी इसके अध्यक्ष तथा बाबूजी इसके मत्री चुने गए। बाबूजी इलाहाबाद मे रहते थे, इस कारण इसका कार्यालय इलाहाबाद मे रखा गया। आरभ मे कई वर्षो तक सम्मेलन का कार्यालय बाबूजी के अपने निवास-गृह के एक कमरे मे रहा। इसके बाद सन् १९२० मे सम्मेलन के वर्तमान स्थान पर नगरपालिका से प्राप्त भूमि पर कुछ कच्चे और खपरैल की छत के कमरे बनाये गए और सम्मेलन कार्यालय यहा स्थानातरित किया गया। इसी बीच सन् १९१८ मे "हिंदी विद्यापीठ" की स्थापना भी बाबूजी ने सम्मेलन के अंतर्गत की।

इस प्रकार हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से देश मे हिदी प्रचार और प्रसार के समस्त कार्य का भार बाबूजी के ऊपर आया और इस कार्य मे बाबूजी ने अपने को तन-मन-धन से समर्पित कर दिया। उनके अथक परिश्रम से हिंदी साहित्य सम्मेलन धीरे-धीरे एक राष्ट्रीय सस्था के रूप मे विकसित हुआ और समस्त देश मे इसकी प्रतिष्ठा और मान्यता बढी। इसी से हिंदी सेवियो ने बाबूजी को "सम्मेलन के प्राण" की सज्ञा दी। हिंदी प्रचार के क्षेत्र मे तथा हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन कराने मे सम्मेलन के द्वारा बाबूजी ने जो कार्य किया है वह सर्वविदित है।

हिंदी साहित्य सम्मेलन के कार्य की दिशा अधिकाशत बाबूजी के विचारो पर आधारित रही है। उनके विचारो को पूरे हिंदी जगत का समर्थन भी प्राप्त रहा। सम्मेलन को हिंदी सेवियो के अतिरिक्त देश के बडे-बडे राजनीतिक नेताओ का भी सहयोग मिलता रहा। देश के अनेक मनीषियो की भाति गाधीजी का भी यह दृढ विश्वास था कि देश को एकता के सूत्र मे बाधने और स्वराज्य प्राप्त करने के लिए हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप मे स्थापित करना आवश्यक है। इसीलिए महात्मा गाधी का भी सम्मेलन को पूरा सहयोग मिला और वह दो बार सम्मेलन के अधिवेशनो के सभापति चुने गए। उनके सहयोग से सम्मेलन का कार्य अधिक तीव्रता से बढा। महात्माजी की प्रेरणा से ही हिंदी साहित्य सम्मेलन ने सन् १९१८ मे दक्षिण मे हिंदी प्रचार का कार्य आरभ किया और 'दक्षिण हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना मद्रास मे की। इस कार्य के लिए वहा आरभ मे गाधीजी के सुपुत्र श्री देवदास गाधी को भेजा गया। कुछ दिन कार्य करने के बाद देवदासजी ने लिखा कि कार्य की अधिकता के कारण उन्हें एक सहायक की आवश्यकता है। तब स्वामी सत्यदेव परिव्राजक वहा भेजे गए। बाद मे प० हरिहर शर्मा ने वहां का कार्य संभाला। आज यह सभा स्वतत्र रूप से कार्य कर रही है। इस सभा के द्वारा दक्षिण मे हिंदी प्रचार का बडा अच्छा कार्य हुआ।

प्रारभ मे दक्षिण के अनेक हिंदी प्रेमी युवको ने प्रयाग आकर हिंदी सीखी और यहा से जाकर उन्होने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के तत्वावधान मे कार्य किया। कई वर्षों तक यह कार्य पारस्परिक सहयोग से सुचारु रूप से चला। किंतु धीरे-धीरे दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा को सम्मेलन से पृथक करने की वात उठी। वावूजी की यद्यपि यह इच्छा रही थी कि दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा वरावर हिंदी साहित्य सम्मेलन के अग के रूप मे ही वनी रहे और दोनो परस्पर के सहयोग तथा प्रेम से ही हिंदी के क्षेत्र मे कार्य करते रहें, पर स्थिति ऐसी हो गई कि उनके न चाहते हुए भी दोनो को साथ रखना कठिन हो गया। फलस्वरूप सन् १९२७ मे 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' से अलग होकर एक स्वतत्र सस्था वन गई।

राष्ट्रभापा प्रचार समिति

यह अनुभव किया जाने लगा कि हिंदी साहित्य सम्मेलन के लिए इतने वडे देश के विभिन्न अचलो और भागो मे एक ही केंद्र से हिंदी प्रचार का काम सफलतापूर्वक कर सकना संभव नही है। दक्षिण प्रदेशो मे हिंदी प्रचार का कार्य दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा कर रही थी, किंतु दूर-दूर के अन्य अहिंदी प्रदेशों मे हिंदी प्रचार का कार्य करने के लिए एक पृथक् प्रचार समिति की आवश्यकता अनुभव की गई। अत. सन् १९३६ मे नागपुर मे हुए सम्मेलन के अधिवेशन मे गाधीजी की प्रेरणा से निश्चय किया गया कि वर्धा मे 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना की जाय। इस प्रकार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना हिंदी साहित्य साम्मेलन ने की जिसका उद्देश्य था दक्षिण भारत के चार प्रदेशो को तथा हिंदी प्रदेशो को छोडकर देश के सभी भागो और अचलो मे हिंदी के प्रचार का कार्य करना। इस समिति ने देश के विभिन्न प्रदेशो मे हिंदी प्रचार और प्रसार का व्यापक रूप मे स्तुत्य कार्य किया है और आज भी कर रही है। हिंदी के प्रचार कार्य मे 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' (प्रयाग), 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' (मद्रास) तथा 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' (वर्धा) द्वारा सचालित हिंदी की परीक्षाओ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लाखो परीक्षार्थी प्रत्येक वर्ष इन परीक्षाओ मे सम्मिलित होते रहे हैं और इनके द्वारा देश के कोने-कोने मे हिंदी पहुची है।

सम्मेलन के जन्मकाल से ही वावूजी इसके कार्यों का सचालन कुछ वर्षों तक प्रधान मत्री के रूप मे और वाद मे कार्यवाहक उपसभापति के रूप मे करते रहे थे। सन् १९२३ मे जव वह जेल से छूटकर आए तव उसी वर्ष कानपुर मे आयोजित सम्मेलन के तेरहवें अधिवेशन का सभापति उन्हें चुना गया। अपने सहयोगियो तथा हिंदी के विद्वानो, विशेपकर प० महावीर प्रसाद द्विवेदी, के आग्रह-

वश उन्हें सभापति का पद स्वीकार करना पडा। सभापति पद से उन्होंने जो भाषण दिया वह बहुत विद्वतापूर्ण है। उसमे हिंदी की व्युत्पत्ति और विकास की विस्तृत विवेचना की गई है। उनका यह भाषण हिंदी साहित्य की एक निधि है।* इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष हिंदी साहित्य के विद्वान् और नवीन गद्य शैली के प्रवर्तक प० महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। अधिवेशन के समय द्विवेदीजी ने वाबूजी का नाम सभापति पद के लिए प्रस्तावित करते समय जो भाषण दिया उसका कुछ अश नीचे दिया जा रहा है—

"...टडनजी की आत्मा वडी उच्च है। आप प्रात के ही नही, देश भर के मान्य है। आपको मातृभाषा की वडी ममता है और सम्मेलन के जन्म से सदैव इसके आप कर्णधार रहे है। यदि आपका नेतृत्व न होता तो सम्मेलन वह काम, जो उसने इस अल्पकाल मे किया है, न कर सकता। टडनजी के आत्मोत्सर्ग का हमे अभिमान है। आपकी दिव्यता, सहिष्णुता, सत्यता और हिंदुस्तान की सेवा का हमे अभिमान है। आपका साहित्य प्रेम वडी उच्च कोटि का है।..."

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का जो उपाधि वितरण समारोह २६ मार्च सन् १९३७ को मद्रास में मनाया गया उसमे वावूजी को दीक्षात भाषण देने के लिए आमत्रित किया गया। इस अवसर पर उन्होने जो भाषण दिया उससे हिंदी के सवध मे उनके विचार स्पष्ट हो जाते हैं। उनका यह भाषण परिशिष्ट ११ मे दिया गया है।

गाधीजी हिंदी के प्रश्न को राजनीति से अलग देश के लिए महत्वपूर्ण मानते थे, यह निम्न घटना से स्पष्ट हो जाएगा। डॉ० उदय नारायण तिवारी से हमे इस घटना की जानकारी प्राप्त हुई है। यह वात सन् १९३७-३८ की है। उस समय प्रदेशो मे काग्रेस शासन चल रहा था। वर्धा मे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की वैठक हो रही थी। तिवारीजी स्वय इस वैठक म उपस्थित थे। गाधीजी भी उपस्थित थे। वावूजी ने वातचीत के वीच उनसे पूछा, "वापू, हिंदी पूरे देश की राष्ट्रभाषा कव तक हो पाएगी?" वापू ने हसते हुए समीप वैठे राजगोपालाचारी की ओर इगित करके कहा, "जव यह वुड्ढा नही रहेगा।" इस पर राजाजी ने कहा, "आप ऐसा क्यो कहते हैं? मैंने अपने प्रात मे हिंदी पढना अनिवार्य कर दिया है। जो हिंदी नही सीखते-पढते हैं उन्हे जेल जाना पडता है। मैं तो चाहता हू कि दक्षिण के लोग इतनी अच्छी तरह हिंदी सीख लें कि वे जाकर उत्तर वालो को भी हिंदी पढाए।" इस पर वापू वोले, "मेरे और पुरुषोत्तमदास टडन के लिए हिंदी स्वराज्य का प्रश्न है किंतु राजाजी के लिए यह एक राजनीति का प्रश्न है। यह आज हिंदी न पढने वालो को जेल भेज रहे हैं और कल हिंदी पढने वालो को जेल

*यह भाषण परिशिष्ट १० मे दिया गया है।

भेज सकते है।" बाबूजी भी राजाजी की दक्षिण-उत्तर की चर्चा से दुखी हुए और उन्होंने कहा, "आप दक्षिण और उत्तर की क्या बात कर रहे हैं ? हमारा देश ऐसी दो इकाइयो मे नही बटा है। हमारा पूरा देश एक इकाई है और वैसा ही उसे बनाए रखना है।"

महात्माजी की बात मे कितना तथ्य था यह हमे राजाजी की स्वतत्रता प्राप्ति के बाद की राजनीति मे स्पष्ट होता है। अपने प्रदेश मे अपने मुख्य मत्रित्व काल मे हिंदी न पढने वालो को जेल भेजने वाले राजाजी बाद मे हिंदी के पक्षपाती नही रहे। यह पूरा राष्ट्र जानता है।

स्वतत्रता मिलने के पूर्व आकाशवाणी से जो सूचनाए हिंदी के नाम से प्रसारित होती थी उनकी भाषा मुख्यत फारसी मिश्रित उर्दू होती थी। सन् १९४४ मे बाबूजी ने आकाशवाणी की इस भाषा नीति का विरोध किया। इस विरोध को प्रबल रूप देने के लिए उन्होने आकाशवाणी के बहिष्कार की योजना बनाई तथा सम्मेलन के मच से एक प्रस्ताव द्वारा हिंदी प्रेमियो से अनुरोध किया कि वे आकाशवाणी को किसी प्रकार का सहयोग न दें। जनमत को तैयार करने के लिए हिंदी और अग्रेजी समाचार पत्रो की सहायता ली गई। अग्रेजी दैनिक 'हिंदुस्तान टाइम्स' के विशेष संवाददाता श्री दुर्गादास ने इस प्रचार कार्य मे बडा सहयोग दिया। इस प्रचार का बडा प्रभाव पडा और आकाशवाणी को बाध्य होकर अपनी भाषानीति बदलनी पडी।

हिंदी साहित्य सम्मेलन ने महात्माजी के इस विचार को मान लिया था कि राष्ट्रभाषा हिंदी से तात्पर्य उस बोलचाल की भाषा से है जो हिंदी लिपि मे अथवा उर्दू लिपि मे लिखी जाती है। हिंदी साहित्य सम्मेलन देवनागरी लिपि मे लिखी जाने वाली हिंदी का प्रचार कार्य करता है। बाद मे गाधीजी ने यह चाहा कि सम्मेलन हिंदी के स्थान पर राष्ट्रभाषा का नाम 'हिंदुस्तानी' अपनाए और देव-नागरी तथा उर्दू दोनो लिपियो का प्रचार करे। बाबूजी महात्माजी के इस विचार से सहमत नही हुए। महात्माजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर देश के लगभग सभी नेता महात्माजी के 'हिंदुस्तानी' को राष्ट्रभाषा बनाने के विचार के सामने झुक गए और उनमे से किसी मे भी यह साहस नही हुआ कि वह महात्माजी की बात का विरोध करते। किंतु बाबूजी एक अकेले ऐसे व्यक्ति थे जो अपने हिंदी के सबध के विचार पर दृढ रहे और जिन्होंने महात्माजी की हिंदुस्तानी की नीति का विरोध किया। बाबूजी का यह दृढ विश्वास था, और सत्य भी यही है कि अधिकांश जनता की भाषा हिंदी और लिपि देवनागरी है तथा वह इसे ही राष्ट्रभाषा के रूप मे चाहती है। उनका कहना था कि सम्मेलन यद्यपि उर्दू भाषा को हिंदी की एक शैली मानता है और उसको इसमे कोई आपत्ति नही है कि राष्ट्रभाषा हिंदी-उर्दू मिश्रित भाषा हो, पर हिंदी साहित्य सम्मेलन आरभ से

देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी का कार्य करता रहा है और इसमे अतर कर दो लिपियो का सिद्धात मानना राष्ट्रभाषा के हित मे उचित नही है। सम्मेलन के अधिकांश सदस्य वावूजी के मत से सहमत थे। इसी वीच अवोहर मे सन् १९४१ मे सम्मेलन का अधिवेशन होना था। वावूजी जेल मे थे। इसके सभापति के लिए दो नाम प्रस्तावित हुए—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद तथा डॉ० अमरनाथ झा। डॉ० उदय नारायण तिवारी उस समय अपने शोध कार्य के लिए कलकत्ता मे थे। उन्होने वावूजी को इस चुनाव के सबध मे उनका निर्देश प्राप्त करने के लिए पत्र लिखा। वावूजी और राजेंद्र बाबू दोनो एक दूसरे का वडा आदर करते थे और दोनो मे वडी घनिष्ठ मित्रता थी। फिर भी वावूजी ने कई अवसरो पर उनके विचारो से सहमत न होने पर उनका विरोध भी किया। ऐसा ही एक अवसर यह भी उपस्थित हुआ। वावूजी ने डॉ० तिवारी को उत्तर दिया, "इस समय राजेंद्र वावू का विरोध करना है। वह हिंदुस्तानी के पक्षपाती हैं।" उस समय कलकत्ता के प्रसिद्ध पत्रकार श्री हेमन्त जोशी ने इस सबध के विचार अपने पत्र मे छापकर इसका प्रचार किया। सम्मेलन से कुछ ही समय पूर्व वावूजी भी जेल से छूटे और अवोहर पहुचे। डॉ० अमरनाथ झा इस अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए।

हिंदी-हिंदुस्तानी के प्रश्न पर वावूजी और गाधीजी के वीच मे लवा पत्र-व्यवहार हुआ और दोनो ही अपने-अपने विचारो पर अडिग रहे। अत मे गाधीजी ने सम्मेलन से सन् १९४४ मे त्यागपत्र दे दिया। गाधीजी का त्यागपत्र जयपुर के अधिवेशन मे रखा गया। यह अधिवेशन सितवर सन् १९४४ के अतिम सप्ताह मे हुआ था। कई घटो तक इस पर विचार विमर्श हुआ और बडे खेद के साथ सम्मेलन ने उनका त्यागपत्र स्वीकार किया।

हिंदुस्तानी के प्रश्न पर सम्मेलन से अपना सवध विच्छेद करने के बाद गाधीजी ने वर्धा मे देवनागरी और उर्दू दोनो लिपियो का प्रचार करने के लिए 'हिंदुस्तानी प्रचार सभा' नाम से एक दूसरी सस्था आरभ की और इसके सचालन का भार काका कालेलकर पर डाला। हिंदी साहित्य सम्मेलन को कानपुर के उद्योगपति श्री पद्मपत सिंहानिया ने हिंदी प्रचार के कार्य के लिए एक लाख रुपये का दान दिया था। इस धन को थोडा-थोडा कर सम्मेलन को वह भेजते रहते थे। इसमे से ७५०००/रु० व्यय हो चुके थे। इसी वीच हिंदी हिंदुस्तानी का प्रश्न छिड गया था। महात्माजी ने उस समय तक सम्मेलन से त्यागपत्र नही दिया था किंतु उनकी प्रेरणा से हिंदुस्तानी प्रचार सभा बना ली गई थी। काका कालेलकर ने इस सभा की ओर से श्री सिंहानिया के सहायक श्री अन्नपूर्णानदजी को एक पत्र महात्माजी की सहमति से लिखा कि प्रचार कार्य का शेष २५००० रु० महात्मा जी के पास हिंदुस्तानी प्रचार के लिए भेजे

जाए। किंतु अन्नपूर्णानदजी ने इसे स्वीकार नही किया और वरावर यही लिखा कि यह "धन हिंदी साहित्य सम्मेलन को हिंदी प्रचार के लिए स्वीकृत हुआ है, उसे ही इस कार्य के लिए दिया जाएगा, दूसरे को नही। हिंदुस्तानी प्रचार के लिए आपको धन चाहिए तो आप सिंहानियाजी को अलग से इसके लिए लिखें।" इसी बीच वर्धा मे एक मीटिंग मे इसकी चर्चा चली तो वावूजी ने कहा कि "२५००० रु० का प्रश्न नहीं है। रुपये तो और भी आ जाएगे। मुख्य प्रश्न है हिंदी और हिंदुस्तानी के वीच निर्णय करने का।" इस सवध की चर्चा के कुछ समय वाद ही महात्माजी ने वावूजी को इलाहावाद के पते पर एक पत्र भेजा। वह पत्र तो नही मिल सका है किंतु डॉ० उदय नारायण तिवारी के वताने के अनुसार वह पत्र इस प्रकार था—

प्रियवर वावू पुरुषोत्तमदास,

२५००० रु० वाली काका साहव की वात मान लेना मेरी भूल थी। मैं इसे स्वीकार करता हूं। तुमने ठीक कहा था।

वापू का आशीर्वाद।

तुम्हारा वापू।

हिंदी साहित्य सम्मेलन ने सन् १९४७ मे महात्मा गाधी को साहित्य वाचस्पति की उपाधि से विभूषित करने का निर्णय किया। महात्माजी से जव इसकी स्वीकृति मांगी गई तो उन्होने कहा, "मैं किसी प्रकार की उपाधि नही ग्रहण करता और इस उपाधि के योग्य भी अपने को नही समझता।" इस पर वावूजी ने उनसे कहा, "वापू, सम्मेलन ने सोच-समझकर यह उपाधि आपको देने का निर्णय किया है। हम लोग चाहते हैं कि आप इसे अस्वीकार न करें।" इस पर गाधीजी ने कहा, "पुरुषोत्तमदास, यदि तुम कहते हो तो मैं स्वीकार करता हू।" स्पष्ट है कि सम्मेलन से हटने पर भी गाधीजी के मन मे वावूजी के प्रति वडा आदर था।

जनता ने महात्माजी के दो लिपियो के सिद्धात का विशेष स्वागत कभी नही किया क्योकि दक्षिण के चार प्रदेशो के अतिरिक्त भारत के अन्य सभी प्रदेशो की भाषाओ की लिपि देवनागरी लिपि से मिलती-जुलती या उसका रूपातर ही रही है। अत उन सवको देवनागरी लिपि ही मान्य थी। स्वराज्य प्राप्ति और देश के विभाजन के वाद गांधीजी के मत को मानने वाले हिंदू ही नही समझदार मुसलमान भी यह मानने लगे थे कि अव राष्ट्रभाषा के लिए उर्दू लिपि पर वल देना अनुचित था। इस सवध मे श्रीमती रेहाना तैय्यव ने गाधीजी को अपने एक पत्र मे लिखा, "१५ अगस्त के वाद दो लिपियो के वारे मे मेरे ख्याल विलकुल वदल गए है और अव पक्के हो गए हैं। हिंदुस्तान मे उर्दू लिपि लादने मे इतना ही नही कि

कोई फायदा नही है वल्कि सख्त नुकसान है। उर्दू लिपि सामाजिक मेलजोल की जगह कभी नही ले सकती।…अगर वे (मुसलमान) हिंदुस्तान मे रहना चाहते हैं तो हिंदुस्तानियो की तरह रहें। वेशक उन्हे उर्दू सीखने की सहूलियतें दी जाए। मगर उन्हें खुश करने की खातिर हिंदुस्तान की सारी जनता पर दो लिपिया क्यो लादी जाए? ‥उर्दू लिपि के आग्रह से हमारा वोझ चौगुना हो जाता है‥ हम हिंदुस्तानियो का यही सूत्र रहे कि हमारी राष्ट्रभापा की लिपि नागरी।"

वावूजी को सम्मेलन से वहुत अधिक ममत्व अत तक रहा। सम्मेलन के कार्य के प्रति उनकी लगन और सस्था के प्रति उनका ममत्व आरभ से ही रहा है। हम पहले चर्चा कर चुके है कि किस प्रकार सम्मेलन के लिए अपना नाभा राज्य का पद उन्होने छोडा था। सम्मेलन के कार्य के प्रति उनकी लगन का एक दूसरा उदाहरण इस प्रकार है—जयपुर मे हिंदी साहित्य सम्मेलन का वार्पिक अधिवेशन होना था। वावूजी इस समय जेल मे थे किंतु ठीक अधिवेशन के पहले छोड़ दिए गए थे। वह सीधे सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिए जयपुर गए। वहा उन्हें वतलाया गया कि जयपुर राज्य की ओर से सम्मेलन के कार्यों मे वहुत वाधायें डाली जा रही थी। अतिम समय तक न पडाल वनाने की अनुमति मिली थी और न प्रतिनिधियो के निवास स्थान पर अतिरिक्त शौचगृह आदि वनाने की। फिर भी हिंदी प्रेमियो ने अधिवेशन वही करने का निर्णय किया। अत सवके हृदय क्षुब्ध थे और वातावरण मे तनाव था। ठीक ऐसे ही अवसर पर वावूजी ने मच पर पहुचकर वोलना आरभ किया। उन्होने कहा, "मैं राज्य के अधिकारियो को वता देना चाहता हू कि हम रियासत से लडना नही चाहते, क्योकि वडा शत्रु तो ब्रिटिश राज्य है। ये रियासतें तो उसी के भरोसे पर टिकी हैं। हम अग्रेजी राज्य से लड रहे हैं। मगर जव हम अग्रेजी राज्य से लड़ने मे नही घवराए तो जयपुर राज्य क्या चीज है? हम वाणी मे सौम्य हैं, धीमे वात करने मे विश्वास करते हैं, पर हमारा पैर अगद का पाव है, जहा रख दिया वहा से पीछे नही हटा सकते।"

अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनसे प्रत्येक व्यक्ति इस तथ्य की सत्यता स्वीकार कर लेता है कि वावूजी की वाणी सौम्य भले ही रही हो, पर कमजोर नही थी और न उसमे दृढता की कमी थी।

सम्मेलन द्वारा हिंदी का प्रचार कराकर ही वह सतुष्ट नही थे। उन्होने अनुभव किया कि हिंदी मे उच्चकोटि के कोश और विभिन्न विषयो पर—विशेषकर वैज्ञानिक विषयो पर—प्रामाणिक साहित्य उपलब्ध होना आवश्यक है। उनके इस प्रयास का परिणाम सम्मेलन के अनेकानेक प्रकाशन है। उन्होने यह भी अनुभव किया कि हमारी प्राचीन साहित्यिक धरोहर से भी लोग सस्कृत भाषा न जानने के कारण अनभिज्ञ रह जाते हैं। इसी से योजना वनाकर सम्मेलन द्वारा अनेकानेक प्राचीन ग्रथो का हिंदी अनुवाद तैयार कराकर उन्हे प्रकाशित

करवाया। इनमे पुराण, स्मृतिया, जातक कथाए आदि सम्मिलित हैं।

वास्तव मे हिंदी के लिए उन्होने स्वयं अपनी कितनी व्यक्तिगत हानि उठाई है इसका अनुमान कम लोग कर सकते हैं। वावूजी अंग्रेजी के भी वहुत अच्छे वक्ता थे किंतु जव से हिंदी का काम उन्होने उठाया था तव से सामान्य रूप से अंग्रेजी मे भाषण देना उन्होने बंद कर दिया था। वह युग ऐसा था कि अंग्रेजी वोलने वालो को ही विशेष मान्यता दी जाती थी। इसी कारण वावूजी को राजनीतिक क्षेत्र मे वह मान्यता नही मिली जो उनकी योग्यता और देशसेवा के आधार पर मिलनी चाहिए थी। किंतु उन्हें हिंदी की सेवा के सामने अपनी व्यक्तिगत किसी हानि की चिंता नही रही। संविधान सभा मे जव हिंदी को राष्ट्रभाषा वनाने के प्रश्न का मामला वहुत जटिल रूप धारण कर गया तव अपने मित्रो और अनुयायियो के अनुरोध पर उन्होने अपना भाषण अंग्रेजी मे दिया था जिससे अहिंदी प्रदेशो के सदस्यो के वीच मे उनके विचारो के प्रति कोई भ्रम उत्पन्न न हो। संविधान सभा के कुछ सदस्यो ने हमे वतलाया था कि उनके इस भाषण को सुनकर एक अंग्रेज पत्रकार ने कहा था, "इतना शुद्ध अंग्रेजी का भाषण कम ही भारतवासी दे सकते हैं।" हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन कराने मे संविधान सभा मे और उसके वाहर उन्होने जितना प्रयत्न किया उसका पूरा इतिहास यहा दिया जाना संभव नही है। संविधान सभा मे इस प्रश्न के आने के पहले उनके नेतृत्व मे दिल्ली मे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के तत्वावधान मे एक सभा वुलाई गई थी जिसमे दक्षिण प्रदेशो के तथा अन्य अहिंदी प्रदेशों के मनीषियो को आमंत्रित किया गया था। इनमे उच्च-कोटि के साहित्यकार, दार्शनिक और राजनीतिज्ञ, सभी वर्गों के महापुरुष सम्मिलित थे। इस सभा मे प्रो० काणे, श्री अनन्त शायनम आयंगर, प्रो० मेघनाथ साहा, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी आदि अनेक विद्वानो ने अपने अपने विचार व्यक्त किए। इनमे से अधिकांश की भाषा हिंदी नही थी। फिर भी इन अहिंदी प्रदेशो के सभी नेताओ का पूरा सहयोग वावूजी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप मे संविधान मे स्थान देने के प्रश्न पर प्राप्त कर लिया था और उनके इसी अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप संविधान मे हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया। जिस समय संविधान परिषद् मे राजभाषा के प्रश्न पर विचार हो रहा था इस सभा के निर्णय का वडा वल वावूजी को मिला था। इसे उनकी दूरदर्शिता ही कहा जाएगा कि उन्होंने देश के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, सभी प्रदेशो के ऊंचे विद्वानो का समर्थन दिल्ली मे आयोजित इस सभा द्वारा प्राप्त कर लिया था। इसी सभा मे यह भी निर्णय हो गया था कि हिंदी के साथ हिंदी अंक भी रहेगे, किंतु ऐसा लगता है कि पं० नेहरू के दवाव के कारण अंग्रेजी अंको के पक्ष मे संविधान सभा के वहुत से सदस्य वाद मे हो गए। वावूजी अंत तक अंग्रेजी अंको का विरोध करते रहे किंतु जव 'हिंदी वालो' ने ही इस प्रश्न

पर उनका साथ छोड दिया तब बाबूजी को चुप हो जाना पड़ा। हिंदी अंको के स्थान मे अग्रेजी अको को जो स्थान सविधान मे दिया गया उसकी व्यथा उन्हे जीवन के अत तक रही। लोकसभा मे १९ मार्च सन् १९५६ को दिए गए उनके भाषण के निम्नलिखित अश से उनकी यह व्यथा स्पष्ट होती है—

"···मैंने नागरी अको की इसलिए चर्चा की क्योंकि सविधान मे रोमन अंको के लिए कहा गया है। अब भी हमारे विधान मे यह कलक उपस्थित है कि जो अक हम प्रयुक्त करे वे रोमन हो। यह रोमन अक हमारे देश के लिए कलक है। अपने मे वे अच्छे है। हम अग्रेजी भाषा पढ़ें, मैं उसका पक्षपाती हू। अंग्रेजी भाषा के पढ़ने मे मैंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग लगाया है, जीवन का बहुत बड़ा अश अग्रेजी के उच्च साहित्य का अध्ययन करने मे मैंने लगाया है। मेरा उससे कोई वैर नही हो सकता, परतु हमारे देश मे हममे यह कहा जाय कि नागरी अक्षरो का तुम प्रयोग करो परतु नागरी अक्षरो के प्रयोग के साथ तुम अंग्रेजी अको को मिलाओ, तो मेरा निवेदन है कि यह अनुचित बात है और उसको किसी न किसी समय हटाना है।"

अपनी मातृभाषा हिंदी न होते हुए भी ठक्कर बापा अत तक बाबूजी के साथ हिंदी और हिंदी अको के प्रश्न पर रहे। इसी बीच एक दिन प० हृदयनाथ कुजरू ने बापा से पूछा कि वह गुजराती होते हुए भी टडनजी के भाषा के दृष्टिकोण का पूर्ण समर्थन क्यो करते है? तब उन्होने उत्तर दिया, 'टडनजी के विचार बहुत ही शुद्ध और राष्ट्रीय है और मैं उनका इस सबध मे पूर्ण अनुयायी हू।"

सविधान परिषद् मे बाबूजी ने जो अपना ऐतिहासिक भाषण (१४-९-१९४९ को) दिया था वह सविधान परिषद् की कार्यवाही मे छपा है।

केंद्रीय सचिवालय के अधिकारी तथा कर्मचारी हिंदी के द्वारा अपने कार्यालयो का कार्य कर सकें इस हेतु इन सबको हिंदी सिखाने के लिए केंद्रीय सचिवालय मे इसकी व्यवस्था की गई। बाबूजी ने एक "ससदीय हिंदी परिषद्" की स्थापना की जिसमे सध्या समय हिंदी अध्यापन की व्यवस्था रखी गई। इसमे अहिंदी प्रदेशो के ससद सदस्य भी हिंदी सीखते थे। यह ससदीय हिंदी परिषद् आज भी हिंदी का कार्य कर रही है। सविधान मे हिंदी का प्रश्न १४ सितबर सन् १९४९ को निर्णीत हुआ था, अत प्रत्येक वर्ष इस दिन को "हिंदी दिवस" के रूप मे मनाया जाता है।

हिंदी साहित्य सम्मेलन मे सन् १९४८ के अधिवेशन के बाद से ही दलगत राजनीति प्रवेश कर गई थी जिसके कारण इसके कार्य मे उचित प्रगति नही हो पा रही थी। इस दलगत राजनीति के परिणामस्वरूप सम्मेलन मे न्यायालय द्वारा आदाता की नियुक्ति हुई और सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनो का क्रम एक प्रकार से समाप्त हो गया। अपने जीवन के अतिम वर्षो मे सम्मेलन की शोचनीय स्थिति

के कारण उन्हे वड़ा दु:ख था। तव उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि सम्मेलन को केंद्रीय शासन राष्ट्रीय सस्था घोषित कर अपने नियत्रण मे ले ले और उसके सचालन का समुचित प्रवध करे। उनकी इस इच्छा के फलस्वरूप सन् १६६२ मे केंद्रीय शासन ने इसे एक राष्ट्रीय सस्था घोषित किया और उसके सचालन और नियमावली वनाने के लिए 'प्रथम शासन निकाय' का गठन किया। वावूजी के निधन के तीन दिनों पूर्व २८ जून सन् १६६२ को इस प्रथम शासन निकाय की पहली वैठक प्रयाग में हुई और सव सदस्यगण वावूजी के पास मिलने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने आए। वावूजी को इससे वडी शाति मिली थी।

इस शासन के प्रथम अध्यक्ष श्रीप्रकाशजी थे। कुछ ही दिनो वाद उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और फिर सेठ गोविन्ददास अध्यक्ष हुए। सेठजी को हिंदी के प्रति निष्ठा तो थी किंतु वह कुशल प्रशासक सिद्ध नही हुए। इस वीच इसके सचिव भी कई वार वदले। प्रथम सचिव श्री गोपालचन्द्र सिह थे जिन पर वावूजी का वहुत विश्वास था और उन्ही की इच्छा से वह सचिव वनाये गए थे। कुछ ही महीनो वाद जव गोपालचन्द्रजी की विधि विभाग के अतर्गत हिंदी निदेशालय मे विधि कोश निर्माण समिति मे एक सदस्य के रूप मे नियुक्ति हुई तो उन्होने शासन निकाय के सचिव पद से त्यागपत्र दे दिया। उसके वाद कुछ महीने श्री मोहनलाल भट्ट सचिव रहे और फिर उनके वाद श्री मौलिचन्द्र शर्मा सचिव हुए। शासन निकाय के द्वारा सम्मेलन के कार्य को विकसित रूप देने की आशा पूरी नही हुई और शासन निकाय इतने वर्षों मे ठीक नियमावली भी न वना सका जो अधिनियम के अनुसार उसका मुख्य कर्त्तव्य था। अत मे सुप्रीम कोर्ट ने इस अधिनियम को ही असवैधानिक घोषित कर शासन निकाय को समाप्त कर दिया और सम्मेलन फिर पुरानी स्थिति मे वापस आ गया।

फरवरी सन् १६५१ मे मुजफ्फरपुर मे हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर वावूजी ने कहा था—

"लोग कहते हैं कि मैं साहित्य और राजनीति से समन्वित दोहरा व्यक्तित्व रखता हू, पर सच्ची वात यह है कि मैं पहले साहित्य मे आया और प्रेम से आया। हिंदी साहित्य के प्रति मेरे उसी प्रेम ने उसके स्वार्थों की रक्षा और उसके विकास-पथ को स्पष्ट करने के लिए मुझे राजनीति मे सम्मिलित होने को वाध्य किया।"

वावूजी लेखक के रूप मे

वावूजी ने अपने छात्र जीवन से ही भट्टजी द्वारा सपादित 'प्रदीप' पत्रिका के लिए समय-समय पर लेख लिखे। जव वह वी० ए० के विद्यार्थी थे उस समय उन्होंने हिंदी व्याकरण पर एक पुस्तक लिखी थी जो सरल और सुवोध होने से वडी प्रचलित हुई थी। उसका प्रकाशन रायसाहव रामदयाल ने किया था।

वाद मे जव महामना मालवीयजी ने हिंदी साप्ताहिक 'अभ्युदय' की स्थापना की तव वावूजी उसमे भी लेख लिखने लगे। इनकी योग्यता और लेखन शैली से मालवीयजी इतने प्रभावित थे कि वह जव किसी सामाजिक या राजनीतिक कार्य की व्यस्तता के कारण स्वय सपादकीय नही लिख पाते थे तो इसके लिखने का काम वावूजी पर छोड देते थे। मालवीयजी के स्थायी रूप से काशी चले जाने के वाद कुछ समय तक वावूजी ने ही अभ्युदय के सपादन का कार्य किया। जव वे अपनी वकालत तथा अन्य सामाजिक कार्यों मे अधिक व्यस्त हो गए तव अभ्युदय के सपादन का भार प० कृष्णकात मालवीय के ऊपर डाला गया।

'प्रदीप' और 'अभ्युदय' मे वावूजी के जितने लेख छपे हैं उनमे उनका लघु नाम A S छपा है। हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि राधास्वामी सत्सग मे उनका नाम अगमसरन रखा गया था और उसी का यह अग्रेजी लघुरूप था। वावूजी के कुछ लेख 'मर्यादा' नामक पत्रिका मे भी छपे और 'प्रकाश' नाम की पत्रिका मे भी। वावूजी के ये लेख तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक समस्याओ पर होते थे, और देश प्रेम की भावना उत्पन्न करने के हेतु होते थे। एक छोटी पुस्तक 'एक राजपूत की कथा' के नाम से उनकी छपी थी जिसमे महाराणा प्रताप के जीवन की झाकी थी। कुछ लेखो मे सामाजिक वुराइयो पर चुटीले व्यग्य भी होते थे।

प्रदीप और अभ्युदय के पुराने अको मे छपे उनके कुछ लेख है—'कवि की प्रतिभा', 'करतूती कहि देत आप कहिए नही साई', 'वहस करने के जुदा-जुदा ढग', 'दशहरे की भेंट', 'देश की अवनति', 'भट्ट मोक्षमूलर', 'काहिलो की जिन्दगी और उनकी दिनचर्या', 'आध्यात्मिक जीवन', 'प्रेरित पत्र', 'पढने वालो के समझ की परख'।

मर्यादा मे छपा 'भीष्म पितामह'* लेख उनके धर्म और कर्त्तव्य सवधी विचारो को स्पष्ट करता है। भीष्म पितामह का चरित्र उनका आदर्श था और इसकी झलक इस लेख से स्पष्ट मिलती है। सन् १९१९ मे मर्यादा मे उनका 'भाषा का सवाल' लेख छपा था जो यह सिद्ध करता है कि उस समय भी उनके राष्ट्रभाषा सवधी विचार कितने स्पष्ट और दृढ थे। उन्होने अपने अवकाश के अवसरो पर कुछ कविताए भी लिखी हैं।

वावूजी की रुचि साहित्य मे आरभ से ही रही थी और अग्रेजी तथा हिंदी दोनो के साहित्य का उन्होने गहन अध्ययन किया था। वावूजी मे साहित्य रचना की भी अच्छी प्रतिभा थी किंतु सामाजिक, राजनीतिक तथा हिंदी के प्रचार के कार्यों मे अपना पूरा समय देने के कारण वह साहित्य सृजन के कार्य मे अपना अधिक समय नही दे सके। किंतु उन्होने समय-समय पर जो कुछ भी लिखा है

---

*, मर्यादा मार्च १९११, भाग १, सख्या ५, पृ० १८० से १८४।

उससे उनकी साहित्यिक प्रतिमा और उनके उच्च विचार प्रकट होते है। उनकी कुछ कविताओ मे उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति की झलक भी है। उनकी एक ऐसी कविता, जो उन्होने १९२४ मे जमुनापार हिंदी विद्यापीठ मे बैठकर लिखी थी, नीचे दी जा रही है—

कुटीर का पुष्प

भाग्यवान हू इस ही मे
यह विजन कुटीर करू सुरभित।
नहीं तनिक भी इच्छा मुझको
मधुकर मडित आरामो की।
दुर्वल अग, स्वल्प सौरभ
मम कामस्थल यह कोना है।
इसे सजाऊ, इसे रिझाऊ
केवल यही कामना है।
यही लालसा हिय मे इसका
एक दिन विघ गलहार वनू।
अपना सव सौरभ समाप्त कर
रजकण मे वस वास करू।

उन्होंने सन् १९०५ मे वायसराय की कौंसिल पर आल्हा ऊदल की शैली पर 'वन्दर-सभा' नाम से एक छोटी हास्यरस की रचना की थी जो 'प्रदीप' के अगस्त के अक मे छपी थी। इसका उस समय अच्छा प्रचार हुआ था। यह परिशिष्ट १२ मे दी जा रही है। इनकी 'प्रदीप' में छपी एक अन्य कविता "स्वतत्रता" भी वडी लोकप्रिय हुई थी।

प० वालकृष्ण भट्ट के शिष्य होने के नाते वावूजी ने आरभ मे उन्ही की शैली का अनुकरण किया। भट्टजी अपने लेखो मे वोलचाल की भाषा का प्रयोग अधिक करते थे जिससे सामान्य जनता उनके लेखो को समझ सके। वावूजी भी यथासभव सरल भाषा का ही प्रयोग करना अच्छा समझते थे। उनकी दृष्टि मे ढूढ़-ढूढकर अनावश्यक रूप से सस्कृत शब्दो को ठूस कर भाषा को क्लिष्ट वनाना भाषा के स्वाभाविक रूप को विगाडना था। ऐसी भाषा कृत्रिम होती है। उनकी दृष्टि मे भाषा जितना जनता के निकट होती है उसमे उतना ही अधिक स्वाभाविक प्रवाह और वल होता है। इसीलिए उन्होंने जो कुछ भी लिखा उसकी भाषा और शैली सरल तथा स्वाभाविक रही।

□

क्या वे साम्प्रदायिक थे ?

अमेरिका के एक प्रसिद्ध विचारक इमर्सन ने कहा है, "महान व्यक्ति होने का अर्थ है कि उसके सबध मे भ्रातिया रहे (To be Great is to be misunderstood)"। बाबूजी के सबध मे यह उक्ति अक्षरश ठीक उतरती है।कुछ मुसलमान भाइयो ने उनके विरुद्ध यह प्रचार किया कि उनमे साम्प्रदायिकता है और वह मुसलमानो के शत्रु हैं। उनके सम्बन्ध मे अनेक मुसलमानो ने और विशेपकर मुस्लिम लीग के अनुयायियो ने अनपढ भोले-भाले मुसलमानों मे उनके प्रति इस प्रकार की भ्रातिया जान-बूझ कर अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए फैलाईं। वास्तविकता यह थी कि ऐसे मुस्लिम लीगी मुसलमान स्वय राष्ट्र के शत्रु थे और वे अग्रेज़ो की भेदनीति का लाभ उठाकर बाबूजी जैसे राष्ट्र प्रेमी हिंदुओ के प्रति कटुता की भावना फैलाते थे। आरभ से लेकर अत तक उनके जीवन को जिसने निकट से देखा और समझा है वह बिना किसी हिचक के कह सकता है कि उनमे किसी प्रकार की धर्म संबधी सकुचित भावना नही थी। प्रत्येक मानव के प्रति चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला हो उनके हृदय मे प्रेम और सद्भावना थी। यद्यपि वह भारतीय सस्कृति के उपासक थे और एक हिंदू परिवार मे जन्म लेने से हिंदू कहलाये, पर वह धर्म की रुढियो से बहुत ऊपर थे। भारतीय सस्कृति से उनका तात्पर्य किसी विशेप धर्म पर आधारित सस्कृति से कभी नही था। इससे उनका तात्पर्य उस सस्कृति से रहा है जो इस देश की भूमि मे उपजी और विकसित हुई है। हमारी यह सस्कृति युगो से यहां धीरे धीरे पल्लवित और पुष्पित हुई। दूसरे देशो से यहा आकर बसी विभिन्न जातियो के लोगो का भी इस सस्कृति के विकास मे योगदान रहा है। वह ऐसी ही भारतीय सस्कृति के समर्थक थे। मुस्लिम लीग के अनुयायी मुसलमानो का दृष्टिकोण ठीक इसके विपरीत पश्चिमीय कुछ मुस्लिम देशो की सस्कृति का समर्थक रहा है, और इसी कारण बाबूजी की बातें इन लोगो को कभी अच्छी

नही लगी। वावूजी ने अपने भाषणो मे अनेक वार इसकी चर्चा भी की कि "मुसलमान भाई जो इस देश मे रहते हैं वे भारतीय हैं, उन्हें इस देश से और इस देश मे विकसित हुई सस्कृति से लगाव होना चाहिए और इस्लामी देशो की सस्कृति यहा लाने की चेष्टा नही करनी चाहिए।" उन्होने सदा सस्कृति और धर्म मे अतर माना। एक देश की संस्कृति उस देश मे रहने वाले सभी लोगो की सस्कृति होती है किंतु उनके धार्मिक विचार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। अत मुसलमान भाई अपने धर्म मे आस्था रखें इसमे उन्हें कोई अपत्ति नही थी, किंतु वे अपने को सच्चा भारतीय मानें यही वह चाहते थे। लोकसभा मे २१ अप्रैल सन् १९५४ को शिक्षा मत्रालय के सवंध मे दिये गए उनके भाषण का कुछ अश नीचे दिया जा रहा है जिससे उनका दृष्टिकोण स्पष्ट होता है —

"...चूकि कल्चर का वडा भारी सवाल है इसलिए मैं आपकी इजाज़त से कुछ लफ्ज उसके वावत कहना चाहता हू। मैंने उम्मीद की थी कि उसके सवध मे कोई फर्क नही होगा लेकिन मुझे थोडा अफसोस हुआ जव मैंने 'इस्लामी तमद्दुन', और 'हिंदू तमद्दुन' की वात सुनी। मैं तो समझता हू कि इस्लामी तमद्दुन और हिंदू तमद्दुन कोई चीज नही है। मुझे यह सुनकर अफसोस हुआ जव मौलाना हिफ्जुर्रहमान यहा पर खडे हुए और उन्होने फरमाया कि यहा पर इस्लामी तमद्दुन भी रहेगा और हिंदू तमद्दुन भी रहेगा और उसका एक मजमुआ वनेगा। मैं उनसे पूछना चाहता हू कि अगर मजमुआ वनेगा तो दोनो कहा रहेंगे ? और क्या मजहव की शह पर तमद्दुन वनायेंगे ? 'शिया तमद्दुन', 'सुन्नी तमद्दुन' 'वैष्णव तमद्दुन', 'शैव तमद्दुन', 'जैन तमद्दुन', आखिर कितने तमद्दुन आप रखेंगे ? तमद्दुन का धर्म से सवध नही है। मैं कहना चाहता हू कि धर्म अलग है। तमद्दुन का अर्थ जमीन से होता है। हम ईरानी तमद्दुन को समझ सकते हैं, अरवी तमद्दुन समझ सकते हैं। उसी तरह मैं भारतीय सस्कृति और भारतीय तमद्दुन समझता हू और उसी की चर्चा करता हू। लेकिन कोई अगर इस्लामी तमद्दुन और हिंदू तमद्दुन की वात करता है तो वह गलत है। उसी गलती की वजह से हम देखते हैं कि यहा सव टटा हुआ। यह पाकिस्तान ही इस विना पर वना। मैं वहुत जगह पर जिन्ना साहव और उनके अनुयायिओ की स्पीचें दिखला सकता हू जिनमे उन्होंने यह कहा है कि मुस्लिम तमद्दुन अलग है और हिंदू तमद्दुन अलग है और इसलिए हम दोनो एक साथ नही रह सकते, हमारा मुल्क अलग होना चाहिए। यही तमद्दुन मुख्य जड थी जिसके कारण हमारे देश का वटवारा हुआ और पाकिस्तान की स्थापना हुई, और उसी के साथ उन्होंने उर्दू भाषा के प्रश्न को भी लपेट लिया। मेरा यह निवेदन है कि धर्मों के ऊपर तमद्दुन नही होता। हमारी सस्कृति हमारी भूमि से निकलेगी, उसमे मजहव का भेद नही होगा। चीन मे भी मुसलमान हैं तो क्या उनका रहन-सहन, पहराव और लिखना-पढना अन्य चीनियो

से भिन्न है ? वे बिल्कुल दूसरे चीनियो की तरह अपना जीवन व्यतीत करते है ? हमारे देश मे जितने मुसलमान भाई बसते है वे सब हमारे भाई है, छाती से मिल कर इस देश मे रहे। अगर वह अलग मजहब और तमद्दुन की बिना पर रहना चाहे तो झगडा होगा और लडाई होगी और उसका नतीजा क्या होगा ?···इसलिए हमे एक ही तमद्दुन और एक ही भारतीय सस्कृति पर कायम रहना है।' 'हमारी सस्कृति एक है और वह भारतीय सस्कृति है चाहे उसमे मुसलमान हो चाहे हिंदू हो।"···

बाबूजी की शिक्षा का श्रीगणेश एक मौलवी शिक्षक द्वारा हुआ था। अपने इस प्रथम शिक्षक के प्रति उनके हृदय मे अतिम समय तक बडी श्रद्धा थी। प्राय: वह अपने मित्रो के बीच मे बैठकर बतलाते थे कि कितने प्रेम से वह मौलवी साहब उनका हाथ पकड कर उन्हे हिंदी के अक्षर लिखना सिखलाते थे। बाबूजी के मुसलमान मित्रो की एक बडी सख्या थी और उनके ये सभी मित्र जानते थे कि बाबूजी उनके हित के लिए सब प्रकार का त्याग कर सकते थे। इलाहाबाद के उनके मुसलमान घनिष्ठ मित्रो मे कुछ के नाम जो हमे आज भी स्मरण हैं निम्नलिखित है—सर्वश्री हैदर मेहदी, कमालउद्दीन जाफरी, ज़हूर अहमद, मजरअली सोख्ता, तस्ददुक अहमद शेरवानी तथा हम्मात फारूकी। काकोरी काड के शहीद अशफाक उल्ला खा का स्मारक बनाने के लिए बाबूजी ने ही प्रयत्न आरभ किया था। एक अन्य स्वतन्त्रता सेनानी अली अहमद सिद्दीकी को पेंशन देने की सस्तुति प्रदेश के मुख्य मत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त से उन्होने ही की थी और यह पेंशन सिद्दीकीजी को मिली भी थी। इलाहाबाद की नगरपालिका के अध्यक्ष-पद के लिए अपने स्थान पर उन्होंने श्री कमालउद्दीन जाफरी का नाम रखा था। बाबूजी का अपने इन सब मित्रो पर बडा विश्वास था और वे सब भी उसी प्रकार बाबूजी को अपने भाई की तरह मानते थे। बाबूजी के अतिम दिनो मे उनकी सेवा एक मुसलमान युवक शफीउल्ला ने उतने ही प्रेम और भक्ति से की थी जितनी कोई पुत्र अपने पिता की कर सकता है। बाबूजी का भी इस युवक पर पुत्रवत् स्नेह था। इन सब बातो से स्पष्ट है कि बाबूजी के हृदय मे मुसलमानो के प्रति धर्म के कारण किसी प्रकार की विद्वेष की भावना नही थी।

सन् १९४६ के अतिम और सन् १९४७ के आरभिक दिनो मे मुस्लिम लीग द्वारा प्रचारित साम्प्रदायिक भावना के कारण देश के विभिन्न स्थानो मे जो मारकाट की घटनाए हुई थी उनका तीव्र शब्दो मे विरोध करने और मुस्लिम लीग को उन सब का जिम्मेदार ठहराने के कारण बाबूजी के प्रति मुसलमानो को आक्रोश था। बहुत से मुस्लिम लीगी नेताओ के उस समय जो भाषण होते थे वे मुसलमानो मे साम्प्रदायिक भावना उभाडते थे और उन्हे हिंदुओ के विरुद्ध उत्तेजित करते थे। इनके एक बडे नेता नवाबजादा लियाकत अली खा के अग्रेजी भाषण का एक अश इस प्रकार था—"Even if human blood is required for

the construction of the edifice of Pakistan the muslims will provide it"*

साम्प्रदायिकता का जहर फैलानेवाले ऐसे ही अनेक उत्तेजनात्मक भाषण लीगी नेताओं के हो रहे थे और बाबूजी इन सबका तीव्र विरोध करते थे।

साम्प्रदायिकता की भावना मे पले मुसलमान भाई बाबूजी को उनकी स्पष्ट-वादिता के कारण आशका की दृष्टि से देखते थे। मई सन् १९४७ मे झांसी के तालबेहट स्थान पर उन्होंने अपने भाषण मे जिन स्पष्ट शब्दों मे मुसलमानो के कारनामो का विवरण देते हुए देशवासियों को चेतावनी दी थी कि वे अपनी और देश की रक्षा के लिए सावधान और सतर्क रहें उससे मुसलमान, विशेषकर सांप्रदायिक दृष्टिकोण वाले मुसलमान, बाबूजी को अपना शत्रु समझने लगे, और उन्होंने उनके विरुद्ध साम्प्रदायिक होने का जोरो से प्रचार किया। बाबूजी के उस भाषण का कुछ अश नीचे दिया जा रहा है—

"हजारो मुसलमान हिंदुओं के विरुद्ध युद्ध करने के लिए जोरो से तैयारी कर रहे हैं। मुझे यह विश्वसनीय अधिकारी से मालूम हुआ है कि सयुक्त प्रात मे लीगी मुसलमान युद्ध करने के निमित्त अत्यधिक संख्या मे शस्त्र एकत्र कर रहे हैं और इस प्रात मे गुप्त रूप से पठानो के दल के दल ठेकेदार और मजदूरो के रूप मे आ रहे हैं। अतएव मैंने सयुक्त प्रात की सरकार को सलाह दी है कि वह लोगो को रक्षा के निमित्त उदारतापूर्वक शस्त्र दे।"

अन्य कई स्थानो पर भी उन्ही दिनो बाबूजी के इसी प्रकार के भाषण हुए। प्रत्येक स्थान पर उन्होंने लीगी मुसलमानो की इस राष्ट्रविरोधी कार्यवाही की खुले रूप मे भर्त्सना की, और सरकार तथा जनता को सावधान रहने की चेतावनी दी। बाबूजी ने जो कुछ कहा था वह एक सत्य था, फिर भी इस चेतावनी से मुसलमान बहुत क्षुब्ध हो गये। बाबूजी उस समय विधान सभा के अध्यक्ष थे। विधान सभा की एक बैठक में बाबूजी द्वारा जनता मे दिए गए इन भाषणो पर लीगी सदस्यो ने आपत्ति उठाई। उनके प्रश्नो का उत्तर देते हुए तत्कालीन गृहमंत्री, श्री रफी अहमद किदवई, ने कहा था—

" सरकार को ऐसी शिकायतें मिली हैं जिनमे कहा गया हैं कि ठेकेदार एव मजदूरो के वेष मे पठान इस प्रात में आ रहे हैं। मैंने बाबू पुरुषोत्तमदास टडनजी से विस्तार के साथ उनकी स्पीच के बारे मे बातें की हैं जिससे मुझे ज्ञात हुआ है कि टडनजी के भाषणो मे साम्प्रदायिकता का सकेत भी नही मिलता। टडनजी की स्पीचो का उद्देश्य केवल इतना ही है कि हिंदू और मुसलमान दोनो अपनी रक्षा गुडो से करने के लिए दत्तचित्त हो जाएं।"

---

*यदि पाकिस्तान की इमारत खड़ी करने के लिए मानव रक्त की भी आवश्यकता होगी तो मुसलमान उसे देंगे।

श्री किदवई ने अपने उत्तर मे बाबूजी के ऐसे ही एक भाषण का निम्नलिखित अश भी पढ़कर विधान सभा मे सुनाया—

"पजाब और बगाल मे मुसलमान गुडो ने जिस प्रकार हिंदू घरो को नष्ट किया है, नादान बच्चो और स्त्रियो की जो दुर्दशा की है वह घृणित कार्य हम नही कर सकते। हमे मुसलमान स्त्रियो और बच्चो तथा उनके धार्मिक स्थानो की रक्षा और इज्जत करनी है। सिर्फ कायर आदमी ही उन्हे हानि पहुचाने की कोशिश करेगे।"

किदवई साहब ने यह भी सूचना दी कि प्रात के पश्चिमी भागो मे बहुत से मुसलमान हथियार इकट्ठा करने के अपराध मे पकडे भी गए है।

१५ अगस्त सन् १९४७ के तुरत बाद ही भारत के विभिन्न भागो मे, विशेष कर दिल्ली और पजाब के नगरो मे, एक भयकर कत्लेआम का दृश्य दिखलाई पड़ने लगा। लीगी मुसलमानो द्वारा शस्त्र सग्रह की बात अक्षरश. सत्य निकली। दिल्ली मे मुसलमानो ने पुलिस और सेना से मोर्चा लिया था। कई घटे तक दोनो ओर से युद्ध होता रहा। सेना की सहायता से यदि शासन इन मुसलमान आततायियो को न दबा पाता तो वहां के हिंदुओ की ये आततायी क्या दुर्दशा करते, हम कह नही सकते। सभवत पाकिस्तान मे जिस प्रकार हिंदुओ के घरों और परिवारो को नष्ट किया गया था उसी प्रकार का दृश्य दिल्ली और पजाब के नगरो मे भी होता। हमे अपने एक मित्र श्री रतनलाल कौशिक से, जो उन दिनो दिल्ली मे पुलिस विभाग मे एक वरिष्ठ अधिकारी थे और आज भी हमारे बीच मे है, इस सबध का कुछ विवरण मिला है जिसमे उन्होने बतलाया है कि मुसलमानो ने कई घटे तक डटकर पुलिस और सेना के सिपाहियों से युद्ध किया था। इतने लोग मरे थे कि जमीन लाशो से बिछ गई थी और उन्हें स्वयं भी लाशो के ऊपर से आगे बढना पडा था। इसके बाद देश के विभिन्न भागो मे जोरों की तलाशी हुई। मस्जिदो तथा मुसलमानो के घरों और उनके खडहरो से बडी संख्या मे अस्त्र-शस्त्र प्राप्त हुए। तब देश की जनता और नेताओ ने देखा कि बाबूजी की बात कितनी सत्य निकली। लीगी मुसलमान धोखा दे रहे थे। यदि बाबूजी की चेतावनी पर आरभ से ही ध्यान दिया गया होता तो शायद देश उस मारकाट से बच जाता।

बाबूजी पर साप्रदायिकता का आरोप लगाए जाने के सबध मे काका कालेलकर ने बाबूजी के निधन के बाद १६ सितबर सन् १९६२ के साप्ताहिक हिंदुस्तान मे जो लेख लिखा था उसका कुछ अश इस प्रकार है—

"··टडनजी से मतभेद के कारण गाधीजी सम्मेलन से पृथक् हुए। इससे पहले मैं भी पृथक् हुआ था। तब भी मेरा टडनजी के साथ सबध पूरा-पूरा आत्मीयता का ही रहा और उन्होने कई बार मुझसे हिंदी प्रचार का काम फिर से सभालने के लिए कहा। मैं उनसे कहता था, 'चद मुसलमान आपको सम्प्रदायवादी

समझते हैं। यह उनकी गलती है। आपकी भूमिका और हिंदू सभा की भूमिका एक नही है, इतना समझने की सूक्ष्मता उनमे नही है। आपकी राष्ट्रीयता काग्रेस की राष्ट्रीयता है। फर्क इतना है कि यद्यपि आप हिंदू धर्म के सप्रदायवादी नहीं हैं, हिंदू सस्कृति के भक्त होकर आप सास्कृतिक स्वराज्य मे हिंदू सस्कृति की प्रधानता चाहते हैं। वह कहते थे कि मुसलमान अपने धर्म का पालन जरूर करें किंतु सबकी सम्मिलित भारतीय सस्कृति को पूरी निष्ठा से स्वीकार करें। मैं कहता था कि हम लोग भी यही चाहते हैं लेकिन उसका आग्रह रखने से बात सिद्ध नही होगी। हमारे निराग्रही बनने से मुसलमान नजदीक आएगे और फिर भारत की सगम सस्कृति आप ही आप अपना काम करेगी।"

जब काग्रेस का अधिवेशन सितबर सन् १९५० मे नासिक मे हुआ जिसमे बाबूजी अध्यक्ष थे तब दैनिक समाचार-पत्र 'अमृत पत्रिका' ने १६ सितबर सन् १९५० को एक काग्रेस विशेपाक निकाला था। उसके अग्रलेख मे बाबूजी के साप्रदायिक दृष्टिकोण की अच्छी विवेचना की गई थी। उस अग्रलेख का एक भाग नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

"यदि किसी धर्म या सस्कृति मे कोई व्यक्ति विशेप आस्था रखता है तो उसके विरोधी प्राय यह समझने की भूल कर बैठते हैं कि वह आदमी अन्य धर्मों तथा सस्कृतियो का शत्रु है। यही बात राजर्पि टडनजी के साथ हुई। उनके अनन्य हिंदी प्रेम, भारतीय सस्कृति एव परपराओ की एकनिष्ठ आस्था और साधुओ के से वेप-विन्यास को देखकर उनके विरोधियो ने जानबूझ कर या अनजाने ही यह प्रचार करने की भूल कर दी कि टडनजी मुसलमान समाज के शत्रु है। वस्तुस्थिति से ऐसा जान पड़ता है कि इस बात का प्रकाशन वास्तविक तथ्य जानते हुए भी उनके विरोधियो ने सदैव उन्हें सार्वजनिक जीवन मे ऊपर न उठने देने के लिए किया। लेकिन इस प्रकार सत्य पर तो पर्दा डाला नही जा सकता और इसीलिए लोग धीरे-धीरे इस बात को जानते जा रहे हैं कि राजर्षि के महान् हृदय मे किसी धर्म या सप्रदाय विशेप के प्रति विद्वेष भाव नही है। वह हिंदू सस्कृति और भारतीयता के परम पुजारी अवश्य है, किंतु उनके अपने हृदय और आत्मा की विशालता उन्हे दूसरे धर्मों से द्वेप भाव रखने के लिए कभी प्रेरित नही करती। हा, अपने सिद्धातो और मान्यताओ के प्रति हद दर्जे की ईमानदारी उनका अपना गुण है। टडन जी पर मुसलमानो के शत्रु होने का आक्षेप करनेवाले अपने मत के समर्थन मे उनके हिंदी प्रेम, स्वर्गीय महामना मालवीयजी के प्रति भक्ति, उनका ऋषियो का सा वेप-विन्यास और जीवन के प्रति उनके विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण के उदाहरण देते हैं। इस सिलसिले मे वे उनके पिछले दिनो दिए गए झासी, बरेली आदि के भापणो का प्रकरण भी पेश करते है। यो ऊपर से देखने से ऐसा जान पडता है कि उन पर लगाए गए आक्षेप सभवत ठीक है,

लेकिन गभीरतापूर्वक राजर्षि के सिद्धातवादी व्यक्तित्व के अध्ययन के बाद स्वत यह प्रमाणित हो जाता है कि वास्तविकता बिल्कुल इसके विपरीत है। झासी और बरेली मे उन्होने जो भाषण दिए थे उनमे उन्होंने लीगी नेताओ के राष्ट्र विरोधी कार्यो की तीव्र निंदा की थी और अत मे यह चेतावनी दी थी कि उत्तर प्रदेश को पजाब या बगाल बनाने का कुचक्र रचनेवाले सकीर्ण हृदय मुसलिम नेताओ के कारनामो के प्रति प्रादेशिक सरकार पूर्णरूपेण जागरूक है और वह उनके षड्यत्रो का दमन करने के लिए दृढ प्रतिज्ञ है।

यद्यपि यह बात टंडनजी ने लीगी नेताओ के कुचक्रो की समाप्ति के लिए कही थी, उससे साधारण भारतीय मुसलमानो का कोई संबध नही था, लेकिन उनके विरोधियो ने इस स्वर्ण अवसर को हाथ से न जाने दिया और जनता मे इस बात का प्रचार किया कि वह मुसलमानो के शत्रु है। साथ ही उदाहरण के रूप मे उनके हिंदी के प्रश्न पर गाधीजी से मतभेदों के उदाहरण भी दिए गए। भोली जनता को विश्वास हो गया, लेकिन कितने दिन के लिए? अत मे प्रचारात्मक कार्य-वाहियो के मिथ्या आवरण को फाडकर वास्तविकता बाहर झाक ही उठी। लोगो के विश्वास के लडखडाते कदम फिर जम गए और मुसलमान भी समझने लगे कि टंडनजी उनके शत्रु नही है। वह हिंदू होते हुए भी महात्मा के समान विशुद्ध भारतीय मात्र है। अनेक मुसलमान उनके बहुत निकट के और अतरग मित्र हैं। इन मित्रो पर उन्हे अत्यधिक विश्वास है और ये मुसलमान दोस्त भी उन्हे अपना परम हितेच्छु मानते हैं।

राजनीतिक विचारक के रूप मे टंडन जी ने देश के विभाजन का सदैव घोर विरोध किया था। सन् १९१६ मे भी पृथक् मतदान के निर्णय के विरुद्ध उन्होंने आवाज़ उठाई थी, लेकिन काग्रेस के उस समय के कर्णधारो ने उनकी पुकार नही सुनी। विभाजन की समर्थक मुसलिम लीग को उन्होने सदैव देश का शत्रु माना और इसीलिए जब तब वह लीगियो के विरुद्ध उबल भी पडे जिसका लोगो ने यह अर्थ लगाया कि वे आम मुसलमानो के खिलाफ हैं। तथ्य यह है कि राजर्षि टंडन मानवता के सच्चे और ईमानदार प्रतिनिधि हैं। अपने सिद्धातो की दृढता के कारण वह किसी भी ऐसी बात को सहन करने के लिए तैयार नही जो मनुष्य मात्र के कल्याण तथा राष्ट्र निर्माण के विरुद्ध हो। इसानियत ही उनका धर्म है और विशुद्ध राष्ट्रप्रेम उनका एकमात्र संप्रदाय।"

ऊपर दिए गए उद्धरणो तथा दी गई विवेचना से स्पष्ट है कि बाबूजी साम्प्र-दायिकता से बहुत ऊपर थे। उनके सबध मे इस प्रकार की भ्रातिया लीगी मुसल-मानो और राजनीतिक नेताओ ने जान-बूझकर फैलायी थी। उनके हृदय मे न केवल प्रत्येक मानव, वरन् जीवमात्र के लिए सदा प्रेम और कल्याण की भावना ही थी।

□

भारतीय संस्कृति में आस्था

बाबूजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक वरिष्ठ नेता* ने कहा है, "टडनजी हमारे देश की अक्षय निधि थे। उनकी वाणी और लेखनी मे तथा उनके हृदय और कृतित्व मे भारत की आत्मा का स्पदन होता था।"

वह भारतीय सस्कृति के भक्त और अनन्य पुजारी थे पर अध भक्त नही थे। भारतीय सस्कृति से उनका तात्पर्य किसी विशेष धर्म या सप्रदाय पर आधारित सस्कृति से नही था। युगो से इस देश मे जिन-जिन जातियो ने अपना निवास-स्थान बनाया उन सब के योगदान से जो सस्कृति यहा की मिट्टी से उपजी और यहा की जलवायु मे पनपी और विकसित हुई उसी को उन्होने 'भारतीय सस्कृति' नाम दिया था। उन्होंने कई अवसरो पर कहा था, 'राष्ट्र के जीवन के लिए राष्ट्रीय सस्कृति महत्त्वपूर्ण है। सस्कृति का अर्थ धर्म नही है। मैं एक धार्मिक व्यक्ति हू किंतु प्रचलित अर्थ मे नही। धर्म एक आध्यात्मिक आवश्यकता है पर वह राजनीति से परे की चीज नही है।" वह यह भी कहते थे कि संस्कृति समय के साथ परिवर्तनशील होती है किंतु इसका अर्थ यह नही है कि हम अपनी सब बातो को भुलाकर आंख बद कर दूसरे देश की सस्कृति को अपना लें, क्योकि उस देश के निवासी शक्तिशाली हैं और उनका हम पर शासन है। अग्रेजो के शासन के कारण पश्चिमीय देशो की सस्कृति और उसकी चमक-दमक के प्रति नई पीढी की बढती रुचि को वह केवल हीन भावना और मानसिक दासता की निशानी समझते थे। साथ ही वह यह भी कहते थे कि यदि उनकी सस्कृति मे कोई अच्छी बात है तो हमे उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। किंतु उनके शासक होने के कारण ही उनकी सब बातो को अच्छा मानना और अपनी सस्कृति को हीन समझना अनुचित है, और केवल मात्र अपनी हीन भावना का सकेत करता है। सच बात तो यह है कि नई पीढी ने अपनी सस्कृति को ठीक से समझने की चेष्टा नही की और

* स्वर्गीय सेठ गोविंददास

वह अग्रेजी सस्कृति का अधानुकरण कर रही है। इस स्थिति को देखकर उन्हे वडा क्लेश होता था। समाज की इस शोचनीय स्थिति की आलोचना करते समय वह प्राय कहा करते थे—

महफिल उनकी, साकी उनका।
आखें अपनी, वाकी उनका॥

भारतीय सस्कृति सम्मेलन की स्थापना

देश के विभाजन की माग मुसलामानो ने इस आधार पर रखी थी कि उनकी सस्कृति भारत की परपरागत सस्कृति से भिन्न है। वावूजी के विरोध करने पर भी देश का विभाजन हुआ। इससे उनका यह विश्वास दृढ हो गया कि अपने शासन के सचालन और समाज के निर्माण के लिए भारतीय सस्कृति को आधार वनाना आवश्यक है जिससें देश के पुन विभाजन की समस्या न उठे। अत उन्होने कुछ विद्वान् पडितो के सहयोग से नवयुवको मे अपनी सस्कृति के प्रति आस्था जाग्रत करने के लिए 'भारतीय सस्कृति सम्मेलन' नाम से एक संस्था गठित की जिसका प्रथम अधिवेशन सन् १९४८ के फरवरी मास मे प्रयाग मे अर्धकुम्भ के अवसर पर हुआ।

इस सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन सन् १९५२ मे दिल्ली मे हुआ जिसके अध्यक्ष डॉ० भगवानदास थे। उनकी अध्यक्षता मे जो मुख्य प्रस्ताव इस अधिवेशन मे पारित हुआ उसका कुछ अश इस प्रकार है—

"भारतीय स्वतत्रता प्राप्ति के अनतर अव उचित है कि शिक्षा पद्धति को अपने देश की परपरा से जोड़कर भारतवर्ष की सस्कृति के आदर्शों के आधार पर उसका सगठन शासन करे। हमारे देश की शिक्षा प्रणाली मे इस बात की आवश्यकता है कि छात्रो को अपने देश के प्राचीन इतिहास और उसकी महत्ता का ज्ञान हो और साथ ही ब्रह्मचर्य, कष्ट सहिष्णुता, सत्यपालन, सयम, सादगी, सव पर भ्रातृभाव और स्नेह तथा कर्त्तव्य बुद्धि से प्रेरित अनुशासन उनके जीवन मे हो।"

भारतीय सस्कृति सम्मेलन का छठा अधिवेशन पुनः प्रयाग मे सन् १९५४ मे कुम्भ के अवसर पर हुआ। इसका उद्घाटन राष्ट्रपति राजेंद्र वावू ने किया था। इस अधिवेशन मे देश के लगभग सभी सप्रदायो के ऊचे विद्वानो ने भाग लिया और भारतीय सस्कृति की मूलभूत वातो को अपने वालको और नवयुवको तक पहुचाने तथा उनमे इनके प्रति नवचेतना जागृत करने की योजना वनाई। वावूजी के जीवनकाल मे इस सम्मेलन के कई अधिवेशन विभिन्न स्थानो मे हुए और इस दिशा मे अच्छा कार्य हुआ।

वावूजी के विचार मे भारतीय सस्कृति मे आदि से ही वुद्धितत्त्व पर वल

दिया गया है। उनका कहना था कि हमारे शास्त्रो मे तथा प्राचीन मर्यादाओ के वर्णन मे बुद्धि और तज्जनित ज्ञान का ऊचा स्थान है। ज्ञान और उपासना हमारी सस्कृति के मुख्य अंग हैं।

भारतीय सस्कृति मे आस्था रखने के कारण वह धर्मगत सस्कारों के पक्षपाती थे और अपने यहा यज्ञोपवीत तथा विवाह आदि संस्कारो का विधिवत् कराना ही उन्हे पसद था। किंतु पडितो के आडबरो और ढकोसलो से उन्हे घृणा थी। हिंदू घरो मे सभी पूजा-पाठ और विवाह सस्कार पडितगण सस्कृत भापा के माध्यम से कराते हैं। ऐसे अवसर पर संस्कृत मे बोले गए मत्रो का अर्थ सबंधित व्यक्ति अथवा वर और कन्या कुछ भी नही समझ पाते, इसी से उनकी समझ मे इनका महत्त्व भी नही आता। अत बाबूजी ने यह परपरा आरभ की कि विवाह सस्कार हिंदी भाषा द्वारा सपन्न कराया जाय। उन्होने जब अपनी छोटी पुत्री का विवाह सन् १९३१ में किया तब पूरी वैदिक विवाह पद्धति का हिंदी मे अनुवाद अपने निरीक्षण मे करवाया। बाद मे इस विवाह पद्धति को उन्होने दूसरो के लाभ के लिए छपवा भी दिया। अपने परिवार मे सब विवाह उन्होने हिंदी मे इस विवाह पद्धति के अनुसार करवाए। सब कार्य विधिवत् कराने के लिए वह स्वय ही आचार्य का पद ग्रहण करते थे। कुछ मित्रो के बच्चो के विवाह भी उन्होने स्वय इस विधि से करवाए थे। वह कहते थे कि पडितो द्वारा सस्कृत के माध्यम से कराया गया विवाह-सस्कार अर्थहीन है और केवल एक नाटक मात्र है। वर-वधू को स्वय अपने से सबंधित मत्रो को समझ कर अपनी भापा मे उच्चारण करना चाहिए। तभी वे विवाह सस्कार से सबधित सभी तथ्यो और प्रतिज्ञाओ आदि का वास्तविक अर्थ और महत्त्व समझ सकेंगे। हिंदी के माध्यम से विवाह संस्कार कराने से केवल वर और कन्या को ही नही सभी उपस्थित लोगो को भी इस सस्कार से सबधित सभी मत्रो और वचनो का महत्त्व समझ मे आ जाता है। बाबू जी द्वारा डाली गई यह परपरा अब तो बहुत से परिवारो मे अपनाई जाने लगी है।

विवाह-सस्कार को बाबूजी अपनी सस्कृति का बहुत महत्त्वपूर्ण सस्कार मानते थे और कहते थे कि विवाहित जीवन मे प्रवेश करते समय वर और कन्या दोनो को इसका महत्त्व अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। हिंदी मे विवाह सस्कार सपन्न कराने के पीछे उनकी यही भावना थी। उनके अनुसार, "विवाह-दो हृदयो का पवित्र बधन है। हमारे देश की प्राचीन प्रणाली मे वह हमारे जीवन का एक मुख्य सस्कार है, सुविधा की दृष्टि से केवल एक सविधा नही है। पातिव्रत हमारी सस्कृति की विशेप कल्पना है। एक पत्नीव्रत का भी प्राचीन समय से महत्त्व रहा है। ये दोनो ही व्रत साथ चलते हुए गार्हस्थ्य जीवन को दृढ, नैतिक और सुखमय बनाते हैं।"

अपनी सस्कृति मे आस्था रखते हुए भी बाबूजी अपने विचारों मे बहुत प्रगतिशील थे। अपने भाषणो मे भी वह प्राय शास्त्रो के इस कथन का उल्लेख किया करते थे कि 'समय भेदेन धर्म भेद' अर्थात् समय के परिवर्तन के साथ धर्म मे अतर हो जाता है। हिंदू समाज मे विधवा विवाह के विरुद्ध एक रूढि परपरा से चली आ रही थी। बाबूजी का दृष्टिकोण था कि यदि कोई कन्या छोटी आयु मे विधवा हो गई है तो उसका पुनर्विवाह धर्मसगत है। उस समय उनके इस विचार को समाज के अधिकाश रूढिवादी लोग ग्राह्य नही समझते थे, किंतु आज इस विचार के समर्थक पर्याप्त सख्या मे मिलेंगे। हमारे कुटुब मे एक युवक की मृत्यु विवाह के थोडे ही समय बाद एक दुर्घटनावश हो गई। उस समय उसकी पत्नी की आयु लगभग १७ वर्ष की थी। बाबूजी ने युवक के पिता (जो सबध मे चाचा लगते थे) तथा कन्या के पिता दोनो को ही बहुत समझाया कि इस कन्या का पुनर्विवाह कर दिया जाय किंतु दोनो ही इसके लिए तैयार नही हुए।

काशी विश्वविद्यालय के छात्रो ने सन् १९५०-५१ मे अपना छात्र-सघ बनाए जाने के अवसर पर जब उनसे सदेश मागा तब उन्होने निम्नलिखित सदेश दिया था—

"मुझे यह बताया गया है कि काशी विश्वविद्यालय के छात्रो का एक सघ बनने वाला है। मेरी उसके लिए स्वभावत शुभकामना है।

अच्छे कामो मे अवश्य ही तप का अश होता है। बिना तप के विद्योपार्जन नही होता। मेरा सुझाव है कि हमारे देश के छात्र-सघ इस बात की ओर ध्यान दें कि छात्रो मे जो आवश्यक तप का अश है वह विद्योपार्जन के साथ जीवन के मौलिक आदर्श को ऊचा करने मे लगे। विद्या जीवन की उपयोगिता के लिए है। जीवन के स्तर को ऊचा करने मे ही उसकी शोभा है। भारतीय सस्कृति के स्थाई आदर्श के अनुरूप हमारे छात्रो का जीवन हो यह मेरे हृदय की पुकार है।"

इससे स्पष्ट है कि बाबूजी अपनी सस्कृति को कितना महत्त्व देते थे। उनका विचार था कि जो देश अपनी सस्कृति से विमुख हो जाता है उसकी मौलिक विकास की शक्ति समाप्त हो जाती है और वह धीरे-धीरे पतन की ओर उन्मुख होने लगता है। उनका यह भी विश्वास था कि अग्रेजी भाषा की प्रधानता और अग्रेजियत के रहते देश की स्वाधीनता पूर्ण नही है। उनकी इच्छा थी कि स्वाधीन देश मे देशी वेष, देशी भाषा और देशी भावना की प्रतिष्ठा हो।

□

रहन-सहन

बावूजी मे अपनी वेष-भूषा की ओर से उदासीन रहने की प्रवृत्ति वचपन से ही थी। जव वह हाईस्कूल के विद्यार्थी थे तब उनकी इस उदासीनता के कारण ही उनके प्रधानाचार्य उन्हे टोका करते थे और उन्होने इनके चरित्र प्रमाणपत्र मे भी इसका उल्लेख किया था। हम पहले विस्तार से इसकी चर्चा कर चुके हैं। वकालत आरभ करने पर भी उन्होने अन्य वकीलो की भाति अग्रेजी पोशाक नही अपनाई, वरन् वद गले का कोट और पतलून और सिर पर पगडी, यह पहनावा अपनाया। यह उनका कचहरी और हाईकोर्ट जाने का परिधान था। अन्य समय मे वह प्राय: अचकन और उसके साथ चूडीदार पैंजामा या धोती पहनते थे। उनके ये सव वस्त्र स्वदेशी कपड़े के वने होते थे। असहयोग आदोलन मे सम्मिलित होने पर सन् १९२१ से तो धोती, कुर्ता और गाधी टोपी ही उनकी पोशाक वन गई थी। वह अपने लिए कम-से-कम वस्त्र रखने और उनका अधिक से अधिक उपयोग करने मे विश्वास रखते थे। साधारणत उनके पास पहनने के तीन जोडी वस्त्र ही रहते थे। उनकी धोती जव फट जाती थी तव उसके अच्छे भागो को जोडकर चादर अथवा लुगी वनाई जाती थी और शेष छोटे टुकडो के रुमाल वनाये जाते थे। उनके कुर्तो मे दो-चार पेवन्द लगा रहना साधारण सी वात थी। जव तक किसी प्रकार सिल कर या जोड लगाकर वे उपयोग मे लाए जा सकते थे तव तक वावूजी उन्हे छोडते नही थे। जव उसे हटाते भी थे तव उसके नीचे के भाग से तकिये के गिलाफ आदि वनवाते थे। कभी कोई वहू साहस कर यदि यह कह देती थी कि वावूजी अव यह वहुत फट गया है तो उनकी मीठी झिडकी होती थी 'इसीलिए तो तुम्हे सिलने को दिया है। जोड लगा दो, अभी चलेगा।' इसमे कजूसी की भावना विल्कुल नही थी, गरीव देश मे प्रत्येक वस्तु का पूर्ण उपयोग हो, यही उनकी भावना थी। पहनने के ही नही ओढने-विछाने के वस्त्र भी इसी प्रकार जोड़ और पेवद लगाकर तव तक चलाए जाते थे जव

तक वे चल सकते थे। जाडे के मौसम के अतिरिक्त अन्य दिनों मे वह घर पर घुटनो तक के जांघिये और वनियाइन मे ही रहते थे। इस प्रकार स्वेच्छा से उन्होने सादगी का यह वाना अपनाया था।

वावूजी जीवन और समाज से सवधित किसी भी छोटे से छोटे कार्य को घृणित नही समझते थे। ठीक इसके विपरीत वह कहा करते थे कि भगियो का कार्य वहुत महत्त्व का और सेवा का कार्य है। उन्हे स्वय भी ऐसा कोई भी सफाई का कार्य करने मे हिचक नही होती थी। आवश्यकता पडने पर न केवल झाडू लगाने का कार्य, वरन् मल-मूत्र साफ करने का कार्य भी उन्होने अनेक वार किया था। मीरगज अचल के हमारे निवास मे एक शौचालय मुख्य घर से वाहर खुले स्थान मे अतिथियो के प्रयोग के लिए वना था। वह स्वय भी प्रायः यही शौच के लिए जाते थे। जव कभी भगी विलव से आता तो वावूजी स्वय ही शौचालय को अतिथियो के प्रयोग के लिए साफ कर देते थे।

आज के उन अर्थशास्त्रियो से वावूजी सहमत नही थे जो यह कहते है कि जीवन-स्तर को ऊचा उठाने के लिए मनुष्य को अपनी आवश्यकताए वढानी चाहिए। वह अपनी आवश्यकताओ को कम से कम रखने के पक्षपाती थे। उनका विश्वास था कि यही दृष्टिकोण व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए हितकर है। अपने व्यक्तिगत जीवन मे तो उन्होने इसका पूर्ण रूपेण पालन किया। देश की गरीवी से प्रभावित होकर तथा जनता की कठिनाइयो की अनुभूति से द्रवित होकर उन्होने अपनी निजी आवश्यकताओ मे जितनी कमी की थी उतना करना किसी उनके ऐसे स्तर के व्यक्ति के लिए आज के युग मे वडा कठिन है।

वग-भग आदोलन के समय सन् १९०५ मे काग्रेस ने विदेशी वस्तुओ के वहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओ के प्रयोग का आह्वान किया। स्वदेशी वस्तुओ पर तो वावूजी की पहले से आस्था थी किंतु काग्रेस के इस निर्णय के समय से उन्होने न केवल विदेशी वस्त्र तथा अन्य विदेशी वस्तुओ का वहिष्कार किया, चीनी खाना भी एकदम छोड दिया क्योकि उस समय चीनी का अच्छी मात्रा मे आयात विदेशो से होता था और इस कारण यह विदेशी वस्तुओ की सूची मे आती थी। एक वार चीनी छोडी तो फिर आजीवन नही खाई। चीनी छोडने के वाद से वह उसके स्थान मे गुड या खडसारी का प्रयोग करने लगे थे। प्राकृतिक जीवन और प्राकृतिक भोजन मे जव से उनका विश्वास हुआ तव से तो वह चीनी को 'सफेद ज़हर' कहने लगे थे। आज तो डाक्टर भी चीनी के दोषो को स्वीकार करते हैं और गुड को अधिक स्वास्थ्यवर्धक मानते हैं।

वावूजी ने जव अपनी वकालत सन् १९०७ में आरभ ही की थी, कुछ व्यापारी एक कसाईखाना खोलने की अनुमति का प्रार्थना-पत्र लिखाने उनके पास आए। तव उन्हे ज्ञात हुआ कि गोहत्या तथा अन्य जानवरो की हत्या केवल

मांस के लिए ही नही, वरन् जूते वनाने के लिए उत्तम मुलायम चमड़ा प्राप्त करने हेतु भी होती है। अपनी मृत्यु से मरे हुए पशुओ की खाल से जो चमडा प्राप्त होता है वह कडा होता है और अच्छे जूतो के लिए उपयुक्त नही होता। वस, उसी क्षण मन मे सकल्प किया और फिर चमडे का जूता पहनना ही छोड दिया। इसके वाद कपडे (किरमिच) का जूता कुछ दिन पहना, फिर जूट की रस्सी के वने जूते भी पहने। इन्ही दिनो का (सन् १९०६ का) एक रोचक सस्मरण है। जव हाईकोर्ट पहुचे और सर तेज वहादुर सप्रू की दृष्टि इनके पैरो पर पडी तो उन्होंने मजाक किया, ' यह जूता पहनकर हाईकोर्ट मे वकालत करने चले हैं।" इस पर अन्य वकील खूव हसे। वावूजी ने भी स्वय इस हसी मे भाग लिया पर अपने निश्चय पर दृढ रहे और जूते नही वदले। वाद मे जव गाधीजी ने स्वत मरे जानवरो के चमडे से जूते तथा अन्य उपयोगी सामान वनवाने का क्रम वर्धा मे अपने आश्रम मे आरभ किया तव वावूजी ने इस प्रकार के चमडे से वनी चप्पल पहनना आरभ कर दिया था। इन्ही दिनो का सन् १९४८ का एक दूसरा संस्मरण है जो हमे वियोगी हरिजी ने सुनाया था। वावूजी दिल्ली प्राय जाते थे और आरभ मे वह अधिकतर हरिजन आश्रम मे वियोगी हरिजी के पास ठहरते थे। आश्रम मे चप्पलें वनती देख उन्होंने हरिजी से पूछा कि कैसा चमड़ा वहा प्रयोग किया जाता है। यह मालूम होने पर कि स्वाभाविक रूप मे मरे पशुओ की खाल का चमडा ही वहा प्रयुक्त होता है उन्होने एक जोडी चप्पल अपने लिए वनवाने का निर्देश दिया। चार-छ दिनो वाद जव चप्पल वनकर आई तव उन्होने उसे उलट-पलट कर देखा और उसकी पट्टियो के नीचे एक भिन्न पतले चमडे का अस्तर लगा देखकर उसके सवध मे पूछा। तव हरिजी ने उन्हे वतलाया कि अस्तर मे वकरे का चमडा लगता है और वह निश्चित रूप से यह नही कह सकते कि वह स्वत मरे हुए या मारे गए वकरे की खाल का चमड़ा है। इसे वाज़ार से खरीदा जाता है। यह सुनकर वावूजी वहुत क्रुद्ध हुए और चप्पलें उठाकर फेंकते हुए कहा, "मुझे धोखा देते हो।"

इसी प्रकार यह जानने के वाद कि उत्तम रेशम प्राप्त करने के लिए रेशम के कीडो के कोओ को जीवित ही पानी मे उवाल कर मारा जाता है उन्होने रेशमी कपडा कभी नही खरीदा। जिन कोओ को काटकर रेशम का कीडा जीवित स्वय वाहर निकल आता है उनके तार से जो अडी और मटका रेशम वनता है वह विवाह आदि के अवसर पर या दूसरो को भेंट आदि देने के लिए वह कभी कभी खरीद लिया करते थे।

जेल मे जव वावूजी पहली वार गए तव उन्हे वहा स्वय दाढी वनाने की पूरी सुविधा सभवत नही मिली। जेल के नाई से दाढी वनवाना उन्हे अच्छा नही लगा। वस दाढी न वनाने का निश्चय कर लिया। जव जेल से वाहर आए तव

भी फिर दाढी नही बनाई। उसमे भी समय लगता है, संभवत यही सोचा होगा कि अपने इस काम से भी छुट्टी मिली, और कुछ अधिक समय भी अन्य कामो के लिए मिला।

दिनचर्या

वावूजी प्रात काल जल्दी उठने वालो मे से थे। प्रात उठते ही शौच आदि से निवृत्त होकर वह अपने पहनने के कपडे अवश्य वदल लेते थे। इस क्रम मे उन्होने अत तक कोई अतर नही किया। उनकी यह विचारधारा पुरानी परिपाटी का पालन या छूत-छात मे विश्वास मात्र नही थी, वरन् वह इसे स्वच्छता का एक आवश्यक अग समझते थे। उनके विचार मे शौच के वाद अच्छी मिट्टी से हाथ माजना आवश्यक है। यात्रा मे भी उनकी मिट्टी की पुडिया उनके सामान के साथ अवश्य रखी जाती थी। सावुन का प्रयोग वह केवल कपडो की सफाई के लिए करते थे। शरीर पर कभी सावुन नही लगाते थे। स्नान के समय कभी-कभी वह वदन तथा वालो की सफाई के लिए मुलतानी मिट्टी का प्रयोग करते थे। स्नान से पूर्व वह वदन मे सरसो का तेल लगवाकर मालिश भी करवाते थे किन्तु नियमपूर्वक नही। स्नान के वाद अपनी पूजा के उपरात ही वह कुछ खाते-पीते थे (उनकी पूजा का रूप एकात मे वैठकर ध्यानावस्थित होना था)। नहाने मे उन्हे दोपहर हो जाय या और भी अधिक विलव हो जाय फिर भी वह साधारण रूप से बिना स्नान किए खाते-पीते नही थे।

दिन मे विश्राम करना या लेटना उनकी आदत मे नही था। भोजन करने के वाद सामान्य रूप से तुरत ही वह पुन अपने काम मे लग जाते थे। सध्या को जलपान भी वह नियमपूर्वक नही करते थे। रात्रि के भोजन का भी उनका कोई निश्चित समय नही रहता था, किंतु सामान्य रूप से अधिक विलब से भोजन करना उन्हे पसद नही था। रात्रि मे साधारणत वह १०-११ वजे तक सो जाते थे। उनकी एक विशेषता थी। विस्तर पर लेटने के दो-चार मिनट मे ही वह गहरी नीद मे सो जाते थे। नीद न आने का कष्ट उन्हे कभी नही रहा। सभवत यह उनके सात्विक जीवन का प्रभाव था।

उनका भोजन

वावूजी आरभ से ही सादा और सात्विक भोजन करने के अभ्यस्त थे। वाद मे तो वहुत वर्षों तक उनका भोजन और भी अधिक सादा—केवल फलो और विना आग की पकाई चीजो का—हो गया था। वास्तव मे उनकी भोजन सवधी धारणायें कुछ विश्वासो को लेकर बनी थी। स्वस्थ जीवन के लिए प्राकृतिक भोजन होना चाहिए। यह उनकी मान्यता थी। इसीलिए वह अधिकाशत मौसमी फल और

भीगा अनाज—चना, गेहू की दलिया, दालें और मूगफली आदि—खाते थे। हरा चना और हरी मटर उन्हे बहुत प्रिय थे। घी, नमक और मसाले उनके भोजन मे साधारण रीति से नही प्रयोग किए जाते थे, अत उनका भोजन सादा और उबला हुआ ही रहता था। बाजरा, चना, ज्वार और जौ उन्हे बहुत प्रिय थे। वह इनकी रोटी अधिक प्रेम से खाते थे। जौ का दलिया और बाजरे का भात भी उन्हे प्रिय थे। घर मे जब वह पका भोजन खाते थे तब उन्हें पीठी भरी रोटी, कचौडी तथा दही-बडा अधिक पसद रहते थे। बाजरे की कचौडी भी उन्हें बहुत प्रिय थी। आलू और कटहल उनकी प्रिय सब्जिया थी। हाथ का कुटा हुआ चावल मशीन द्वारा साफ किये गए चावल की अपेक्षा उन्हें अधिक प्रिय था।

अपने भोजन के सबध मे इतनी सादगी रखने पर भी अतिथियो को खिलाने-पिलाने का उन्हें बडा चाव था। उस समय वह इस बात का ध्यान रखते थे कि भोजन अच्छा हो, दही-बडा, पापड, चटनी और मिठाई कोई चीज़ छूटे नही। इसके साथ ही बडे प्रेम और आग्रह से वह अतिथियो को भोजन कराते थे। किंतु इतना होने पर भी किसी कारणवश यदि घर मे उस समय इन भोजन पदार्थों को उपलब्ध करा सकना सभव नही होता था तो फिर जो भी भोजन पदार्थ तैयार हो सकता था उसे ही अतिथियो के सामने रखने मे वह सकोच नही करते थे। बाहरी दिखावे मे उनका बिल्कुल विश्वास नही था। यदि स्वय भीगा चना खा रहे हो और कोई आ जाय तो उसके सामने भी वह उसे रख देने मे हिचकते नही थे।

जेल के जीवन मे जेल का भोजन खाना उन्हे रुचिकर नही था, अत अपने भोजन सबधी प्रयोग करने का उन्हें वहा अच्छा अवसर मिला। उन्होने वहा कच्ची चीज़ें खाना आरभ किया—भीगे चने, गेहू या जौ की पानी मे भिगोई दलिया, पानी मे फुलाए चावल और दालें तथा कच्ची खाई जा सकने वाली सब्ज़ी जैसे गोभी, मूली, ग्वारफली आदि तथा सब प्रकार के फल। जेल से बाहर आने के बाद भी कई वर्षो तक ये पदार्थ उनका नियमित भोजन बन गए। भोजन के सबध मे अपने अन्य प्रयोग भी वह करते रहे थे, जैसे एक समय केवल एक ही भोजन पदार्थ का खाना। उदाहरणार्थ, गर्मी के दिनो के एक समय वह केवल खरबूजे से ही पेट भर लेते थे। इसी प्रकार जब बाजरा खाते तो एक समय केवल बाजरे की रोटी ही किसी एक सब्जी के साथ खाकर क्षुधा शात कर लेते। उनका विश्वास था कि एक ही समय मे कई प्रकार की खाद्य चीजें खाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा नही होता। बाद मे जब दातो से कच्चा भोजन चबाना सभव नहीं रहा, तब आग मे पकी रोटी, दाल, सब्ज़ी आदि सब खाने लगे थे, किंतु सामान्य रूप से बिना नमक और बिना घी मसाले का ही भोजन करते थे।

गन्ने का रस उनका प्रिय पेय था। जेल प्रवास मे भी गन्ने का रस निकालने

की उनकी छोटी सी चरखी उनके साथ जाती थी और वहा भी वह गन्ने का रस निकलवा कर पीते थे। वाद मे उनके किसी मित्र ने गन्ने का रस निकालने की पीतल की एक चरखी वनवा कर उन्हे भेंट दी थी। हमारे घर से लगे छोटे वाग मे हम लोग थोडा गन्ना लगाते थे। अपने अतिम समय से कुछ पूर्व उन्होने यह चरखी हमे दे दी थी। इस पर गन्ने का रस निकालकर प्राय हम लोग उनके पास पहुचवाते थे, किंतु वाद मे जव अधिक खासी के कारण उन्हें गन्ने का रस दिया जाना रोक दिया गया तव यह क्रम टूट गया था। आज भी उनकी यह चरखी हमारे पास है और गन्ने का रस निकालते समय पुरानी स्मृतियां उभर आती हैं।

वावूजी ने दूध पीना कव छोडा यह ठीक-ठीक ज्ञात नही है। उनकी मान्यता थी कि गाय अथवा भैंस के दूध पर उसके वच्चे का पूर्ण अधिकार है। उसका दूध लेने के लिए मनुष्य उस वच्चे का अधिकार छीनता है। साथ ही उनका यह भी विचार था कि दूध वयस्क लोगो का प्राकृतिक भोजन नही है। दूध तो वह वीमारी मे भी साधारणत नही लेते थे, किंतु दही कभी-कभी ले लेते थे। सन् १९३९ मे जव वह हृद्‌रोग से पीडित होने पर लखनऊ मेडिकल कालेज के अस्पताल मे थे तव डॉक्टरो और उनके इष्टमित्रो के सामने उन्हे दूध पीने के लिए तैयार करना एक समस्या थी। कुटुम्वी जनो का तो इस सवध मे उनसे कुछ कहने का साहस ही नही होता था। डाक्टर तथा अन्य सव लोगो के वहुत आग्रह पर उन्होने तव वड़ी कठिनाई से दूध पीने की स्वीकृति दी थी।

हम लोगो ने वहुत दिनो से घर मे गायें पाल रखी हैं। जव वावूजी हमारे पास यूनीवर्सिटी के निकट के घर मे आते थे तव हम दोनो ही उनसे प्राय आग्रह करते थे कि थोडा दूध ले लें। हमारा मन रखने के लिए आधा या एक प्याला दूध वह कभी-कभी ले लेते थे, किंतु यदि मट्ठा तैयार रहता तो उसे वडी रुचि से पीते थे।

घी खाना उन्होने सम्भवत सन् १९१३-१४ के वीच किसी समय छोड़ा था। उनकी दृष्टि मे घी स्वास्थ्य के लिए अहितकर होता है। अत वह सामान्य रूप से घी मे पकाई चीजें वहुत कम खाते थे। तिथि त्योहारो पर या विवाह आदि के अवसरो पर जव पूरी-कचौडी का भोजन वनता था तव विशेष आग्रह पर वह इस प्रकार का भोजन कर लेते थे। घी के स्थान मे तिल के तेल मे पकाई वस्तु वह ले लेते थे।

नमक का त्याग

सन् १९१८ मे उन्होंने नमक खाना वहुत कम कर दिया था और फिर

उसके कुछ समय बाद जेल जाने पर बिल्कुल ही छोड दिया था। उनका विश्वास था कि हमे अपने शरीर के स्वास्थ्य के लिए जितने खनिज लवणो की आवश्यकता होती है वह सब हमे फलो और सब्जियो तथा अन्य खाद्य पदार्थो से मिल जाते हैं। अलग से नमक खाना न केवल अनावश्यक है, वरन् स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। सन् १६३६ मे उनकी रोगावस्था मे दूध की भाति उन्हें नमक खिलाने की भी समस्या थी। चिकित्सको का मत था कि स्वास्थ्य की उनकी उस समय की स्थिति मे थोड़ा-सा नमक खाना उनके लिए बहुत आवश्यक है। डॉक्टर तथा अन्य सभी चिंतित थे। तब स्वर्गीय सम्पूर्णानन्दजी और पतजी दोनो ने परस्पर परामर्श किया कि किस प्रकार बाबूजी को नमक खिलाया जाय। उन दोनो ने एक मार्ग निकाला। दूसरे दिन प्रात सम्पूर्णानन्दजी होमियोपैथी दवा की पुडियो जैसी छोटी-छोटी १५-२० नमक की पुड़िया लेकर अस्पताल बाबूजी के पास पहुचे और कहा कि मै यह होमियोपैथी दवा आपके लिए लाया हू जिसे दिन मे चार बार किसी सब्जी या चटनी के साथ आपको लेना है।" जब प्रथम पुडिया बाबूजी को सब्जी के साथ दी गई तो उनकी इतनी ही प्रतिक्रिया हुई कि "बडा खारा स्वाद है।" नमक का सदेह नही हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे सब पुडियो का नमक उन्हे खिला दिया गया। बाद मे उन्हें कुछ सदेह हुआ तब एक दिन सम्पूर्णानन्दजी से पूछा, "यह क्या दवा तुम लाए थे, एकदम नमक जैसी थी।" सम्पूर्णानन्द जी को स्वीकार करना पडा कि वह नमक ही था। तब बाबूजी ने रुष्ट होकर कहा तुमने इस प्रकार धोखा देकर मुझे नमक क्यो खिलाया? इस पर सम्पूर्णानन्दजी का शात सा उत्तर था। "आप इसे धोखा कहे या पाप कहे, किंतु हमने आपकी प्राणरक्षा के लिए ऐसा किया है और डॉक्टरो के परामर्श के आधार पर ऐसा करना आवश्यक था। अन्य किसी प्रकार से आप तो नमक लेने के लिए तैयार ही नही थे। अत हमने अपनी समझ मे कोई पाप नही किया है। आपने भी नमक स्वाद के लिए नही खाया दवा के रूप मे खाया है। अत आपका व्रत भी कहा भग हुआ ?" इस तर्क से बाबूजी चुप हो गए। सभवत उनके मन की झुझलाहट अपने मित्रो का अपने प्रति स्नेह और अपने स्वास्थ्य की ओर से उनकी चिंता देखकर शात हो गई थी। स्वस्थ होने के बाद पुन उनका वही बिना नमक का भोजन का क्रम चलने लगा। बस इतना अतर अवश्य हुआ कि नमक की कोई चीज़ कभी न लेने के पालन मे थोडी ढील हो गई और हम लोगो को यह सुविधा हो गई कि जब कभी बाबूजी के लिए बिना नमक की कोई चीज तैयार न हो और वह अचानक आ जाएं तो हम लोगो के आग्रह पर नमकीन चीजें खा लेते थे।

वावूजी के भोजन और रहन-सहन की सादगी का प्रभाव परिवार के हम सव सदस्यो पर भी पडा। यह स्वाभाविक भी था।

अपनी पुस्तको के प्रति ममत्व

वावूजी को अपनी पुरानी पुस्तकें वेचना कभी पसद नही था। हम लोग जव कभी एक कक्षा से उत्तीर्ण होकर ऊपर की कक्षा मे जाते और अपनी पुरानी अनावश्यक पुस्तकें बेच आते तो उन्हे अच्छा नही लगता था। वह कहा करते थे कि अपनी पढी पुरानी पुस्तको मे किनारो पर लिखी टिप्पणिया पुराने दिनो की और उन दिनो के मित्रो की मधुर स्मृतियो की याद दिलाती हैं।

□

व्यक्तित्व

बाबूजी के व्यक्तित्व के बनाने मे चार व्यक्तियो का प्रभाव मुख्य रूप से रहा था—उनके माता-पिता, महामना मालवीयजी तथा पं० बालकृष्ण भट्ट। अपने पिता से उन्होंने सत्य का मूल्य सीखा और अपनी माता से अपने आदर्शों पर दृढ रहना सीखा, मालवीयजी से समाज और देश के लिए त्याग करना सीखा तथा भट्टजी से राष्ट्रभाषा हिंदी की सेवा का व्रत लिया।

विचारो की दृढ़ता

बाबूजी का एक अनोखा व्यक्तित्व था। उनमे आत्मविश्वास, स्वाभिमान, निर्भीकता, आत्मनिर्भरता, दृढता आदि गुण बड़ी मात्रा मे थे। नेतृत्व और सगठन की भी उनमे अपूर्व शक्ति थी। जो भी उत्तरदायित्व वह अपने ऊपर लेते थे उसका निर्वाह बड़ी चिता और लगन से करने का उनका विशेष स्वभाव था। वह प्राय गभीर मुद्रा मे रहते थे और ऐसा लगता था कि वह बराबर किसी समस्या पर चिंतन और मनन कर रहे हैं। बड़े-बडे धर्मग्रथो मे लिखी बातो को अथवा महापुरुषो के वचनो को वह केवल इसलिए मानने को तैयार नही होते थे कि वे किसी शास्त्र या महान पुरुष द्वारा प्रतिपादित हैं। प्रत्येक बात की वह अपने मन मे विवेचना करते थे और जब उन्हें विश्वास हो जाता था कि वह तर्कसगत है तभी उसे स्वीकार करते थे। अपने भाषणो मे भी प्राय वह शास्त्र के इस कथन का उल्लेख करते थे कि 'समय भेदेन धर्म भेद' अर्थात् धर्म मे काल के अनुसार परिवर्तन होता है। वह कहते थे कि किसी को कोई बात केवल इसलिए स्वीकार नही करनी चाहिए कि वह किसी धर्मग्रथ मे लिखी है, या किसी विशेष व्यक्ति ने कही है। प्रत्येक बात और तथ्य को अपनी बुद्धि की तराजू पर तौलना चाहिए और जब बुद्धि उसे स्वीकारने योग्य समझे तभी स्वीकार करना चाहिए। यही कारण था कि वह महात्मा गाधी, पं० मदन मोहन मालवीय आदि देश के बडे नेताओ की भी

उन वातो का, जिनसे वह सहमत नही होते थे, स्पष्ट रूप से विरोध करते थे। जहा एक ओर उनमे अपने आदर्शों और मान्यताओ पर अटल रहने की दृढता थी, वही दूसरी ओर उनमे शिष्टता और नम्रता भी वडी मात्रा मे थी। महात्माजी और मालवीयजी के लिए अपार श्रद्धा उनके मन मे थी, फिर भी वह उनके जिन विचारो से सहमत नही हुए उनका दृढता से विरोध तो किया किंतु अपने विरोध मे न तो शिष्टता की कमी आने दी और न उनके प्रति अपनी श्रद्धा और आदर के भाव मे किसी प्रकार की कमी होने दी। यह उनके चरित्र का ऊचापन था। वह किसी के अधानुयायी नही रहे।

ससार का वडे से वडा कोई भी पुरुष पूर्ण आदर्श स्वरूप नही होता। कम या अधिक मात्रा मे प्रत्येक महापुरुष भी अपने अनुयायियो से अधभक्ति की अपेक्षा रखता है। वावूजी ऐसा कभी नही कर सके। इसी कारण राजनीतिक जीवन मे वह उतना ऊपर नही वढ पाए जितना उन्हे अपने त्याग, योग्यता और देशसेवा के आधार पर वढना चाहिए था। उनकी स्पष्टवादिता और अपने सिद्धातो पर अटल रहने की प्रवृत्ति वाधक सिद्ध होती रही। इसीलिए महात्मा गाधी के भी वह विशेष कृपा पात्र नही वन पाए। हमे स्मरण है, एक वार हमारे घर पर राजेन्द्र वावू से वावूजी की हिंदी की समस्या पर कुछ वात हो रही थी। वातचीत के क्रम मे राजेन्द्र वावू ने स्वीकार किया कि वावूजी का दृष्टिकोण ठीक था। इसी प्रश्न पर वावूजी का महात्माजी से कुछ मतभेद था। यह मतभेद उन्होने वर्धा मे हुई हिंदी साहित्य सम्मेलन की वैठक मे, जहा महात्माजी उपस्थित थे, प्रकट किया था। राजेन्द्र वावू भी उस वैठक मे उपस्थित थे किंतु उन्होने न तो महात्माजी की वात का विरोध किया था और न वावूजी के दृष्टिकोण का समर्थन। जव हमारे घर पर हुई वातचीत मे राजेन्द्र वावू ने वावूजी के दृष्टिकोण को ठीक स्वीकार किया तव वावूजी ने वडी जोर से उनसे कहा कि वर्धा की वैठक मे फिर आपने मेरे इस दृष्टिकोण का समर्थन क्यो नही किया था? राजेन्द्र वावू को स्वीकार करना पड़ा कि गाधीजी के सामने उनकी वात को न मानने का साहस उनमे नही था। राजेंद्र वावू की भाति उस समय के वड़े-वडे सभी नेता भी गाधीजी के पूर्ण अनुयायी थे और उनसे मतभेद प्रकट करने का साहस किसी को साधारणत नही होता था। वावूजी ही इसके अपवाद थे।

प० जवाहरलाल नेहरू ने एक प्रकार से अपना राजनीतिक जीवन वावूजी के नेतृत्व मे आरभ किया था। सन् १९२०-२१ के असहयोग आदोलन के आरभिक दिनो मे वावूजी उनको अपने साथ नगर और जिले के विभिन्न स्थानो मे मीटिंगो मे ले जाया करते थे। वह वावूजी को अपना वडा भाई मानते थे और उनके सहयोग से ही राजनीतिक कार्य करते थे। वावूजी का भी प० नेहरू के प्रति सदा वड़ा स्नेह रहा। यह स्नेह सवध होते हुए भी जव पं० नेहरू प्रधानमत्री हुए और

उनके कुछ कार्यो और निश्चयो से वावूजी का मतभेद हुआ तो वावूजी ने अपना मतभेद स्पष्ट रूप से प्रकट किया। इसीलिए नेहरू वावूजी से असतुष्ट हुए और इसका प्रभाव वावूजी के राजनीतिक जीवन पर पडा। वह न कभी केंद्रीय मत्रिमडल मे सम्मिलित किए गये और न ही काग्रेस सगठन मे उन्हे महत्व दिया गया। जव सन् १९५० मे वह काग्रेस के अध्यक्ष-पद पर प० नेहरू की इच्छा के विरुद्ध चुने भी गए तो सरदार पटेल के देहान्त के वाद ऐसी परिस्थितिया पं० नेहरू द्वारा उत्पन्न कर दी गईं कि वावूजी को अपना कार्यकाल पूरा होने से पूर्व ही त्यागपत्र देना पड़ा। इसकी विस्तृत चर्चा पहले की जा चुकी है। वावूजी के चरित्र मे यह विशेष वात देखने को मिलती है कि वह अपने सिद्धातो और आदर्शों की रक्षा के लिए सव प्रकार का कष्ट सहने और त्याग करने के लिए तैयार रहते थे। अपने किसी प्रकार के लाभ के लिए उन्होने अपने सिद्धातो और आदर्शों के साथ कभी समझौता नही किया। चरित्र की ऐसी दृढता वहुत कम लोगो मे मिलती है। उन्हे कभी इस वात की भी चिंता नही रहती थी कि उनके विचारो का अन्य कोई समर्थन करता है या नही। उनके जीवन मे अनेक वार ऐसी भी स्थितिया आईं जव उन्होंने अकेले ही अपने सिद्धात और विचारो के अनुसार अपना मार्ग अपनाया। कवीर के निम्नलिखित दो दोहे उन्हें वडे प्रिय थे और वह प्राय इन दोहो को अपने भाषणो मे सुनाया करते थे—

लीक लीक गाडी चलै, लीकै लीक कपूत।
लीक छोड़ि तीनै चलै, सायर, सिंह, सपूत ॥

× × ×

सिंहन के लेहडे नही, हसन की नहिं पात।
लालन की नहिं वोरिया, साधु न चलें जमात ॥

उक्त दोहो मे व्यक्त भावना का रूप उनके जीवन मे स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

सन् १९४९ की वात है। दिल्ली मे जनाधिकार समिति द्वारा एक सभा आयोजित की गई थी जिसकी अध्यक्षता करने की स्वीकृति आयोजको की प्रार्थना पर वावूजी ने दे दी थी। जव इसकी सूचना कुछ शीर्षस्थ काग्रेसियो को मिली तव उन्हें यह रुचिकर न लगा और वावूजी को वहा जाने से रोकने का उन्होने प्रयास किया, किंतु वावूजी का उत्तर था, "मैं जाऊंगा। मैंने वचन दिया है। कोई भी व्यक्ति मुझे उस सभा मे जाने से रोक नही सकता।" उनकी ऐसी दृढता के कारण ही प्राय उनके साथी भी उनसे रुष्ट हो जाते थे।

विराग की भावना

गौतम वुद्ध ने कहा है कि सग्रह की प्रवृत्ति मनुष्य के सव कष्टो का मूल है और अध्यात्म मार्ग मे वाधक है। वावूजी भी इसी विचार परपरा के अनुयायी

थे। उन्होने कभी सग्रह मे विश्वास नही किया। आज भोजन मिल गया, कल मिलेगा या नही इसकी चिंता उन्होने कभी नही की। जिस ईश्वर ने जन्म दिया है वही भोजन तथा शरीर धारण की अन्य आवश्यकताए जुटाएगा, यही उनका विश्वास था, और कभी भी इसमे अतर करने की आवश्यकता उन्हें नही हुई। वाइविल के निम्नलिखित वाक्य की भी उनके जीवन पर वडी छाप पडी थी—

"*What shall it profit a man if he shall gain the whole world and lose his soul ?"

["यदि किसी मनुष्य को पूरे ससार का अधिकार प्राप्त हो जाय किंतु वह अपनी आत्मा को खो दे तो उसे क्या लाभ होगा ?"]

वाइविल के उक्त कथन के अनुसार उन्होंने अपने जीवन मे कभी कोई कार्य अपनी आत्मा के विरुद्ध नही किया। जव कष्ट भी उनके सामने आये तो उसमे भी उन्होने ईश्वरीय रूप और उसकी प्रेरणा ही देखी। उनके लिए सदा दुःख और सुख एक समान रहा। कष्टो मे भी दुखी नही रहे और सुख मे भी कभी मन का सतुलन नही खोया। देश के स्वतत्र होने के वाद जव चारो ओर भ्रष्टाचार और पदलोलुपता की वाढ सी आ गई तव अपने भाषणो मे अनेक स्थानो पर उन्होंने वाइविल का उक्त कथन उद्धृत करते हुए लोगो को प्रेरणा देने की चेष्टा की कि वे अपने को सभालें और इस वाढ मे वह न जाएं, किंतु ऐसा लगता है कि दुर्भाग्य से उनकी इस प्रेरणा का विशेष प्रभाव न तो नेताओ पर पडा और न जनता पर। भ्रष्टाचार वढता ही गया।

देश की स्वतत्रता की लडाई मे जिन ऊचे नेताओ ने योगदान दिया था उन सव मे त्याग की अच्छी भावना थी और सभी ने वडा त्याग किया था। किंतु वावूजी की त्याग और विराग की भावना सामान्य सीमा से वहुत आगे वढी हुई थी। अधिकाश नेताओ को सम्मान और ऊचे पदो का आकर्षण रहा था, किंतु वावूजी को किसी प्रकार के सम्मान ने या किसी पद ने कभी आकृष्ट नही किया, वरन् इसके ठीक विपरीत उनमे इन सव के प्रति विरक्ति की भावना ही रही। जीवन भर वह अपनी इच्छा से किसी पद के लिए प्रयत्नशील नही रहे। स्वय पीछे रहकर अपने सहयोगियो को ही सम्मानित पदो पर प्रतिष्ठित कराते थे। जव कभी उन्होने किसी पद को ग्रहण किया अथवा किसी स्थान के लिए चुनाव मे खडे हुए तो केवल अपने मित्रो और देश के उन नेताओ के आग्रहवश जिनके प्रति उनके मन मे श्रद्धा थी। हमे स्मरण है, सन् १९५० मे जव काग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए चुनाव मे वह खडे हुए थे तव आरभ मे उन्होंने खडे होना स्वीकार नही किया था। जव सरदार वल्लभ भाई पटेल ने फोन पर वावूजी से वातें की और आग्रह किया कि वह खडे हो तव फोन पर ही वावूजी ने अपनी स्वीकृति यह कह कर दी थी, "यदि मेरी उपादेयता है और आपका आदेश है तो इसे मैं स्वीकार

करता हूं।" सरदार पटेल के प्रति उनके मन मे वडी श्रद्धा थी और इसी कारण उनके आग्रह की वह अवहेलना नही कर सके। इसी प्रकार लाला लाजपत राय के निधन के पश्चात् जब गाधीजी ने उनसे कहा तब उनके आदेश का पालन करने के लिए उन्होंने लोक सेवक मंडल की अध्यक्षता स्वीकार की। राजर्षि की उपाधि भी उन्हें सकोचवश देवरहा वावा के हाथो से स्वीकार करनी पडी थी। इस उपाधि को प्रदान करने के लिए एक वृहत् आयोजन १५ अप्रैल सन् १९४८ के दिन सरयू के तट पर देवरहा वावा के सभापतित्व मे मनाया गया था। एक सत के आदेश की वह अवहेलना नही कर सके थे। एक ऊचा सत होने के नाते देवरहा वावा के प्रति उनके मन मे भक्ति और श्रद्धा थी।

जब सन् १९६१ मे भारत-रत्न की उपाधि से उन्हें विभूपित करने के लिए राष्ट्रपति राजेन्द्र वावू ने उनकी स्वीकृति मागी तव उनका प्रथम उत्तर था, "मैंने कोई ऐसा अनोखा कार्य नही किया है जिसके उपलक्ष मे मुझे यह सम्मान दिया जाय। मैंने केवल मात्र अपने कर्तव्य और स्वधर्म का पालन किया है।" किंतु अपने सभी मित्रो, सहयोगियो और जनता जनार्दन के स्नेह के आग्रह को वह हटा न सके और भारत-रत्न की उपाधि उन्हें स्वीकार करनी पडी। उन्हें तो शासन द्वारा इस प्रकार की उपाधिया दिये जाने का क्रम ही पसद नही था। उनके नीचे दिये गये पत्र से जो उन्होने सेठ गोविन्द दासजी को लिखा था उनकी भावना स्पष्ट होती है (लगभग ऐसा ही एक पत्र उन्होने श्री वियोगी हरिजी को भी लिखा था)—

१९८, अतरसुइया
इलाहावाद।

प्रिय गोविन्द दासजी, ३-२-१९६१

नमस्कार। आपका नई दिल्ली से भेजा २७ जनवरी का पत्र मिला। शुभ-कामनाओ के लिए स्वभावत कृतज्ञ हू।

आपको भी तो उपाधि मिली है। क्या मैं आपको वधाई दू ? विचार नही था। मुझे तो उतार-चढ़ाव की उपाधिया देने का यह क्रम अच्छा नही लगता। यह गवर्नमेंट को सुझाव देने की वात है कि यह क्रम वद किया जाय। इसमे गवर्नमेंट को व्यक्तियो मे अतर करना पडता है। आपको और सुमित्रानन्दन पत को पद्म-विभूपण की उपाधि दी गई। मैं आप दोनो से आयु मे वडा हू और सभवत कार्य क्षेत्र मे भी पुराना हूं। गवर्नमेंट ने आप दोनो की और मेरी उपाधियो मे अतर किया। परतु मैं जानता हू कि मेरे मरने के कुछ वर्ष वाद ही मुझे लोग भूल जाएगे किंतु आप दोनो, जो साहित्यिक हैं, अपने साहित्य द्वारा स्मरण किए जाएंगे। उतार-चढाव की उपाधिया रहते गवर्नमेंट के लिए ऐसे विपय मे सूक्ष्म न्याय करना सभव नही होता। अच्छा हो कि इस प्रकार का क्रम वद किया जाय। जनता स्वय अपने आदर के पात्रो को पहचान लेती है।

मैं पहले की तरह चारपाई से वधा सा हू।

सस्नेह,

पु० दा० टडन

दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन ने जब बाबूजी को अभिनदन ग्रथ भेंट करने का निश्चय किया और उनकी स्वीकृति चाही तव भी बाबूजी ने आरभ मे इसे अस्वीकार करते हुए सम्मेलन के प्रधानमत्री श्री गोपालप्रसाद व्यास को लिखा था कि ऐसा कोई आयोजन न किया जाए। किंतु बाद मे व्यासजी तथा दिल्ली साहित्य सम्मेलन के अन्य सहयोगियो और साहित्यिको तथा श्री लाल बहादुर शास्त्री के आग्रह के कारण वह विवश हो गए और उन्हे अपनी स्वीकृति देनी पडी। जहा उनके चरित्र मे एक ओर वज्र की सी दृढता थी दूसरी ओर उनके मन मे अपने मित्रो और सहयोगियो के लिए बडे अपनत्व और ममत्व की भावना थी। यदि उन्हे अपने आदर्श और सिद्धात से समझौता नही करना पडता था तो उनकी इच्छाओ के आगे वह झुक जाते थे।

इसी प्रकार सन् १९४७ मे इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की हीरक जयती के अवसर पर विश्वविद्यालय द्वारा उन्हे प्रदान की गई मानद एल-एल० डी० (डाक्टर ऑफ लॉ) की उपाधि भी उन्होने विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति और अपने अभिन्न मित्र डा० ताराचद तथा अनेक अन्य मित्रो के आग्रहवश ही स्वीकार की थी। उन्हे स्वय कभी भी किसी उपाधि या पद का आकर्षण नही था। इस उपाधि के समय जो परिधान (गाउन) विश्वविद्यालय की ओर से उन्हे मिला था वह उन्होने इन पक्तियों के लेखक को दे दिया था। बाद मे सम्मेलन के सचालन के लिए केंद्रीय शासन द्वारा प्रथम शासन निकाय के गठित होने पर यह परिधान सम्मेलन के राजर्षि कक्ष मे रखने के लिए शासन निकाय के सचिव को हमने दे दिया था जो आज भी वहा सुरक्षित है।

राजनीतिक क्षेत्र मे उनका स्थान एक प्रकार से भीष्म पितामह की तरह का था। लोगो ने उनकी शक्ति का उपयोग आवश्यकता पडने पर उसी रूप मे किया, और जब कार्य पूरा हो गया तब उनकी ओर विशेष ध्यान नही दिया। जब-जब किसी कठिन मोर्चे पर आगे बढने की आवश्यकता होती थी उन्हे सामने कर दिया जाता था। इसी प्रकार की एक घटना सन् १९४८ की है। श्री रफी अहमद किदवई किन्ही कारणो से उत्तर प्रदेश के काग्रेस शासन की कार्य-प्रणाली से सतुष्ट नही थे। उन्होने निश्चय किया कि वह प्रदेश काग्रेस के अध्यक्ष-पद के चुनाव मे खडे होंगे। रफी साहब का जो प्रभाव उत्तर प्रदेश के काग्रेस कार्यकर्ताओ मे था उससे यह लगभग निश्चित-सा ही था कि वह चुनाव मे सफल हो जाएगे। प० पत,

डा० सम्पूर्णानन्द, श्री चन्द्रभानु गुप्त आदि प्रदेश के नेताओ को यह आशंका हुई कि रफी साहव प्रदेश काग्रेस के अध्यक्ष होने के वाद शासन मे वहुत उलट-फेर करेंगे। अत. इन सव लोगों ने वावूजी से आग्रह किया और उन पर दवाव डाला कि वह इस चुनाव मे रफी साहव के मुकावले मे खडे हो। वावूजी को इन लोगो ने समझाया कि उनकी 'हिंद रक्षक दल' तथा 'शरणार्थियो के पुनर्वास' की योजनाओ के रफी साहव वहुत पक्ष मे नही है, अत उनके प्रदेश काग्रेस के अध्यक्ष होने से इन योजनाओ के कार्यान्वयन मे कठिनाई होगी और ऐसी परिस्थिति मे उनका मोर्चे पर खडा होना आवश्यक है। कदाचित् इन नेताओ को स्वय ही भय था कि उनके पदो के अधिकारो पर कही प्रहार न हो। वावूजी को तो केवल अपनी रक्षा के लिए मोर्चे पर लाना चाहते थे, क्योकि वे जानते थे कि वावूजी के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति रफी साहव से उस समय चुनाव मे जीत नही सकता था। उस समय प्रदेश काग्रेस के अदर दो मुख्य दल थे। एक दल का नेतृत्व सर्वश्री पत, सम्पूर्णानन्द, चन्द्रभानु गुप्त तथा लालवहादुर शास्त्री करते थे, और दूसरे दल का नेतृत्व सर्वश्री रफी अहमद किदवई, वालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गोपीनाथ श्रीवास्तव तथा सरदार नर्वदा प्रसाद सिंह के हाथो मे था। वावूजी कभी किसी दलगत राजनीति मे नही थे। उनका ऐसा व्यक्तित्व था कि दोनो दलो के लोग उनके प्रति श्रद्धा रखते थे। अत जव वावूजी ने चुनाव मे खडे होने की अपनी स्वीकृति दी तव रफी साहव के दल के लोग असमजस मे पड गए। श्री वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने कहा, "एक ओर मेरे गुरु हैं, दूसरी ओर मेरे मित्र है। ऐसी परि-स्थिति मे मित्र के पक्ष का समर्थन मैं कैसे कर सकता हू ?" वह वावूजी को गुरुवत् मानते थे। रफी साहव के वहुत से समर्थको और मित्रो के मन मे इसी प्रकार की असमजस की भावना आई। अत मे चुनाव की परिस्थिति को हटाने के लिए रफी साहव ने स्वय अपना नाम वापस ले लिया और वावूजी निर्विरोध अध्यक्ष चुने गए। ऐसे ही अनेक अवसर काग्रेस की राजनीति मे आए जव वावूजी का उपयोग लोगो ने भीष्म पितामह के रूप मे किया और उसके वाद लोग अपने स्वार्थों मे लिप्त हो गए और वावूजी को पीछे छोड दिया। वावूजी के मन पर अपने सह-योगियो के इस प्रकार के व्यवहार की क्या प्रतिक्रिया हुई, यह तो हम नही जान सके किंतु वाह्य रूप से हमने उन्हे किसी के प्रति कभी कोई कटुता का भाव प्रकट करते नही देखा। अपने सभी सहयोगियो और मित्रो के प्रति उनके मन मे सद्-भावना ही रही। प० नेहरू से भी वाद के दिनो मे इतना मतभेद होते हुए भी उनके व्यक्तित्व के प्रति कभी वावूजी ने किसी प्रकार की कटुता प्रदर्शित नही की। सिद्धातो मे मतभेद होना अलग वात थी किंतु आपसी सवधो मे उन्होने कभी अतर नही आने दिया। वावूजी के सिद्धान्तो से मतभेद रखनें वाले उनके सहयोगी भी उनकें इस स्वभाव से परिचित थे और इस कारण वे भी उनके प्रति आदर

और स्नेह रखते थे। दिसम्बर सन् १९५१ की बात है। गौरी पाठशाला के नए भवन के लिए हम लोग धन एकत्रित करने मे लगे थे। हमने किदवाई साहब से सहायता मागी। उन्होने हमे कलकत्ते बुलाया और वहां कुछ उद्योगपतियो से यह कर मिलवाया कि ये टडनजी के पुत्र और पुत्रवधू हैं। टडनजी की सस्था गौरी पाठशाला के लिए धन की आवश्यकता है और ये लोग धन एकत्रित करने के लिए कलकत्ता आये हैं। आप लोग यथा शक्ति इनकी सहायता करें। इस प्रकार किदवई साहब के प्रयास से हमे उचित आर्थिक सहायता मिली।

नियम और अनुशासन पालन

बावूजी मे एक बड़ा गुण अनुशासन पालन का था। घर मे हो या बाहर वह अनुशासन का कडाई से पालन करने मे विश्वास रखते थे। वह स्पीकर रहे अथवा किसी भी सभा मे अध्यक्ष, सदा नियमो और अनुशासन का पालन स्वय किया तथा दूसरो से कराया। नियमो और अनुशासन का पालन कराने मे वह किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह कितने ही ऊंचे पद पर क्यो न हो, छूट नही देते थे। जब वह स्पीकर थे उनके लिए प्रसिद्ध था कि विधान-सभा के केवल सामान्य सदस्य ही नही मुख्यमत्री प० पत तथा अन्य सब मत्रीगण भी बराबर सशक रहते थे कि कही उनसे सभा के नियमो के विरुद्ध कोई कार्य न हो जाय और उन्हे स्पीकर से चेतावनी मिले। ऐसे अवसर भी आए जब स्पीकर के पद से मुख्यमत्री तक को चेतावनी देने मे वह नही हिचके।

खाद्यानो पर नियत्रण लगाने के वह पक्ष मे नही थे। काग्रेस अध्यक्ष के पद से भी इस नीति का उन्होने बराबर विरोध किया। उनका विश्वास था कि इससे चोरबाजारी और भ्रष्टाचार पनपता है। फिर भी जब खाद्यान्नो पर नियंत्रण हो गया तो स्वय इतनी कड़ाई से उसका पालन किया कि आवश्यकता पडने पर फल-सब्जी खाकर ही वह रह जाते थे किंतु एक दाना भी अनाज चोर बाजार से नही आ सकता था। ऐसी स्थिति मे अतिथि भी आ जाए तो भी उन्हे कोई चिंता नही होती थी। उनके स्पीकर-काल की इस सबध की दो घटनाए हमे आज भी स्मरण हैं—

पटना से काग्रेस के चार वरिष्ठ नेता लखनऊ इनसे मिलने आए। बाबूजी से कुछ आवश्यक परामर्श कर उन्हें उसी दिन दिल्ली जाना था। उस दिन घर मे न तो गेहू का आटा था और न कोई दाल। रसोइया कुछ चिंतित हुआ। जब बाबूजी को यह बात मालूम हुई तो उन्होने आदेश दिया कि बाग मे जो आलू तैयार है वह खोद लाया जाय और उबाल तथा छीलकर वही परोसा जाय। नमक और काली मिर्च अलग से रख दी जाय, जिसे अतिथिगण अपनी इच्छानुसार ले लेंगे। जब मत्र अतिथि लोग भोजन करने बैठे तब बाबूजी ने अतिथियो को बतलाया कि आज

मेरे घर मे केवल यही भोजन है।

दूसरी घटना सन् १९४६ के नवबर महीने की है। हमारे छोटे भाई दया सागर का विवाह था। वारात फतेहपुर गई थी। उन दिनो २५ लोगो से अधिक के अन्नयुक्त प्रीतिभोज पर प्रतिवध था। वारात मे तो इलाहावाद से केवल २२-२३ व्यक्ति ही गए थे किंतु फतेहपुर मे वावूजी के अनेक स्थानीय मित्र और कार्यकर्ता सम्मिलित हुए। उन्हें विना भोजन कराए भी नही जाने दिया जा सकता था। वावूजी ने स्वय खडे होकर प्रीतिभोज मे केवल २५ लोगो को ही वैठने दिया। शेप लोगो के लिए फलाहार की पृथक् व्यवस्था कराई, क्योकि फलाहार पर कोई प्रतिवध नही था। स्वय भी फलाहार ही किया।

उनके द्वारा नियम पालन का एक दूसरा आदर्श उदाहरण निम्नवत् है—

वावूजी 'लोक सेवक मंडल' के अध्यक्ष थे। मडल का एक वडा कृषि फार्म करनाल मे था। कट्रोल का युग था। इस फार्म का मैनेजर वावूजी के पास आया और पूछा, "फार्म पर चने की फसल वहुत अच्छी हुई है। इस चने का क्या किया जाय?" वावूजी का सहज उत्तर था, "इस समय चने पर कंट्रोल है। आप पजाव सरकार के क्षेत्रीय खाद्य नियत्रक से वात कर चना उन्हें दे दें।" मैनेजर ने कहा, "वावूजी, वाजार मे चने का भाव पद्रह रुपए प्रति मन के लगभग है और कट्रोल मे आठ रुपए प्रति मन निर्धारित है। इस प्रकार मडल को काफी हानि होगी।" वावूजी ने तुरत कुछ क्रुद्ध स्वर मे कहा, "कुछ भी हो, हम चोरवाजारी नही करेंगे।" मैनेजर भी काफी चतुर था। उसने कहा, "आप ठीक कहते है। हम चोरवाजारी नही करेंगे। मेरे मन मे एक योजना है। हमारा एक आदमी डेरी खोल ले। उसे हम कट्रोल की दर पर चना दे दें जिसे वह पशुओ को खिलाने के काम मे लाए। दूध पर तो कट्रोल है नही। शासन के नियम का उल्लघन भी नही होगा और हमे लाभ भी होगा।" वावूजी ने इस पर हस कर कहा, "अपनी गर्ज के लिए शैतान भी वाइविल की आयतें पढता है। यह वात हम पर ठीक उतरती है।" सव चना वावूजी के आदेश से फिर क्षेत्रीय खाद्य अधिकारी को कट्रोल की दर पर दिया गया।

वावूजी का जिन भी सस्थाओ से सवध रहा और जिनके सचालन मे उनका हाथ रहा वहा कैसी भी परिस्थिति आई उन्होने अपने सिद्धातो अथवा नियम-पालन की नीति मे कभी शिथिलता नही आने दी; इस सवध मे कभी समझौता नही किया। जव कभी ऐसे अवसर आए जिनमे उनके सिद्धांतो का दूसरे पक्ष से टकराव हुआ, तव उन्होने अपने को पृथक् ही रखने का प्रयास किया किंतु सस्था के भीतर रहकर अपनी आत्मा का हनन करना उन्हे कभी सह्य नही रहा। सस्था के भीतर रहकर उसके सगठनात्मक स्वरूप को स्थिर रखना, आर्थिक तथा अन्य व्यवस्थाओ मे शुद्धता लाना, कार्य पद्धतियो मे परिमार्जन करके उन्हें नियमनिष्ठ

वनाना, उनका लक्ष्य रहता था।

वावूजी जव कही वाहर से इलाहावाद आते और अपने साथ कोई ऐसी वस्तु लाते जिस पर चुगी देय हो तो वह घर पहुचकर उसकी चुगी नगरपालिका के कार्यालय मे भेजवाना नही भूलते थे। अपने अतिम दिनो मे उनके मन मे यह बात आई कि सभव है कभी भूल से अपने कार्यों मे व्यस्त रहने के कारण इलाहावाद नगरपालिका को कोई चुगी देना रह गया हो। इसी प्रकार उनके मन मे आया कि दिल्ली, आगरा और कानपुर की नगरपालिकाओ को भी, जहा वह प्राय जाते रहते थे, देय चुगी कभी देना वह भूल गये हो। अत उन्होने इन सब नगरपालिकाओ को कुछ धन चेको से अपने अतिम दिनो मे यह लिखकर भेजा कि सभव है कभी चुगी देने से रह गई हो और इस धन को उस हिसाव मे जमा कर लिया जाय। आयकर विभाग को भी उन्होने तीन हजार रुपये की एक धनराशि यह कह कर दी कि सभव है कभी अपनी कोई आय, जिस पर आयकर देय रहा हो, वह अपनी आयकर विवरणी मे सम्मिलित करना भूल गये हो। आयकर अधिकारी को उन्होंने इस धनराशि की चेक भेजते हुए लिखा, "ऐसी सव भूलो के के उपलक्ष मे यह धनराशि मैं भेज रहा हू। इसे मेरे नाम से जमा कर लिया जाय।" आयकर अधिकारी स्वय उनसे मिले और यह कठिनाई वतलाई कि "इस प्रकार से धन जमा करने का कोई क्रम मेरे विभाग मे नही है, अत आपको यह धनराशि जमा करने की आवश्यकता नही है और इसे कृपा कर वापस ले लें।" किंतु वावूजी ने आग्रहपूर्वक उनसे कहा, "आप इस धनराशि को सरकारी किसी हिमाव मे जमा कर लें। इससे मेरी आत्मा को शाति मिलेगी।" विवश होकर आयकर अधिकारी को वह धनराशि जमा करनी पडी। इस प्रकार वावूजी को अपने अतिम क्षणो तक इस वात की चेतना वनी रही कि उनके द्वारा कभी कोई अनैतिक या नियम विरुद्ध कार्य न हुआ हो।

वात्सल्य भावना और विनोद प्रियता

वावूजी मे वात्सल्य की भावना भी वहुत थी। बच्चो से उन्हे बडा प्रेम था। वच्चो को अपने साथ भोजन कराने मे उन्हे वडी प्रसन्नता होती थी। विवाह आदि समारोहो पर जब हम सव भाई-वहिनो का परिवार एकत्र होता था, उस समय अपने नाती-पोतो के वीच मे वावूजी की प्रसन्नता देखते वनती थी। सभी वच्चो को वह अपने साथ भोजन कराने वैठा लेते थे। एक बडी सी थाली मे ये वालक भी अपने वावा नाना के साथ भोजन करके वहुत प्रसन्न होते थे।

वावूजी मे जहा एक ओर स्वभाव की दृढता थी वहा दूसरी ओर उनमे विनोद भाव की भी कमी नही थी। समय समय पर अपने मित्रो और सहयोगियो के वीच वह वडे सरस विनोद भी कर लेते थे।

व्यायाम और खेल-कूद मे रुचि

वावूजी का आरभ से ही यह विश्वास रहा था कि सफल जीवन के लिए स्वास्थ्य की ओर भी व्यक्ति को उतना ही ध्यान देना चाहिए जितना पढने-लिखने तथा अन्य कामो की ओर वह ध्यान देता है। बचपन मे वह स्वय नियमित रूप से व्यायाम करते थे और कुछ दिनो तक कुश्ती का भी अभ्यास किया था। हम वच्चो को भी वह वरावर नियमित व्यायाम करने के लिए प्रेरित करते रहते थे। सन् १९२३ मे जेल से छूटने के वाद जव उन्हे कुछ अवकाश मिला हम सव भाइयो को लेकर राम मदिर के अहाते मे जाते और स्वय व्यायाम करते तथा हम सवको सिखाते थे। अपने स्कूल और कालेज के जीवन मे खेलकूद मे भी वह वडी रुचि लेते रहे थे। क्रिकेट का खेल उनको वड़ा प्रिय था। कालेज मे वह क्रिकेट की टीम के कप्तान भी थे। हम सब बच्चे भी वाल्यकाल मे अपने घर के वाहर मैदान मे क्रिकेट खेलते तो वावूजी प्राय आ जाते और स्वय गेंद फेंक कर हम लोगो को सिखाते कि कैसे गेंद फेंकनी चाहिए। वल्ला पकडना और गेंद को मारने का ढग भी सिखलाते। उन्हें क्रिकेट का खेल इतना प्रिय था कि जव दिल्ली मे 'टेस्ट मैच' हो रहा था तव एक वार अपने व्यस्त कार्यक्रमो मे से समय निकाल कर उसे देखने भी गए थे। पार्लियामेट के सदस्यो ने एक वार क्रिकेट की मैच का भी आयोजन किया था, जिसमे एक टीम का कप्तान वावूजी को वनाया गया था, यद्यपि अपनी आयु और-स्वास्थ्य के कारण वह स्वय खेल मे सक्रिय भाग नही ले सके थे। क्रिकेट के प्रति उनके इतने प्रेम के कारण जव उनकी ७५वी वर्षगाठ दिल्ली मे श्री राधा-कृष्णन की अध्यक्षता मे मनाई गई तव उन्हें पार्लियामेट के सदस्यो की ओर से एक वैट (वल्ला) भेंट मे दिया गया था।

मननशील स्वभाव

वावूजी के स्वभाव मे एक विशेष गुण यह था कि वह प्रत्येक वात की गहराई मे विस्तार से जाते थे ओर कार्य मे पूर्णता की अपेक्षा रखते थे। यहा तक कि अपना आय-व्यय का हिसाव भी वह वहुत ध्यान से और पूरे विवरण के साथ रखवाते थे। हिसाव मे यदि एक पैसे का भी अतर हो जाय तो उसकी छानवीन जव तक पूरी तरह न हो जाय उनको सतोष नही होता था। उसमे चाहे जितना समय लग जाय उसकी उन्हें चिता नही रहती थी। इसी कारण उनका वहुत सा समय ऐसी छोटी-छोटी वातो मे चला जाता था जिसके कारण अन्य वड़े और महत्व के कार्य पिछड जाते थे। वावूजी का पूर्णता की अपेक्षा रखने का स्वभाव उनके भाषणो, लेखो और यहा तक कि पत्रो मे भी झलकता था। उन्हें कोई लेख लिखना होता था या जव वह भाषण देते थे तव एक एक शब्द नाप तोल कर प्रयोग करते

गलत आदमियो की परख प्राय नही कर पाते थे, और यही कारण है कि उनके द्वारा स्थापित सस्थाओ मे कभी कभी गति अवरोध रहा। उनके इस स्वभाव के पीछे उनके हृदय की सात्विकता थी जिसके कारण वह गलत व्यक्तियों पर भी शीघ्र विश्वास कर लेते थे। यही पर एक अन्य सज्जन की चर्चा करना भी असंगत न होगा। देवरिया के एक पुराने काग्रेस कार्यकर्ता, जो विधान सभा के भी सदस्य रह चुके थे, अपने को वावूजी का वडा भक्त कहते थे। वावूजी का भी उन पर वडा विश्वास था। जव कभी कोई व्यक्ति उन सज्जन के सवध मे कोई शिकायत करता था तो वह उसे नही मानते थे। वावूजी के निधन से कुछ ही महीनो पूर्व यह सज्जन उनके अतिथि के रूप मे स्थानीय लोक सेवक मडल के अतिथिगृह में ठहरे हुए थे। एक दिन अचानक वह विना कोई सूचना दिए चले गये और दो-तीन दिनो वाद यह सूचना मिली कि वह जिस दिन यहा से गए उसी दिन एक हत्या-काड मे अपने एक अन्य साथी के साथ इन्होंने भाग लिया और उसके वाद से भागे हुए हैं। जिस समय वावूजी को यह सूचना मिली उन्हें कितना आश्चर्य और क्लेश हुआ होगा इसकी कल्पना हम नही कर सकते।

वावूजी के स्वभाव का यह भी एक दोष समझा जाएगा कि वह यह अनुभव नही कर पाते थे कि प्रत्येक मनुष्य की अपनी निजी आवश्यकताए होती है जिनके कारण उसे अपने स्वार्थ की पूर्ति भी करनी पडती है। वह सभी से पूर्ण त्याग और निष्काम कर्म की अपेक्षा करते थे जो इस ससार मे सामान्य मनुष्य के लिए असभव है।

नैतिकता की भावना

नैतिकता और सच्चाई का पालन वावूजी ने जिस अश तक किया उसका उदाहरण विरले लोगो के जीवन मे मिलता है। स्पीकर के रूप मे उन्हे प्रदेश के भीतर तथा प्रदेश के वाहर सव स्थानो मे रेलयात्रा शासन के व्यय पर करने का अधिकार था। उन्हे यह भी अधिकार था कि वह चार शायिका का प्रथम श्रेणी का पूरा एक डिव्वा अपने लिए रेलयात्रा मे पृथक् आरक्षित करा लें। जव कभी हमारी माता या हम भाइयो मे से कोई उनके साथ रेलयात्रा करता था तव वह पृथक् डिव्वा तो आरक्षित करा लेते थे किंतु हमारी माता का या हम लोगो मे से जो भी उनके साथ उस डिव्वे मे यात्रा करता था उसका रेल टिकट अलग से खरीद लेते थे। इसी प्रकार जव कभी उन्हे अपने किसी पुत्र के विवाह मे वारात लेकर रेल-यात्रा करनी पडती थी तो वह स्पीकर-पद के अधिकार का उपयोग कर अपने लिए कोई पृथक् डिव्वा आरक्षित नही कराते थे। सव वारातियो के साथ अपना भी अलग टिकट खरीद कर ही रेलयात्रा करते थे। शासन का व्यय ऐसे अवसरो पर अपने ऊपर नही होने देते थे। शासन से सवधित आज के कितने लोग इस वात

का ध्यान रखते है कि अपने व्यक्तिगत प्रयोजन से की गई रेलयात्रा मे अपने पास से रेल का टिकट खरीदें। वावूजी इस वात का भी वडा ध्यान रखते थे कि शासन का उनके ऊपर व्यर्थ व्यय न हो। जव कभी अकेले यात्रा करनी होती थी तो वह केवल एक शायिका ही अपने लिए आरक्षित कराते थे, पूरा डिव्वा नही। इसी प्रकार सरकारी मोटर का उपयोग भी घर के कामो के लिए वह कभी नही होने देते थे, यद्यपि ऐसी कोई वाधा नियमो के कारण नही थी।

वावूजी की नैतिकता की भावना इतनी ऊची थी कि वह सरकारी और जनता की तथा अपनी व्यक्तिगत चीज के वीच वडा सूक्ष्म अतर करते थे। लखनऊ के स्पीकर भवन की वात है। एक दिन प्रात वावूजी अपने कार्यालय मे वैठे कुछ कार्य कर रहे थे। उन्होने मुझे (रानी टडन) वुलवाकर कुछ लिखने के लिए कहा। उस समय अपनी मेज़ पर से कागज़ न देकर मुझसे कहा, "वहा दूसरी मेज पर कागज़ और कलम आदि हैं, वही से लेकर लिख दो।" मैं नई-नई इस घर मे आई थी। उस समय तो समझ मे नही आया, पर वाद मैं समझी कि उनकी मेज़ पर सव सरकारी कागज़ कलम आदि थी। अत दूसरी मेज़ पर मुझे इस कारण भेजा था कि वहां उनकी निजी लेखन सामग्री थी।

वावूजी ने सदा इस वात का ध्यान रखा कि अपने पद और प्रतिष्ठा के कारण न तो वह कोई व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करें और न उनके वच्चे तथा अन्य कोई निकट सवधी ही ऐसा करें। जव कभी किसी ने थोड़ा भी सशय प्रकट किया कि उनके कारण उनके किसी निकट सवधी को किसी प्रकार का लाभ हुआ है तो वह तुरत विना सोचे कि वास्तव मे उसमे कितना तथ्य और कितनी सत्यता है उस सवधी को उस लाभ को त्याग देने के लिए आदेश दे देते थे। जव वह काग्रेस के अध्यक्ष थे तव पार्लमिंटरी वोर्ड मे उनके सामने कुछ सदस्यो द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि मुझे (रानी टडन) लोकसभा के होने वाले चुनाव मे काग्रेस की ओर से खड़ा किया जाय। वावूजी समझ गए कि यह प्रस्ताव उनके काग्रेस अध्यक्ष होने के नाते केवल मात्र उन्हें प्रसन्न करने के लिए किया गया है। उन्होने तुरत इसे अस्वीकृत कर दिया। इसी प्रकार की दो अन्य घटनाओ की चर्चा भी हम यहा कर रहे हैं —

काग्रेस ने जव उत्तर प्रदेश मे सन् १९३७ मे शासन का भार ग्रहण किया तव सहकारी समितियो के उप-रजिस्ट्रार के कुछ पद सृजित किए गए। हमारे छोटे भाई, अमी विंदु, ने भी इसके लिए अपना प्रार्थना-पत्र दिया। वह वी० काम० परीक्षा उत्तीर्ण था और इस पद के लिए निर्धारित योग्यता रखता था। चुनाव समिति द्वारा जिन लोगो का चयन हुआ उनमे इसका भी नाम था। कुछ ऐसे अभ्यर्थियो ने जिनका चुनाव नही हो सका था इस प्रकार की चर्चा फैलाई कि अमी विंदु का चुनाव इस कारण हुआ है कि वह स्पीकर टंडन के पुत्र हैं। इस

थे। प्रत्येक शब्द और वाक्य का अर्थ और आशय एकदम ठीक हो, उससे कोई अन्य अर्थ निकलने की सभावना न रहे, इसका वह बडा ध्यान रखते थे। साधारण से साधारण कुशल-क्षेम के समाचार का पत्र भी जब कभी उन्हे किसी को भेजना होता था तो उसे भी बिना स्वय देखे उन्हें सतोष नही होता था। प्रत्येक शब्द, अर्द्ध विराम और विराम को इतना ध्यान पूर्वक देखते थे जैसे उसमे भी साहित्य की पूर्णता भरना आवश्यक हो। कितना ही शुद्ध और ठीक अपनी ओर से कोई लिखे, बाबूजी को साधारणत वह पसद ही नहीं आता था। एक विराम की गलती पर या एक ऐसा शब्द प्रयोग होने पर जो उन्हें पसद नही, उन्हें स्वय चाकू या ब्लेड से उसे खुरचकर पुन ठीक करते हुए जिसने देखा है वही इस बात को समझ सकता है। यदि उनके द्वारा बोलकर लिखाए गए पत्र मे उनके सहायक से किसी शब्द के प्रयोग मे या लिखने मे कोई भूल हो जाती थी तो वह उसे ठीक कराते थे और आवश्यकता होती तो फिर से लिखवाते थे। अपने इस स्वभाव के कारण उन्हें अपना काम करने मे आवश्यकता से अधिक समय लग जाता था। किंतु यह भी सच है कि बाबूजी जो लिखते थे या बोलते थे उसमे भाषा की शुद्धता और शब्दो का चयन उच्चकोटि का होता था। इस सबध मे किसी कवि की निम्न लिखित उक्ति उन पर पूर्णत खरी उतरती है —

बोली तो अनमोल है, जो कोई जाने बोल।
हिये तराजू तौलकर, तब मुख बाहर खोल॥

बाबूजी लिखने पढने का ही नही अपना अन्य कोई काम भी दूसरो के सुपुर्द कर निश्चित नही रहते थे। कोई अतिथि घर मे ठहरा हो तो उसके खान-पान, स्नान आदि के छोटे से छोटे प्रबध को भी वह स्वय देखते थे।

बाबूजी के पास इतने अधिक पत्र आते थे कि उन सबका उत्तर स्वय लिखना उनके लिए सभव नही था। फिर भी उनका प्रयास रहता था कि वह स्वय ही सबका उत्तर लिखाए। फलस्वरूप पत्रो का उत्तर भेजने मे उन्हे सामान्य से अधिक विलब होता था। उनके इस स्वभाव से उनके मित्रगण परिचित थे। अत विलब से अपने पत्रो का उत्तर बाबूजी से मिलने पर उन्हें कोई क्षोभ नही होता था। जिन पत्रो के उत्तर देने की वह आवश्यकता नही समझते थे उन पर स्वय टिप्पणी लिख देते थे "उत्तर की आवश्यकता नही।"

सहानुभूति और दूसरो की सहायता की भावना

सबकी सब प्रकार से सहायता करने के लिए भी वह सदैव तत्पर रहते थे। अनेक निर्धन विद्यार्थियो तथा कार्यकर्ताओ की उन्होंने बराबर अपने जीवन के अत समय तक आर्थिक सहायता की। जिन दिनो वह रोग शैय्या पर पडे थे उन दिनो भी उनके पास स्थानीय विभिन्न वर्ग के निर्धन लोग आर्थिक सहायता के लिए पहुचते

रहते थे। बाहर से भी सहायता की याचना के पत्र उनके पास आते रहते थे। उन्होने कभी किसी याचक को निराश नही किया। प्रत्येक की यथा शक्ति सहायता की। उनकी चेक बुको को देखने से हमे पता चला कि कितनी बडी संख्या मे उन्होने लोगो को आर्थिक सहायता पहुचाई—किसी को शिक्षा के लिए, किसी को बीमारी मे उपचार के लिए, किसी को कन्या के विवाह के लिए आदि। उन्होने कभी बहुत धन अर्जित नही किया। किंतु जो कुछ भी सीमित धन उनके पास था वह दूसरो की सहायता मे व्यय होता रहा। अत मे थोडा सा जो धन अवशेष रह गया था उसके सवध मे भी अपने लिखित निर्देश द्वारा अपने दो पुत्रो और एक नाती, इन तीन सदस्यो का एक छोटा सा न्यास स्थापित कर गये और निर्देश दे गये कि उस धन से दुखियो की तथा शिक्षा के इच्छुक निर्धन विद्यार्थियो की हम सहायता करें। यह न्यास उनकी भावना के अनुसार निर्धनो की तथा विद्यार्थियो की सहायता करता रहता है।

दूसरों का शीघ्र विश्वास कर लेना

वावूजी के स्वभाव का एक दोप यह था कि वह दूसरो का विश्वास वहुत जल्दी कर लेते थे और एक वार जिस पर उनका विश्वास जम जाता था उसके विरुद्ध दूसरो की वातो को जल्दी नही मानते थे। इसका मूल कारण यही जान पडता है कि वह स्वय हृदय के वहुत शुद्ध थे और इस कारण सभी को सच्चा समझते थे। अपने इस स्वभाव के कारण उन्होंने अनेक लोगो से धोखा खाया। उनकी सस्थाओ को भी उनके इस सरल स्वभाव के कारण वहुत हानि पहुची। अनेक लोगो ने उनके इस स्वभाव का अनुचित लाभ उठाकर उनसे व्यक्तिगत रूप से लाभ उठाया और सस्थाओ से भी आर्थिक लाभ उठाया। उनके निधन से कुछ ही महीने पूर्व की एक घटना है। हिंदी विद्यापीठ, प्रयाग (जिसके वावूजी स्वय सस्थापक और अध्यक्ष थे) के प्रवंध मत्री ने विद्यापीठ से गलत तरीको से पर्याप्त धनराशि हडप ली थी। इस सस्था के कोपाध्यक्ष के नाते इन पक्तियो के लेखक ने कई वार वावूजी को वतलाया कि वह व्यक्ति जाली रसीदें वनवा कर विद्यापीठ का धन चुरा रहा है। वावूजी ने वहुत दिनो तक हमारी वात नही मानी। उनका यह विश्वास था कि वह व्यक्ति एक सपन्न परिवार का है और ऐसा नही कर सकता। इस वीच उस व्यक्ति ने विद्यापीठ का वहुत सा धन अपहृत कर लिया और फलस्वरूप विद्यापीठ पर एक वड़ा ऋण हो गया। वाद मे जाली रसीदो के साथ उन सज्जन की जव पूरी सही स्थिति वावूजी के सामने आई तव उन्हे विश्वास हुआ और उस व्यक्ति को पदच्युत किया गया। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमारी जानकारी मे हैं जव गलत व्यक्तियो ने उनके भोले स्वभाव के कारण उनसे अनुचित लाभ उठाया। अत हम कह सकते हैं कि वावूजी सही और

चर्चा की भनक बाबूजी के कानो मे पहुची। उन्होने तुरंत अमी को आदेश दिया कि वह इस पद को स्वीकार न करे। फलस्वरूप उसने इसे स्वीकार नही किया। इसी प्रकार हमारे बडे भाई, गुरुप्रसादजी, का चुनाव लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग मे रीडर के पद पर हो गया था। उस समय भी बाबूजी स्पीकर थे। गुरुप्रसादजी उस समय ग्वालिर के विक्टोरिया कॉलेज मे हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होने कॉलेज तथा विश्वविद्यालय की अपनी समस्त परीक्षाए उच्च श्रेणी मे उत्तीर्ण की थी। इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की एम० ए० हिंदी की परीक्षा मे उत्तीर्ण परिक्षार्थियो मे सन् १६३२ मे उनका प्रथम स्थान था। हिंदी साहित्य का उनका गहरा अध्ययन था और साहित्यिक के रूप मे हिंदी जगत मे उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। उनके साथ एक अन्य अभ्यर्थी थे जिनके कॉलेज और विश्वविद्यालय के परीक्षाफल हमारे भाई के समान उच्च नही थे, किंतु उन्होंने बनारस विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। उनका चुनाव नही हुआ था। यह चर्चा फैलाई गई कि गुरुप्रसादजी का चयन टंडनजी के पुत्र होने के नाते हुआ है, अन्यथा दूसरे अभ्यर्थी की योग्यता अधिक थी। यद्यपि बाबूजी को पहले से यह जानकारी भी नही थी कि गुरुप्रसाद जी लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग मे रीडर पद के लिए अभ्यर्थी थे और न उनका इस चयन मे कोई हाथ था, फिर भी जब उनके पास यह चर्चा पहुचाई गई तब उन्होने हमारे भाई से कहा कि वह इस पद को अस्वीकार कर दें। अत उन्होंने पद स्वीकार नही किया। बाबूजी के इस स्वभाव के कारण उनके पुत्रो को सदा हानि ही उठानी पडी। उनके पुत्रो ने उनके इस स्वभाव को जानते हुए उनसे कभी यह आशा तो नही की थी कि वह अपने प्रभाव से उनको अच्छे पद दिलवाएगे, किंतु जब उनको अपनी योग्यता के आधार पर कोई पद बिना बाबूजी के बीच मे पडे मिलता था और उसे स्वीकार करने से उन्हें रोक दिया जाता था तो पुत्रो को झुझलाहट होती थी। इसीलिए उनके पुत्रो ने अपनी-अपनी जीविका का मार्ग स्वय ढूढा, बाबूजी से किसी प्रकार की सहायता की अपेक्षा नही की। बाबूजी ने सदा यह चाहा कि उनके पुत्र तथा परिवार के अन्य लोग भी उतना ही त्याग करे जितना उन्होने स्वय किया था। सन् १६३०-३१ की बात है। उनके दो पुत्र जो अध्ययन मे विशेष कुशाग्र बुद्धि थे और जिन्होंने विश्वविद्यालय की परिक्षाए उच्च श्रेणी मे तथा उच्च स्थान के साथ उत्तीर्ण की थी अपने मित्रो तथा परिवार के कुछ ज्येष्ठ सदस्यो के परामर्श से आई० सी० एस० (इडियन सिविल सर्विस) की प्रतियोगिता परीक्षा मे सम्मिलित होने का विचार कर रहे थे। बाबूजी को जैसे ही उनके इस विचार की जानकारी हुई उन्होंने इन दोनो पुत्रो को बुलाकर कहा, "हम अग्रेजी शासन से स्वतत्रता की लडाई लड रहे हैं और तुम अग्रेजो की गुलामी के लिए आई० सी० एस० की नौकरी करना चाहते हो।"

यह सुनकर इन दोनो पुत्रो ने उक्त परीक्षा मे सम्मिलित होने का अपना विचार त्याग दिया।

देश के एक वरिष्ठ नेता होने के कारण वावूजी को देश के विभिन्न भागो और अचलो से विभिन्न संस्थाओ द्वारा समय-समय पर अनेक वस्तुएं भेंट स्वरूप प्राप्त होती रही थी। उनमे कई वस्तुए कला की दृष्टि से अत्यत सुदर और मूल्यवान थी। ऐसी कुछ वस्तुएं हम लोग अपने पास स्मृति स्वरूप रखना भी चाहते थे किंतु वावूजी कहते थे कि वे सव चीजें उन्हें सार्वजनिक सेवाओ के उपलक्ष मे मिली हैं, अत उन पर उनका व्यक्तिगत अधिकार नही है। अस्तु, इस प्रकार भेंट मे प्राप्त सभी वस्तुओ को वह हिंदी साहित्य सम्मेलन को दे देते थे। वावूजी वहुत सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन करते थे कि किस चीज़ पर उनका व्यक्तिगत अधिकार है और किस पर जनता का। देश सेवा के उपलक्ष मे किसी प्रकार का व्यक्तिगत लाभ उठाना वह अपने सिद्धात के विरुद्ध समझते थे।

मित्रो और सहयोगियों के लिए प्रेम भावना

वावूजी को अपने मित्रो का वडा ध्यान रहता था, और प्राय उनके आग्रह की रक्षा के लिए अपने सामान्य नियमो मे वह कुछ ढिलाई भी वरत लेते थे। वह अग्रेजी दवाओ के सदा विरुद्ध रहे। प्राकृतिक चिकित्सा और प्राकृतिक जीवन मे ही उनका विश्वास था। वैद्यक और हकीमी मे प्रचलित जड़ी-वूटियो के भी वह विरुद्ध नही थे किंतु इनमे मान्य खनिज औपधियो के विरुद्ध थे। जव कभी वह वीमार पड़ते थे परिवार के हम सव,लोगो तथा उनके निकट के मित्रो के लिए एक समस्या रहती थी कि उन्हें दवा किस प्रकार खिलाई जाय। कानपुर निवासी डॉ० मुरारीलालजी, जो प्रदेश के एक वरिष्ठ काग्रेस नेता भी थे, वावूजी को अपना छोटा भाई मानते थे। वह जव तक जीवित रहे वावूजी की प्रत्येक वीमारी की सूचना मिलते ही उनके पास पहुच जाते थे और उनकी चिकित्सा का पूरा भार अपने ऊपर ले लेते थे। घर के हम सव लोग भी डॉ० मुरारीलालजी के आ जाने से निश्चित हो जाते थे, क्योंकि डॉ० साहव ही ऐसे व्यक्ति थे जिनके आग्रहवश वावूजी कुछ दवा ले लेते थे। कितनी वातें वनाकर और कितना समझा-वुझाकर वह वावूजी को दवा देते उसका पूरा चित्र आज भी हमारे सामने है। उनके स्नेह और आग्रह के कारण वावूजी को न चाहते हुए भी दवा लेनी पडती थी। इसी प्रकार वावूजी अन्य अवसरो पर भी अपने मित्रो के स्हनेहपूर्ण आग्रह को मान लेते थे जिससे उनके मित्रो को क्लेप न हो।

वावूजी मे दूसरो के दु ख से कातर होने तथा उनकी सहायता करने का गुण प्रचुर मात्रा मे था। फतेहगढ़ के सेंट्रल जेल के अपने सस्मरण मे श्री रघुवर दयाल भट्ट ने लिखा है, "इस जेल मे विच्छू वहुत थे और हम सव कैदियो को

जमीन पर सोना पडता था। रात्रि मे किसी राजनीतिक कैदी को विच्छू काट खाए तो आप (बावूजी) स्वय जाते और जेल के डाक्टर को बुलाकर पीडित का सम्यक प्रकार से उपचार करा कर ही आते।"

कला प्रेम

जनता द्वारा मनाए जाने वाले समारोहो मे वावूजी छोटे वडे सब के साथ खुले हृदय से भाग लेते थे। दशहरे के दल मे प्राय लोगो के साथ-साथ पैदल चलते थे। होली भी अपने मित्रो और सहयोगियो के साथ वडे उल्लास मे मनाते थे। हिंदी के वीर रस के कवि प० माधव शुक्ल इनके वचपन के साथी थे। होली के सम्मिलन समारोह का आयोजन प्राय वावूजी के घर पर वडी धूमधाम से किया जाता था। इसमे प०माधव शुक्ल का गाना तथा अन्य लोगों द्वारा गान और कविता पाठ मुख्य आकर्षण रहते थे। प० माधव शुक्ल के साथ वावूजी ने अपनी युवावस्था मे एक नाटक मडली का भी सगठन किया था। इस मडली ने कई नाटको का प्रदर्शन नगर के भारती भवन अचल मे किया था। प० माधव शुक्ल और प० वाल कृष्ण भट्ट के सुपुत्र प० महादेव भट्ट वडे अच्छे कलाकार थे। वावूजी ने भी कलाकार के रूप मे इन लोगो के साथ कई नाटको मे भाग लिया था। वावूजी मे आरभ काल से ही साहित्य और कला के प्रति रुचि थी। सितार और हारमोनियम भी वह अच्छा वजा लेते थे। शास्त्रीय सगीत की भी उन्हे परख थी। इसी प्रकार अपने मुसलमान मित्रो और सहयोगियो के साथ उनके त्योहारो—ईद, मुहर्रम आदि—मे भी वह सम्मिलित होते थे। उनमे किसी प्रकार की सकुचित भावना नही थी।

स्वभाव की कमजोरिया

जहा एक ओर बाबूजी मे अनेक ऐसे गुण थे जिन्हे आदर्श रूप माना गया है वही दूसरी ओर उनके स्वभाव मे कुछ कमजोरिया भी थी। वह चाहते थे कि जो विचार उनके थे वही उनके घर के तथा निकट के लोगो के भी हो। हमारी माता धार्मिक प्रवृत्ति की थी और पुरानी रूढियो को मानने वाली थी। वह घर मे पुरानी मान्यताओ के अनुसार वहुत प्रकार के पूजा-पाठ करती रहती थी। वावूजी इन पूजा-पाठ के आयोजनो के प्रति सदा उदासीनता और उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करते थे। कभी कभी ऐसे आयोजनो को घर मे कराने पर अपनी अप्रसन्नता और असहयोग भी प्रकट कर देते थे जिसके कारण हमारी माता के मन को ठेस पहुचती थी, किंतु वावूजी को उनकी भावनाओ की चिंता नही रहती थी।

वावूजी मे हठ-धर्मिता भी वहुत अश तक थी। वह जो निश्चय एक बार कर लेते थे उससे जल्दी विमुख नही होते थे। अपने छोटे पुत्रो के संवध मे भी यदि

कोई वात उन्होने निश्चय कर ली है तो हठपूर्वक उसका पालन कराना चाहते थे। उस समय वह यह नही सोचते थे कि छोटे वालको के मन पर क्या प्रभाव पड रहा है। सन् १९२४ मे जव हिंदी विद्यापीठ अपने वर्तमान स्थान* पर स्थानान्तरित किया गया तो उन्होने विचार किया कि वहा प्राचीन आश्रम पद्धति पर एक विद्यालय आरभ किया जाय। हमारे दो छोटे भाइयो, अमी विन्दु और आनन्द कुमार, को जिनकी आयु क्रमश ८ और ६ वर्ष की थी विद्यापीठ मे रहने के लिए वाध्य किया। उस छोटी अवस्था मे ये वच्चे अपनी मा से अलग रहना नही चाहते थे। दोनो वहुत रोए किंतु उन्होने ध्यान नही दिया और उन्हे विद्यापीठ पहुचा दिया। इन्ही के साथ श्री वियोगी हरिजी का ममेरा भाई लक्ष्मण भी था जिसकी आयु भी लगभग ६ वर्ष की थी। दो-चार दिनो वाद ही ये वच्चे वहा से अकेले घर वापस आ गए। तव हमारी मा के वहुत कहने पर वावूजी ने इन वच्चो को वहा रखने के अपने हठ को छोडा।

वावूजी मे एक कमजोरी वहुत शीघ्र क्रोधित हो जाने की भी थी। यह सच है कि वह साधारणत क्रोध तभी प्रदर्शित करते थे जव कोई ऐसी वात होती थी जिसमे उन्हे अन्याय या अनैतिकता जान पडती थी। किंतु प्राय छोटी-छोटी वातो पर भी वह वहुत जल्दी क्रोधित हो जाते थे। उन्हे इस वात का ध्यान नही रहता था कि सामान्यत. मनुष्यो मे कितनी कमजोरिया होती हैं और उन कमजोरियो का ध्यान रखते हुए लोगो की छोटी-छोटी भूलो को क्षम्य समझा जाना चाहिए। वह प्रत्येक व्यक्ति से आदर्श आचरण की अपेक्षा रखते थे जो इस ससार मे सभव नही है।

वावूजी का वाह्य रूप प्राय लोगो को कठोर लगता था किंतु उनका हृदय वडा कोमल था और उनमे अगाध स्नेह था। सत्य के प्रति उनमे जो अटूट आस्था थी उसी के कारण उनके विचारो मे वडी दृढता थी और सभवत इसीलिए जव कभी वह किसी को ठीक मार्ग से विचलित हुआ पाते थे तो उसके प्रति वहुत कठोरता का रूप धारण करते थे। वह सत्य और ईमानदारी से विमुख व्यक्ति को क्षमा नही करते थे। उनकी मृत्यु से कुछ ही महीने पूर्व की एक घटना का हमे स्मरण है। वावूजी पटेल स्मारक निधि के इस प्रदेश के सयोजक थे। सर्वोदय के एक अच्छे कार्यकर्ता के सुपुर्द कुछ धन कुछ ग्रामो के निर्धन क्षेत्रो मे कुए वनवाने के लिए किया गया था। उन कार्यकर्ता महोदय ने वह धन कुए वनवाने मे न व्यय' कर अन्य कामो मे व्यय कर लिया था। उनसे वरावर हिसाव मागा जा रहा था और वह इसे देने मे कतरा रहे थे। अत मे विवश होकर एक दिन वावूजी के सामने

*इलाहावाद नगर से लगभग ८-१० किलोमीटर दूर यमुना नदी के दूसरे तट पर महेवा गाव मे।

आकर उन्हे स्वीकार करना पडा कि जो धन उन्हे पटेल स्मारक निधि से दिया गया था वह उन्होने अन्य कार्यों मे व्यय कर लिया था। अपनी लबी अस्वस्थता के कारण बावूजी का शरीर बहुत दुर्बल और अशक्त हो गया था और वह बिना किसी सहारे के चारपाई पर बैठ भी नही पाते थे। उन कार्यकर्ता महोदय की बात सुनते ही बावूजी का समस्त शरीर क्रोध से कांपने लगा और अशक्त होते हुए भी उन्होने उन सज्जन को कडे शब्दों मे बडे ज़ोर से डाटा और कहा, "तुमने बड़ी भारी चोरी की है।" तुरत बनारस से कर्ण भाई बुलाए गए। उन्होंने अपने इन सर्वोदयी सहयोगी द्वारा अन्य कार्यों मे प्रयुक्त की गई पटेल स्मारक निधि की धनराशि को शीघ्र वापस करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और बावूजी को शात किया। उन सर्वोदयी कार्यकर्ता के प्रति बावूजी की पहले बहुत अच्छी धारणा थी। इस घटना से उन्हे बडा दु ख हुआ। इसके बाद लगभग चार-पाच महीने तक जब तक बावूजी जीवित रहे, कई बार उन्होने हमसे उन सर्वोदयी नेता के छली रूप की चर्चा की और अपनी निराशा व्यक्त की। ऐसे ही अवसरो पर बावूजी का उग्र और कठोर स्वरूप दिखलाई देता था, अन्यथा वह बहुत सरल और स्नेहशील थे। उन पर निम्नलिखित उक्ति पूर्णत: चरितार्थ होती है—

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि"।

उनके निकट के सभी लोग उनके इस स्वभाव से परिचित थे। हम सब भी उनके बहुत शीघ्र क्रोधित हो जाने के स्वभाव के कारण उनसे कुछ अलग-अलग सा ही रहते थे। अपने किसी कार्य या परामर्श के लिए हम सब भाई बहिनो का और कुछ अश तक हमारी मा का भी साहस उनके पास शीघ्र जाने का नही होता था। यह भय रहता था कि कही उन्हे कोई बात पसद न आई तो वह क्रोधित होकर झिड़क देंगे।

अपनत्व की भावना

जहा एक ओर लोग उनसे भयभीत रहते थे दूसरी ओर उनके प्रति बड़ा स्नेह भी व्यक्त करते थे। नगर के जिस अचल मे उनका जन्म हुआ था और जहा उनका बाल्य-जीवन तथा युवावस्था के कुछ वर्ष व्यतीत हुए थे वहा के निवासियो के प्रति तथा बाल्यकाल के अपने साथियो के प्रति उनके हृदय मे बडा स्नेह था। अपने व्यस्त कार्यक्रमो मे से जब उन्हे समय मिलता था वह उस अचल मे पहुचते थे और वहा के निवासियो से बडे स्नेह और अपनत्व से मिलते थे। उनके सुख-दु ख की बातें सुनते थे, उचित परामर्श देते थे और यथाशक्ति अन्य प्रकार से आवश्यक सहायता भी करते थे। जिन दिनो बावूजी उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष थे, उन्हे अधिकतर लखनऊ मे रहना पडता था। उन दिनो भी जब उन्हे इलाहाबाद आने का अवसर मिलता था, चाहे एक दिन के लिए हो, यहां पहुचते

ही वह एक वार अपने मोहल्ले में अवश्य जाते थे और वचपन के अपने साथियो से तथा अपने कुटुम्व की विभिन्न शाखाओ के सदस्यो से मिलते थे। काग्रेस के अध्यक्ष होने के वाद जव वह इलाहावाद आए तव स्वागत समारोह से मुक्ति पाते ही सवसे पहले अपने पुराने अहियापुर मोहल्ले मे गये और अपने कुटुम्वीजनो के घर जाकर ज्येष्ठ महिलाओ से, जो कोई दूर के रिश्ते मे उनकी चाची थी और कोई वुआ थी, आशीर्वाद प्राप्त किया। अपने कुटुम्व के ज्येष्ठ पुरुषो और महिलाओ के प्रति वे सदा आदर और सम्मान प्रदर्शित करते थे। अपने वच्चो के विवाह आदि सस्कारो के ममय वह सदा कुटुम्व के ज्येष्ठ पुरुप और ज्येष्ठ महिला को ही आगे रखते थे, चाहे वे किसी शाखा के हो, और उन्हे मान देते थे। कुटुम्व की दूर तथा निकट की प्रत्येक शाखा के सदस्यो के प्रति वह समानरूप से अपनत्व और स्नेह प्रदर्शित करते थे और यही कारण था कि हमारे कुटुम्व की विभिन्न शाखाओ के छोटे वडे सभी पुरुषो और महिलाओ का स्नेह उन्हे सदा मिला।

□

आध्यात्मिक जीवन

बाबूजी मुख्य रूप से एक आध्यात्मिक पुरुष थे। देश और समाज की परिस्थितियो ने उन्हे राजनीति मे खीच लिया था। किन्तु राजनीति में रहते हुए भी उन्होने अपना आध्यात्मिक मार्ग नही छोडा। उनके प्रत्येक कार्य के पीछे चितन और मनन रहता था और ईश्वरीय प्रेरणा होती थी। इसी कारण किसी गभीर प्रश्न या समस्या पर वह एकदम निश्चय नही कर पाते थे। समस्या पर गभीर चितन करते थे और अतरात्मा से प्रेरणा प्राप्त कर वह अपना निश्चय प्रकट करते थे और फिर उस निश्चय पर अटल रहते थे। कोई भी तब उन्हे उनके निश्चय से डिगा नही सकता था। कहा जाता है कि राजनीति मे सब प्रकार के छल-कपट ग्राह्य और मान्य हैं किंतु बाबूजी ने कभी यह सिद्धांत नहीं माना। उन्होंने राजनीति मे भी सत्य की स्थापना का ही सदा प्रयत्न किया। यदि सत्यता मे उन्हें कही किंचितमात्र भी सशय दिखलाई देता था तो वह तुरत उसका विरोध करते थे। सन् १९४० की एक घटना है। अखिल भारतीय काग्रेस समिति की एक वैठक ववई मे हो रही थी और उसमे यह विचार किया जा रहा था कि देश मे आदोलन आरभ करने के लिए क्या योजना वनाई जाय। एक प्रस्ताव काग्रेस की महासमिति की ओर से प्रस्तुत किया गया जिसमे एक स्थान पर यह कहा गया कि काग्रेस के सदस्यो का अहिसा मे पूर्ण विश्वास है। वावूजी ने तुरत प्रस्ताव के इस अश का तीव्र विरोध किया और कहा, "यह कहना पूर्णत असत्य है कि काग्रेस के सव सदस्यो का अहिसा मे पूर्ण विश्वास है।" अपने भाषण मे उन्होने यहा तक कहा कि यह प्रस्ताव हमे असत्य वोलना सिखला रहा है। प्रस्ताव गाधीजी द्वारा लिखा गया था। वाद मे गाधीजी ने स्पष्टीकरण करते हुए दु ख प्रकट किया और कहा, "टडनजी ने यह लाछन लगाया है कि मैं इस प्रस्ताव द्वारा काग्रेस के सदस्यो को असत्य वोलना सिखलाना चाहता हू।" वावूजी के भाषण के वाद प्रस्ताव मे कुछ सशोधन किया गया। वावूजी को यह ज्ञात भी नही था कि वह प्रस्ताव स्वय

गांधीजी ने तैयार किया था। किंतु यह ज्ञात होने पर भी उनके दृष्टिकोण मे अतर न आता। सत्य के प्रति उनमे अटूट आस्था थी। असत्य के साथ अपने जीवन मे उन्होंने कभी समझौता नही किया। इसके लिए वडे से वडा त्याग भी उनके लिए नगण्य था।

आचार्य विनोवा भावे के जीवन का यह क्रम रहा है कि वह कभी किसी नेता या महापुरुष की प्रतिमा का अनावरण करना स्वीकार नही करते थे। अपने जीवन मे प्रथम वार उन्होंने एक ही महापुरुष की प्रतिमा का अनावरण करना स्वीकार किया और वह थे वावूजी। हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वारा निर्मित करायी गयी वावूजी की प्रतिमा का अनावरण करने विनोवाजी २० दिसवर सन् १९६८ को प्रयाग आये थे। अनावरण करते समय अपने भाषण मे उन्होने कहा था—

"...एक वात मैं और कहना चाहूगा कि मैंने अनावरण करना स्वीकार किया वह टडनजी की जो विविध सेवाए—राजनीतिक क्षेत्र मे, रचनात्मक क्षेत्र मे और हिंदी के क्षेत्र मे थी, लेकिन उससे आकर्षित होकर मैं यहा आया नही हू। मैं आया हू जो टडनजी की सत्यनिष्ठा थी, वह जो उनका महान गुण था, उससे मेरा हृदय खिच गया। मैं मानता हूं एक मामले मे गाधीजी की जो निष्ठा थी—सत्यनिष्ठा—वैसे ही टडनजी की निष्ठा थी; और कभी उनके व्यक्तिगत जीवन, राजनीतिक क्षेत्र मे काम करते हुए, या किसी भी क्षेत्र मे काम करते हुए भी, उन्होने आश्रय लिया होगा झूठ का, यह सभव नही। इतने अत्यत निष्ठावान ये युग पुरुष अत्यत निष्ठ थे। तो वह जो उनमे सत्य की उपासना का गुण था उससे मै अधिक से अधिक प्रभावित हुआ हू और इसीलिए आया हूं।..."*

इस देश मे ऋषियो और महर्षियो की एक ऊची परपरा रही है। वावूजी भी उसी परपरा के एक महापुरुष थे। वह एक सत थे और ससार मे रहते हुए भी निर्लिप्त थे। सासारिक कार्यों मे सलग्न रहते हुए भी उनका वहुत-सा समय आध्यात्मिक चितन और मनन मे व्यतीत होता था।

हमारे वावा और हमारी दादी के द्वारा छोटी अवस्था मे ही राधास्वामी सत्सग से उनका सबंध हो गया था और इस सप्रदाय के द्वितीय गुरु हुजूर महाराज से उन्होंने छोटी आयु मे ही वचन और उपदेश लिया था। अपने जीवन के विभिन्न कार्यों मे व्यस्त रहते हुए भी वह प्रायः सत्सग मे जाते रहते थे। इलाहावाद मे रहते हुए प्रत्येक रविवार को तो वह सत्सग मे अवश्य ही जाते थे। राधास्वामी एक सत सप्रदाय है और देश के सभी सतो के वचनो और वाणियो को इसमे मान्यता प्राप्त है। इस प्रकार वावूजी पर वाल्यकाल से ही सत-सप्रदाय

* राष्ट्रभाषा संदेश, भाग ४, अंक १३-१४, प्रयाग, १ तथा १६ जनवरी, १९६९।

का प्रभाव पडा। मतो की वाणियो की छाप उनके जीवन मे वरावर वनी रही और इसी के अनुरूप अपने जीवन को ढालने की उन्होने सदा चेष्टा की। वह हिंदू धर्म मे व्याप्त अध-विश्वासो और रूढियो के विरोधी थे। हमारी मा, जो मुख्यत सनातन धर्म के कर्मकाडो मे विश्वास रखती थी, द्वारा की जाने वाली विभिन्न पूजा आदि के प्रति वावूजी सदा उदासीनता प्रकट करते थे। सत्यनारायण की कथा का आयोजन जव कभी हमारी मा कराती तो वावूजी उन्हें समझाते कि इस कथा को कराने से कोई लाभ नही, यह केवल एक रूढिमात्र है। हम सव को सत्य का आचरण करना चाहिए, वही वास्तव मे सत्यनारायण की पूजा है। इसी प्रकार वह कहा करते थे कि दुर्गा सप्तशती का पढना और समझना तथा उसके अनुसार व्यवहार करना मनुष्य के चरित्र-निर्माण मे सहायक हो सकता है, किंतु केवल उसका विना समझे-वूझे पाठ करना या पडितो से कराना निरर्थक और रूढिवादिता मात्र है। यही भावना उनकी अन्य सव धर्मग्रथो के सवध मे भी थी। रामायण तथा विभिन्न धर्म ग्रथो का उनका अध्ययन कितना गहन था इसकी झाकी उनके समय-समय पर दिए गए भाषणो से मिलती है।

राधास्वामी सत्सग मे वावूजी की गणना एक ऊचे आध्यात्मिक पुरुष के रूप मे वरावर थी। आगरा मे स्थित स्वामीवाग के अतिम गुरु, वावूजी महाराज, उनको पुत्रवत् मानते थे और चाहते थे कि वह राजनीति से हटकर मुख्य रूप से सत्सग मे अपना समय लगाए। वावूजी महाराज के समाधिस्थ होने पर सभी सत्सगियो ने स्वामीवाग के गुरु के पद को ग्रहण करने के लिए वावूजी से वडा आग्रह किया, किंतु उन्होने इस आसन पर वैठना स्वीकार नही किया। स्वामीवाग न्यास के अध्यक्ष के रूप मे सत्सग के क्रिया-कलापो का सचालन मात्र करते रहे। गुरु के इसी आसन पर वैठने के लिए वाद मे कितने सत्सगियो मे परस्पर झगडे हुए और सत्सग मे वैमनस्य वढा, किंतु वावूजी ने इसे तिनके की भाति त्याग दिया था। पदो और सम्मानो के प्रति ऐसी निस्पृहता ऊचे सतो मे ही मिलती है।

राधास्वामी मत के अनुयायी होते हुए भी कभी दूसरे धर्मों और उनमे व्यक्त विचारो के प्रति उनके मन मे कोई सकुचित भावना नही रही। सभी धर्मो के अच्छे विचार उन्हें ग्राह्य थे। गीता का उनके जीवन पर वड़ा प्रभाव था। हम सव वच्चो को उन्होने गीता का द्वितीय अध्याय कठस्थ कराया था और प्राय जव उन्हे अवकाश मिलता था हम सव को साथ वैठाकर इसका पाठ सुनते थे और इसमे निहित विचारो की विवेचना करते थे। उनके जीवन मे गीता के कर्मयोग और साख्ययोग का अपूर्व सम्मिलन था। कर्म, विकर्म और अकर्म, गीता मे प्रति-पादित कर्म के तीनो रूप उनके जीवन कार्यों मे झलकते थे। स्वधर्म का निष्ठा-पूर्वक पालन करना और उसमे अपना पूरा चित्त लगा देना तथा साथ ही उसके फल की कोई चिंता न करना यही उनके जीवन का सिद्धात था। ईश्वर ने उन्हे

जन्म दिया है, उसने उन्हे केवल स्वधर्म के अनुसार कर्म करने के लिए माध्यम मात्र बनाया है, उन्हें कर्म से उत्पन्न लाभ तथा परिणाम की चिता अपने लिए नही करनी है, यही उनकी विचारधारा थी और इसी से प्रेरित होकर उन्होने जीवन भर कर्मयोग की धूनी रमाई। इस विचारधारा ने उनमे एक अनोखी निर्लिप्तता की भावना भर दी थी। ससार मे रहते हुए भी वह एक प्रकार से ससार के राग-रंग से अलग थे। उन्होने कभी दैहिक तथा भौतिक सुखो की चिंता नही की।

वेद, पुराण, बाइबिल, कुरान आदि सभी धर्म ग्रथो का उन्होने अध्ययन किया था और सतो तथा सूफियो की वाणियो का तो उन्होने बडी गहराई से मनन किया था। इन सब का उनके आध्यात्मिक जीवन पर एक अमिट प्रभाव पडा था। रामायण को वह एक उच्च कोटि का न केवल धार्मिक ग्रथ मानते थे, वरन् हिंदू समाज के जीवन-दर्शन का एक प्रतीक समझते थे। प्राय अपने भाषणो मे वह सकेत करते थे कि तुलसीदासजी ने अपने रामचरितमानस मे समाज के जिस रूप की चर्चा की है वह एक ऊचा रूप है, और उसी के अनुरूप हिंदुओ को अपने समाज को बनाना चाहिए। उनका विचार था कि यदि राम और सीता के चरित्र का अनुकरण करने की चेष्टा समाज का प्रत्येक पुरुष और स्त्री करे तो हमारे समाज का जीवन सुखी और सार्थक हो सकता है।

उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन बस्ती मे ६ और ७ नवबर १९५४ को आयोजित किया गया था। प० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' इसके सभापति थे। प० गोविन्दवल्लभ पत ने सम्मेलन का उद्घाटन किया था। इस अधिवेशन मे उत्तर प्रदेश शासन के कई मत्रीगण भी उपस्थित थे। मैं (सत प्रसाद) भी एक प्रतिनिधि के रूप मे बाबूजी के साथ सम्मिलित होने अधिवेशन मे गया था। अधिवेशन की समाप्ति के बाद दूसरे दिन बस्ती के निकट मगहर स्थान पर स्थित सत कबीर की समाधि पर श्रद्धाजलि अर्पित करने हेतु एक समारोह आयोजित किया गया था और सम्मेलन के अधिकाश प्रतिनिधि वहा गए थे। बाबूजी और सम्पूर्णानन्दजी के साथ मैं भी वहा उपस्थित था। वहा बाबूजी और सम्पूर्णानन्दजी दोनो के प्रवचन हुए। बाबूजी का कबीर की आध्यात्मिक विचारधारा पर जो प्रवचन उस दिन हुआ उससे बाबूजी के आध्यात्मिक ज्ञान और चिंतन की गहराई का अनुमान हम सब लोगो को हुआ। उनके प्रवचन मे जहा एक ओर कबीर के आध्यात्मिक सिद्धातो का विश्लेषण था वही दूसरी ओर उनके स्वय के ऊचे आध्यात्मिक विचारो की झाकी थी। सभी उपस्थित लोग बाबूजी के उस भाषण से बडे प्रभावित हुए और उन्हे कबीर की विचारधारा के सबध मे स्पष्ट मार्ग-दर्शन मिला।

कबीर के साहित्य का उन पर बहुत गहरा प्रभाव था। वह प्राय अपने

भाषणो मे कबीर के दोहो का उल्लेख किया करते थे। उनका बडा प्रिय कबीर का दोहा था—

"यह चादर सुर नर मुनि ओढी, ओढ़ि कै मैली कीन्ह चदरिया।
दास कबीरा जतन तें ओढी, ज्यो की त्यो धरि दीन्ह चदरिया।"

उनके जीवन को सदा सत्य ने आलोकित किया और कबीर के शब्दो मे उन्होंने अपनी चादर बिना मैली किये उतारकर ससार से विदा ले ली।

□

अंतिम दिन

बाबूजी सन् १९५७ से ही रोगग्रस्त रहने लगे थे। नववर के महीने मे अचानक वह दिल्ली मे वीमार पड गए। निमोनिया का गभीर प्रकोप हुआ था। उनके स्वास्थ की ओर से सभी को गहरी चिंता हो गई। सभी मत्रीगण और राष्ट्रपति राजेन्द्र वाबू भी उन्हें देखने आए। इस वीमारी से वह लगभग एक मास की चिकित्सा के वाद कुछ ठीक हुए किन्तु इसके वाद से उनका स्वास्थ्य पूर्ण रूप से कभी ठीक नही हो पाया। उन दिनो वह राज्यसभा के सदस्य थे और जव स्वस्थ्य रहते तो उसकी वैठको मे सम्मिलित होते, अन्यथा नही। सन् १९५९ के मई मास मे वह प्रयाग आए और उसके वाद से वरावर अस्वस्थ ही रहे। फिर दिल्ली पुन वापस नही जा सके। इसी वीच जव उन्होने यह अनुभव कर लिया कि अव वह रोग मुक्त नही हो पाएगे तव कुछ ही महीनो वाद उन्होने राज्यसभा की सदस्यता से अपना त्याग-पत्र भेज दिया। यद्यपि उनसे अनेक लोगो ने कहा कि वह अपना त्याग-पत्र न दें पर उनका उत्तर था, 'जव मैं स्वय समझता हू कि अव राज्यसभा की वैठको मे उपस्थित होना मेरे लिए सभव नही हो सकेगा तव सदस्य वने रहना अनैतिकता है।' अन्य कुछ सस्थाओ से भी जिनके सचालन का भार उनके ऊपर था और वह यह अनुभव कर रहे थे कि अपनी अस्वस्थता के कारण इन सस्थाओ के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह वह अव नही कर सकेंगे, उन्होंने अपना त्याग-पत्र एक के वाद एक दे दिया। ये सस्थाए थी भूदान यज्ञ समिति (सेवापुरी), हर प्रसाद शिक्षा निधि (वाराणसी), हिन्दी विद्यापीठ, प्रयाग, उत्तर प्रदेश पटेल स्मारक निधि तथा गौरी पाठशाला (इलाहावाद)। इन सवके अध्यक्ष-पद से धीरे-धीरे उन्होने अपने को मुक्त कर लिया।

उनका शरीर धीरे धीरे क्षीण होता गया, और वह फिर रोग शैय्या से उठ न सके। लगभग तीन वर्षो तक रोगग्रस्त रहने के वाद रविवार १ जुलाई सन् १९६२ को प्रात ९ वजकर ५५ मिनट पर वह चिरनिद्रा मे लीन हो गए। अपने

अतिम दिनो मे उन्हे गाधीजी की तरह एक ही बडा क्लेश था और वह यह कि जिस प्रकार के स्वराज्य की कल्पना उन्होने और उनके पूर्व के नेताओ ने की थी उस प्रकार का स्वराज्य इस देश मे स्थापित न हो सका ।

उनकी अतिम यात्रा पाच वजे सन्ध्या को अतरसुइया मे स्थित उनके पाचवें पुत्र, आनन्द कुमार, के घर से आरभ हुई और रात्रि मे लगभग दस वजे सगम के तट पर समाप्त हुई । वहा उनका अतिम सस्कार उनके ज्येष्ठ पुत्र, स्वामी प्रसाद जी, ने किया । अपने इस अनन्य राष्ट्रसेवी की अतिम यात्रा मे इलाहावाद नगर की कई लाख शोकाकुल जनता अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिए एकत्र हुई थी । प्रदेश तथा देश के अनेक वरिष्ठ नेता भी इस यात्रा मे सम्मिलित हुए थे । प्रदेश के मुख्यमत्री श्री चन्द्रभानु जी गुप्त तो उनकी अर्थी के साथ ही पूरी यात्रा तक वैठे रहे । उनके अनन्य स्नेही और सहयोगी लाल वहादुरजी शास्त्री भी पूरी यात्रा मे साथ रहे ।

अपने अतिम दिनो मे वावूजी को विभिन्न प्रकार की चिन्ताओ ने घेर रखा था जिनका कुछ आभास उनकी वातो से हमे मिलता रहता था । एक वडी चिंता उन्हे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से थी जिसकी स्थापना मे उनका विशेष हाथ था और जिसके पोषण मे उन्होने अपना समस्त जीवन लगाया था । सम्मेलन दलगत राजनीति के चक्र मे फस गया था । न्यायालय के निर्णय से वहा आदाता का शासन था । एक प्रकार से सम्मेलन निष्क्रिय सा हो गया था और उसकी प्रगति अवरुद्ध थी । उनकी मृत्यु के कुछ ही दिनो पूर्व केंद्रीय शासन द्वारा सम्मेलन को एक राष्ट्रीय सस्था घोपित किए जाने और उसके सचालन के लिए प्रथम शासन निकाय की नियुक्ति कर देने से उनकी सम्मेलन के सवध की चिन्ता कुछ अश तक दूर हुई थी । इस शासन निकाय की पहली वैठक २८ जून सन् १९६२ को इलाहावाद मे सम्मेलन कार्यालय मे हुई । उसी दिन सव सदस्यो के दिन के भोजन की व्यवस्था उन्होने अपने घर कराई थी । उस समय शासन निकाय के सव सदस्य उनसे मिले । वावूजी ने उनसे अपनी यह भावना व्यक्त की कि वे सम्मेलन के कार्य को सुचारु रूप से चलाएगे । इस भावना को लिए हुए वह तीसरे दिन इस ससार से चले गए ।

अन्य जो सस्थायें उन्होने अपने जीवन काल मे स्थापित की थी उनकी भी चिंता वावूजी को थी । इन सस्थाओ मे हिन्दी विद्यापीठ प्रयाग, गौरी पाठशाला इलाहावाद तथा लोक सेवक मडल की प्रयाग शाखा मुख्य थी । हिंदी विद्यापीठ, वहुत असतोष पूर्ण स्थिति मे था । कुछ समय पूर्व ही उसके मत्री पद का भार वावू जी की इच्छा से इन पक्तियो के लेखक (सत प्रसाद) के कन्धो पर डाला गया था । विद्यापीठ की विषम परिस्थिति और दयनीय आर्थिक दशा की जानकारी होते हुए भी वावूजी को उनकी मानसिक चिन्ता से मुक्त करने के लिए ही मैंने

यह भार लेना स्वीकार किया था। मुझे सतोप है कि वाबूजी ने जिम आशा और विश्वास के साथ अपने अतिम समय मे यह भार मुझे सौपा था उसे मैं वहुत अश तक सफलता पूर्वक वहन कर सका और विद्यापीठ को उसकी दयनीय स्थिति से मुक्त कर अपने पैरो पर खडा कर सका।

गौरी पाठशाला के मत्री पद का भार भी उन्होने अपनी मृत्यु से कुछ ही दिनो पूर्व मुझे सौपा था। इसी प्रकार लोक सेवक मडल की प्रयाग शाखा के स्थानीय मत्री के रूप मे मेरी नियुक्ति भी उन्होने कुछ ही महीने पूर्व की थी। अपनी मृत्यु से चार-पांच दिनो पूर्व एक दिन उन्होने हम दोनो को अपने पास वुलाकर कहा कि हम दोनो उनकी उक्त सस्थाओ की रक्षा और प्रगति मे वरावर सलग्न रहें। हमने वचन दिया कि हम दोनो यथा शक्ति उनकी इच्छा का पालन करेंगे। वावूजी से वचन वद्ध होने के कारण उक्त सस्थाओ का भार हम दोनो अपनी सामर्थ्य भर संभालते रहे और अभी भी दो सस्थाओ का भार—हिंदी विद्यापीठ और लोक सेवक मडल द्वारा सचालित लाजपत शिशु विहार—हम वहन कर रहे हैं।

वावूजी को एक अन्य वडी चिंता देश के भविष्य के प्रति थी। इस सवध की अपनी पीडा की चर्चा वह अपने मित्रो ओर सहयोगियो से, जव वे उनसे मिलने आते थे, किया करते थे। उनकी पीडा थी देश के जनतत्र शासन मे व्याप्त भ्रष्टा-चार और नेताओ के स्वार्थ और उनकी पदलोलुपता को देखकर। वह अपने मित्रो से कहते थे, "क्या जनत्रत के इसी रूप को स्थापित करने के लिए अनेक देश भक्तो ने अपने जीवन का वलिदान किया था? उन सव का स्वप्न था कि अपना शासन स्थापित होने पर रामराज्य की स्थापना होगी जिसमे सव अपने अपने कर्तव्य का पालन करेंगे, कोई वर्ग किसी दूसरे वर्ग का शोषण नही करेगा और सव देशवासी सुख और सतोष का अनुभव करेंगे। यह स्वप्न कहा पूरा हुआ?"

वावूजी ने अपनी रुग्णावस्था मे अपने सहयोगियो के वीच मे यह कहा था कि जवाहरलाल नेहरू अमीरी मे पले होने के कारण कभी यह अनुभव न कर सके कि गरीव देश मे शासन के आय-व्यय का क्या रूप होना चाहिए। उन्होने शासन को वहुत खर्चीला वना दिया था। प्रधान मत्री के रूप मे स्वय उनका तथा अन्य मत्रियो के रहन-सहन का व्यय वहुत अधिक था। साथ ही पाश्चात्य देशो का अनुकरण भी वहुत था। महात्मा गाधी और देश के अन्य नेताओ ने स्वराज्य मिलने के वाद शासको से जिस प्रकार के आचरण की कल्पना की थी उसको विल्कुल भुला दिया गया। वावूजी की दृष्टि मे यही मुख्य कारण था जिससे वे ही राष्ट्र सेवक जिन्होने स्वतन्त्रता की लडाई मे इतना त्याग किया था पदो और अपने निजी स्वार्थ के लिए परस्पर होड़ लगा रहे थे। वे ही नेतागण जिन्होने देश को स्वतन्त्र करने मे व्रिटिश शासन से मोर्चा लिया था इतना नीचे उतर आएगे

कि पदो के लिए परस्पर झगडेगे तथा अपनी सतान और कुटुम्बियो के लिए सब प्रकार का लाभ उठाने की चेष्टा करेंगे, ऐसी कल्पना उन्होने कभी नही की थी। इस पीडा को अपने साथ लिए हुए ही वह इस ससार से विदा हो गए।

आज किसको बाबूजी के उस स्वप्न की चिन्ता है? उनका नाम आने पर औपचारिक रूप से तो छोटे-बडे सभी कह देते हैं कि टडनजी के ऐसा त्यागी और आदर्श व्यक्ति इस ससार मे विरला ही होता है, किन्तु आज के कितने नेतागण ऐसे हैं जो उनके जीवन से प्रेरणा लेने का यत्न करते हैं! बाबूजी तथा उनके समय के वरिष्ठ नेताओ—महामना मालवीयजी, गाधीजी, गोखले, तिलक, लाला लाजपत राय आदि—के आदर्शों से जब तक नई पीढी और हमारे वर्तमान नेतागण प्रेरणा नही लेंगे तब तक देश का भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा। न तो भ्रष्टाचार ही दूर हो सकेगा और न ही जनता को सुख और शान्ति ही प्राप्त हो सकेगी।

□

परिशिष्ट

वंशवृक्ष
लाला सिद्धगोपाल टंडन
श्री चुन्नीलाल टंडन
देवी प्रसाद
द्वारिका प्रसाद
शिव सहाय
फकीर चन्द
राम नारायण
बिट्टन (पुत्री)
सीताराम
बच्चू
शिव रतन
गुरु नारायण
शिव नारायण
सालिगराम
अनन्तराम
मूलचन्द
तुलसादेवी
पुरुषोत्तमदास
राधानाथ
बिशेश्वरदास
सोमेश्वरदास
रामेश्वरदास
जगेश्वरदास
परमेश्वरदास
प्रेमचन्द
भक्तचन्द
ज्ञानचन्द
गुरुप्यारी
सतप्यारी
कन्हैयालाल
मदनलाल
किशुन नारायण
गिरधर नारायण
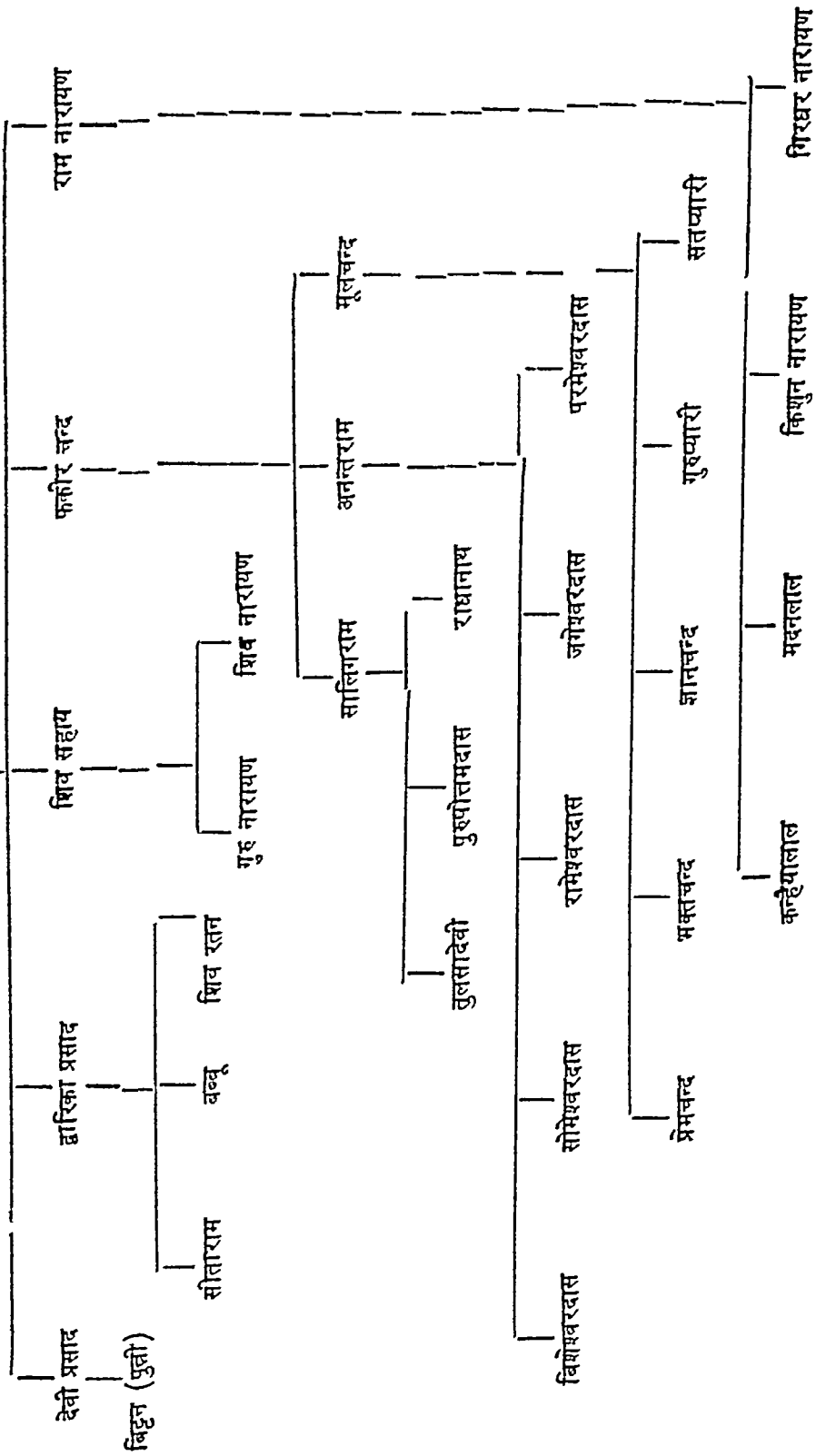
भूदान के सबध में टंडनजी का एक परिपत्र

१०, क्रास्थवेट रोड
इलाहाबाद
२-३-५५

प्यारे भाई,

आपको यह पत्र आचार्य विनोबा के उठाए भूदान यज्ञ तथा ग्राम निर्माण के विषय मे लिख रहा हू और आशा करता हू कि आप इस पर क्रियात्मक विचार करेंगे ।

देश भर की मुख्य समस्या यह है कि गाव का पुनर्निर्माण किस प्रकार हो जिससे वेकारी, दरिद्रता और गन्दगी हटे तथा रहन-सहन और जीवन मे सौन्दर्य, सहृदयता और नैतिकता दिखलाई पडे । हमारे उत्तर प्रदेश की भी यही मुख्य समस्या है । हमारे प्रदेश की ६ करोड ३२ लाख की जनसख्या मे से लगभग चौथाई ऐसी है जो भूमिहीन है । ग्राम-पुनर्निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि भूमिहीन को भूमि दिने की और रहने की साधारण सुविधा पहुचाने का प्रबध हो तथा प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के लिए जो काम कर सकता है और काम करने को तैयार है ऐसे काम मे लगाने की व्यवस्था हो जिसके द्वारा वह जीवन-निर्वाह कर सके । इस महत्त्व-पूर्ण काम मे शासन और जनता के आपसी सहयोग से लगने की आवश्यकता है ।

अग्रेजी राज्य के समय मे नगरो मे जो चमकीलापन लाया गया वह वहुत कुछ गावो को दरिद्र वनाकर आया । स्वतत्रता पाने के वाद हमारे कार्य की वडी कसौटी यह है कि गाव की स्थिति मे क्या उन्नति हुई है । गाव की दशा मे जो त्रुटियां हैं वे हमारे भविष्य कार्य की ओर सकेत करती हैं । आवश्यकता यह है कि इस युग मे हमारा विशेष ध्यान नगरो की अपेक्षा ग्रामो की आवश्यकताओ की ओर अधिक जाय और हमारी शक्ति औसत सुविधाओं को न पाने वाले ग्रामीणो के जीवन मे अधिक सुविधा और सुख लाने मे लगे । वास्तव मे गाव की सास्कृतिक

और भौतिक उन्नति होने से ही देश की उन्नति की बात कही जा सकती है।

गाव की समस्याएं चौमुखी हैं। इस समय मैं उस मौलिक प्रश्न की ओर ध्यान दिलाना चाहता हू जिसे हल करने के लिए आचार्य विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ उठाया है। इस देश में उनका उठाया हुआ यह काम तीन वर्ष से हो रहा है। उनके भूदान-यज्ञ आन्दोलन को देशव्यापी रूप देने से हमारे प्रदेश का विशेष हाथ है। वास्तव में इसी प्रदेश में उसका देशव्यापी रूप स्थिर हुआ। यहा पाच लाख एकड से ऊपर भूमि मिली। उसका बटवारा भूमिहीनो मे बराबर हो रहा है। जहा बडे-बडे भूमिखड मिले है वहा भूमिहीन परिवारो को निश्चित योजनाओ के अनुसार बसाने का यत्न हो रहा है। ग्रामो के सबध मे हमारा आदर्श यह है कि प्रत्येक ग्राम का प्रत्येक गृह वाटिका-गृह हो, अर्थात् बसने के योग्य प्रत्येक घर के साथ इतनी भूमि लगी हो जिसमे छोटी वाटिका बनाई जा सके, पशुओ के रहने के योग्य अलग स्थान हो, घर के बच्चो और नारियो को उस भूमि मे खेलने, घूमने और काम करने के आनद की प्रोत्साहन हो, और परिवार भर का मल-मूत्र गदगी फैलाने का साधन न होकर गृह-वाटिका मे गाडी जाकर भूमि का पोषक खाद बने। हमारा यत्न है कि प्रत्येक रहने के घर के साथ कम से कम लगभग आधा एकड भूमि इस भाति रहे। एक परिवार यदि इस प्रकार आधे एकड भूमि के बीच मे रहेगा तो हम कल्पना कर सकते है कि ग्राम के स्वास्थ्य की स्थिति कैसी होगी और छूत की बीमारियो तथा ग्राम भर मे आग लगने का भय किस प्रकार हट जाएगा। इस क्रम पर बने हुए गाव, जिनके भीतर उचित सडको का प्रबध होगा, हरियाली और सौंदर्य की मूर्ति होगे। इस प्रकार के ग्राम जितनी ही अधिक सख्या मे धीरे-धीरे बनते जाएगे, उतनी ही अधिक वास्तविक उन्नति की ओर हम अग्रसर होगे। ऐसे ग्रामो को बनाने मे शासन का और उन लोगो का सहयोग जिनको जीवन मे सुविधाए प्राप्त हो आवश्यक है। ऐसे ग्राम चाहे छोटे बीस-पच्चीस घर के हो, चाहे बड़े दो-तीन सौ घर के हो, उन सबो के लिए जल, शिक्षा और रक्षा की व्यवस्था सामूहिक योजनाओ के आधार पर होगी। ऐसे गाव मे हर एक को काम देने का प्रयास होगा। खेती करने वालो के लिए खेती की भूमि होगी और दूसरी रीति से जीविका अर्जन करने वालो के लिए उनकी कार्य-क्षमता के अनुसार व्यवस्था होगी। अभी हमारा प्रयत्न यह होगा कि जहा तक सभव हो ऐसे जिलो मे, जहा भूदान-यज्ञ मे बडे भूखड प्राप्त हैं, इस प्रकार के कुछ आदर्श ग्राम बसाने की योजना हो। धीरे-धीरे चारो ओर यह योजना फैले, यह हमारा स्वाभाविक प्रयत्न होगा।

विनोबाजी की नवीन कल्पना यह है कि उत्तर प्रदेश मे एक करोड एकड कृषि योग्य भूमि भूदान-यज्ञ मे मिले। यह भूमि भूमिहीनो मे बाटने मे और, जहा सभव हो, ऊपर चित्रित कुछ आदर्श ग्रामो के बसाने मे लगाई जाएगी। इस महान यज्ञ

मे राजनीतिक दलो या आपसी होड़ का प्रश्न नही उठता, क्योंकि इस योजना के संबध मे प्राय. राजनीतिक दलो मे मतभेद नही है। भूमिहीनो को भूमि देना और निराश्रितो को बसाना तथा बेकारो को काम देना, यह सब ही का उद्देश्य है। इस यज्ञ मे भूमिवालो से भूमि की आवश्यकता है और धन वालो से धन की। देश मे क्रांतिकारी परिवर्तन करने का यह मार्ग है। अनुभवी और विचारशील नेताओ एव कार्यकर्त्ताओ तथा नवयुवको के लिए मेरा आमन्त्रण है कि वे इस बडे काम मे भाग लें। ग्रामो मे टोलियो के घूमने की आवश्यकता होगी। एक करोड एकड़ भूमि की मांग के लिए वडी संख्या मांगने वालो और संगठन करने वालो की चाहिए।

आपसे निवेदन है कि आप इस कार्य मे सहयोग दें। कुछ कार्यकर्त्ता तो अवश्य ही ऐसे चाहिए जो पूरा समय दे सकें। जो ऐसा नही कर सकते वे प्रतिमास अथवा अन्य प्रकार से यदि कुछ समय इस काम के लिए निर्धारित करें तो अच्छा होगा। आप जिस प्रकार सुविधानुसार समय दे सकें, उसकी सूचना हमारे कार्यालय को देने की कृपा करें। आप जो समय दें उसका सदुपयोग हो, यह हमारे कार्यालय का प्रयत्न होगा। उत्तर प्रदेश भूदान-यज्ञ समिति का कार्यालय सेवापुरी, बनारस, मे है। उसके मत्री श्री अक्षय कुमार करण हैं। इसी पते पर इस विषय मे अधिक पत्र-व्यवहार होगा।

शुभैषी,
पु० दा० टंडन
अध्यक्ष, उ० प्र० भूदान-यज्ञ समिति

□

३

साम्प्रदायिक दंगों पर टंडनजी से एक साक्षात्कार

प्रश्न—I notice that the 'People' in some recent issues published the recommendations of the Committee appointed by the congress to report on Kanpur riots and also a separate note by yourself Are these parts of the same report which was proscribed by the U.P.Government some time ago?

उत्तर—Yes, 'The order of proscription was passed when I was in jail.

प्रश्न—Could you give me an idea of the report and your own views on the Government order?

उत्तर—The work of the Committee lasted for seven months with short intervals The writing and revising of the report and notes occupied four months The report brought out is a royal octavo volume containing a few pages less than 600

The main report is divided into four parts The first part is a historical retrospect of Hindu-Muslim relations and covers about 150 pages.

Part II of the report deals with the Kanpur riots It traces the local influences which were at work in bringing them about, gives some typical instances of the atrocities perpetrated on both sides and an account of how the officials worked during the riots, and finally reveals the "silver lining" in the dark clouds by quoting numerous instances of humanitarian and brotherly help given by members of one community to those of the other.

Part III is entitled the "Remedies" and contains the recommendations of the Committee for the solution of the Hindu-Muslim question.

Part IV contains seven appendices and three separate notes by some members

Appendix I gives an estimate of the loss of property by arson and loot and the number of the murdered and wounded. The loss of property is estimated to have been between 20 and 25 lakhs The number of murdered is estimated at 400 and the wounded at 1200

So far as I am aware, the Hindu-Muslim question as a whole was never before dealt with in this comprehensive manner. The Committee appointed by the Congress consisted of three Muslims, namely Messrs Manzar Ali Sokhta, Abdul Latif Bijnori and Zafrul Mulk, and three Hindus, namely Dr Bhagwan Das, Shri Sunder lal and myself. There was absolute unanimity of opinion among the three Hindus and two Muslims, namely Messrs Manzar Ali and Abdul Latif Bijnori on all the recommendations except only one, namely that relating to the cow-question, on which my recommendation differed from that of my colleagues. The third Muslim member Mr. Zafrul Mulk agreed with the Majority view on the cow-question but he dissented on some other points

The historical perspective in which developments of the Hindu-Muslim relations during previous periods have been examined strike a line, which though not absolutely new, is uncommon The members of the Committee gave so much time to this work in the hope that those who attached importance to a solution of the Hindu-Muslim question would find in the report food for constructive thinking and possibly some suggestions which they might help in carrying out, but the Government willed otherwise The Government of U P apparantly influenced at first by the wrong information supplied by the C I D seized printed copies which it could get hold of by calling the report, "unauthorised news-sheets" The report had however been printed in a regular press and the Govt probably saw the foolishness of its position So a few days later it covered the previous action by issuing an order of proscription on the ground that the book contained matter which came under section 124-A and 153-A of the I P C

As regards the applicability of section 153-A, it is absurd to say that because some atrocities on both sides are described in a part of the report, it is likely to lead to a communal disorder,

when the whole object of the book is to help in the solution of the communal problem and its whole outlook is deeply coloured by an appeal to all that is good and noble in the two communities The Govt might, as well on this ground, ban judgements of courts in criminal cases in which Hindus and Muslims are parties

Probably, the real reason of the order is that a large number of witnesses deposed to the callous attitude of the officials from the District Magistrate down to the police constable, while the riots were going on, and that a large body of evidence laid bare some thing much worse than mere callousness—an almost gleeful enjoyment of what was going on and at least a previous knowledge that the riots were about to come

The Govt apparently do not desire that this evidence should come to light and they have not the courage to prosecute the members of the Committee on the conclusions which they have drawn and the evidence which they have quoted.

It may be that the Govt also objects to those portions of the report under the head 'the British Period' in which extracts from Govt records on the policy of 'Divide and Rule' advocated by High Govt officials are given The Committee have only made quotations in this connection from documents already familiar to public men

In this volume of about 600 pages there are only a few pages which deal directly with Govt's policy and actions But it is obvious because of these few pages that the whole book, which is mainly concerned with the mutual relations of Hindus and Muslims has been proscribed The result, however, is that the constructive proposals of the Committee have also been prevented from receiving attention I think that newspapers and periodicals might follow the example of the 'People' and give publicity to the recommendations of the Committee and those portions of the report, which in the view of their own editors fall under none of the sections—124-A and 153-A

४

किसानों की दुर्दशा के संबध में टंडनजी का वक्तव्य

Prices of agricultural produce have been very low for about ten months The peasantry in the United Provinces has for years been known to be rack-rented and living perenially on the verge of starvation In 1928, the Government by mere act of fixing the exchange value of the rupee at one shilling six pence raised its value by 12% with the result that in effect the rental demand was also raised by 12% Since then the price of agricultural produce has gone on decreasing, till today it stands where it stood in 1886 or 1887 Apart from the low prices the peasantry has been afflicted with a series of bad harvests since 1927. This has further reduced their power of resistance and increased their indebtedness

The no-rent campaign which began in October, 1930 had two aspects—(1) Political and (2) Economic. It was at bottom the economic aspect of the campaign that appealed strongly to the peasantry They are not in a position to pay the full dues, holdings had become uneconomic, it was thus easy and even profitable for them to respond to the call of the non-rent movement. The non-rent movement ceased with the truce, but the economic condition of the peasantry has grown worse.

Immediately after the declaration of the truce the Government was approached by Congressmen and other publicmen to improve the situation by granting remissions in revenue and rent The Government paid no heed, and followed a policy of utter indifference The tenants could pay to the Zamindars only a small portion of the rent, but the Government was strict in

collecting its dues from the latter. The cases of Kalakankar and Bhadri, the two well known Taluqdars of Oudh, are in point. The Zamindars have had to borrow heavily to meet the Government demand. At the same time they have resorted to all kinds of means, legal and illegal, to wring out as much as possible from the tenants, and in this they have at some places been helped by the police and the revenue staff. The tenants also, having awakened to a sense of their power, have offered resistance to the tyrannical ways of the Zamindars, and hence in several districts there have appeared symptoms of strong tension between land holders and tenants.

The Government have after much hesitation and waiting now acknowledged that the tenants cannot pay the full rents, and have only in the current month come forward with a scheme of remissions, but that scheme is wholly inadequate to meet the situation They have announced a remission of about 67 lakhs in revenue, and a corresponding reduction of about 220 lakhs in rent. The bulk of these remissions are for the *Rabi* demand. The prices were low during the *Kharif harvest* also, but only very small remissions were then made These figures include the total remissions made for the whole *Fasli* year 1338, both on account of the fall in prices and of local calamities. The total revenue demand for the year is over 7 crores and the total rental demand is about 20 crores. The reduction in revenue for the year amounts to 9 1% and that in rent 12%. When we remember that the prices are less than a half of what they were, and that the crops have been badly damaged in a number of districts, these remissions appear, on the face of them, to be absolutely insufficient.

In their last communique on the subject Government venture to express the hope that the rents, as they now stand after these remissions, are such as the tenant can afford to pay from the produce of his fields even at the present level of prices. We find it impossible to understand on what basis this hope of the Government is founded The strong logic of the yield of land, of the current prices of agricultural produce, and of the economic condition of the peasantry is against it We have collected some statistics about the economic condition of the peasantry in some districts

These figures have been arrived at from data collected at

random. It was not claimed that when larger areas are brought into review, these figures may not to some extent vary, but they indicate very clearly how far holdings have become uneconomic with the present rental demand. They also show clearly that radical reductions are necessary in the rents before the condition of the tenants can improve to any appreciable extent.

RELIEF WANTED

(1) Speaking in a general way, the rental demand should be reduced from about 20 to 10 crores.

(2) Government demand of 7 crores should be reduced to 4½ crores.

Note—According to the above scale of remissions the Zamindars will have to remit in rent four times the remissions granted to them in revenue i.e., the margin of their profit will become less than what it is at present.

(3) Both occupancy tenants and non-occupancy tenants should be given relief, though in different degrees. The remissions should be according to a definite rule, dealing with classes and not individuals, and this rule should be announced in clear and precise language so that every tenant may, by the very terms of the announcement, be able to know what the remission in his case is to be. Care should be taken that no discretion is vested in the *Kanungo* or the *Patwari* for the selection of individuals who are to receive remissions. They must not be given fresh opportunities for indulging in their normal occupation of harassing tenants and taking bribes from them.

(4) An economic enquiry should immediately be instituted into the condition of the peasantry of the province. The committee of enquiry should suggest practical remedies for the improvement of their condition for the removal of their outstanding grievances, and for the re-adjustment of the relations between tenants, landlords and Government.

Nainital (Purshottam Das Tandon)
22-5-31

५

किसानों की समस्या पर टंडनजी का एक वक्तव्य

I have for the present finished my short tour in the Allahabad district. In all I spent five days and four nights in three Tehsils—Soraon, Phulpur and Handia. Local workers accompanied me in their circles, and my colleague Shri Lal Bahadur Shastri was with me during the greater portion of the tour.

We stopped and talked to peasants in over thirty-three villages. We visited their houses, saw the life which they live and heard from them about their economic and social condition, their food and clothing, their cattle and fields and trees, the produce of their land, the prices of their produce, the rent of their holdings, their arrears and their debts, the Nazrana, the 'hari and begar' and their other troubles.

Heart Rending Scenes

It is impossible for me to describe fully what I have seen and heard. The whole picture is heart-rending. We who live in towns have generally very little notion of how peasants are passing their days. We talk here of culture, of books and pictures, of entertainments, of the amenities of life, of civil liberties. These expressions have either no meaning for the larger majority of peasants or raise only a dim picture of a distant and unapproachable vision.

Everywhere, it was the same monotonous wail of heavy rent, illegal demands, arrears, ejectments, debts of Mahajans, sale of

belongings and trees, semi-starvation and semi-nudity, beatings and tortures of Zamindars or their employees to compel payments of legal and illegal demands and a bleak outlook for the future The grim tragedy is enacted in varying scenes and with different episodes, but almost every village produced the same dull, soul-suppressing impression of utter misery, destitution and despair

At one place in a gathering of Kisans I happened to mention milk as a diet for children And I can never forget the grim laugh with which my remark was greeted The peasants laughed at my ignorance that I could think milk as an article of food for their children when it is difficult for them to get enough of the coarsest grain even for their one meal. They would be happy if they could get enough of the coarsest grain to feed their families

Lord Linlithgow, a new comer to India, has spoken at Simla of milk as an absolute necessity of diet for the mother before and after the birth of the child, and for the child during the early years of growth and development In a moment of candour he said, "what indeed can we hope from political constitutions unless we apply ourselves without delay and with persistence, vision and courage to the improvement of the physical constitution of the common run of men and women?"

Will he set an example?

Will Lord Linlithgow himself have the courage to put into practice as an agent of the British Government what as an honest man he has felt and expressed? So many Viceroys have come and gone and drawn huge salaries from income derived from the starving peasantry and enjoyed life in gay halls and luxurious palaces, while the physique of men and women has gone on progressively deteriorating for want of coarsest food Let Lord Linlithgow make it possible that every child and every expectant mother gets even one-fourth of a seer of milk per day and I shall call him a great administrator

But this is an unrealisable dream unless the laws and the whole machinery of the Government are so changed as to permit the Kisan to enjoy the fruits of his labour and stop his exploitation by the landlord on the one hand and official underlings on the other

Wearing Rags

At a number of places the rags which people were wearing drew from me an enquiry as to their clothing One dhoti each in a tolerable condition with a torn second for a change at the time of bathing constituted generally the wardrobe of every man and woman. Sometimes the man and his wife shared two or three pieces between them. In the case of poorer classes things were still worse A few possessed 'Kurtas' or 'Mirzais' to be used on important occassions Some Kissans possessing comparatively large occupancy holdings were in a somewhat better position. But the strains of last several years have generally broken their backs also and reduced them into poverty and indebtedness.

Apart from the appalling poverty, the chief feature of village life everywhere today is that generally those who have the smallest power, whether officials or zamindars, are always ready to take every advantage of the weakness and ignorance of the peasants, and to extort money or other gains on all possible pretexts.

Enforced Lottery

A big Zamindar of Soraon Tehsil had an old horse who had become almost useless Under the cover of disposing off the horse by lottery he or his men compelled his tenants to pay what the latter called 'Ghorawan' and they, of course, never knew whether a lottery was ever cast anywhere. They had no interest in the matter at all It was a simple case of extortion under a guise.

A typical official extortion which was new to me came to my notice in this tour. Everyone who has ever visited villages is familiar with the 'Ghoora', the heep of cowdung and rubbish collected for manure, which is removed to the fields occassionally, particularly before the rainy season Probably, the District Board has made some rule that cowdung and sweepings from houses be not collected within a certain distance of the 'abadi'. It would certainly be more sanitary if the Ghoora is collected away from the 'abadi', but this means that the women of the house who do this work and who in the case of upper castes

observe 'purdah' should walk daily for some distance from the 'abadi' with a basket of rubbish on their heads A rule of this kind is more easily made than observed.

Tips to avoid trouble

The actual result, which I myself have seen in several villages, is not better sanitation but more opportunities of extortion by the sanitary staff In the tehsil of Soraon and Phulpur I heard the complaint in several villages In one village in Phulpur, I made a regular enquiry and examined more than half a dozen witnesses who had themselves made payments ranging between 2 annas and 8 annas for avoiding threatened prosecutions. And the 'Ghooras' were all still there after the payments The villagers did not know the name of the officer, but they had given him the nickname of the 'Ghoora Saheb'.

Of torture by the Zamindars, some of the old familiar types making men and women stand in the sun, stretching their legs apart with a pole between them, compelling them to assume the posture of a cock, 'Murga', and remain standing in that posture —were freely mentioned A type, new for me, came to my notice at a meeting in a village Bataupur in Tehsil Handia The complaint made was that a powerful Zamindar living close by had the bones of the dead animals burnt in front of the house to harass the inmates This was called 'Haar-jalana' and was resented by the people both on physical and sentimental grounds

Nazrana rates

The practice of demanding and taking Nazranas was everywhere mentioned One rupee as Nazrana is deducted every time the tenant makes any payment, whether in part or full And since tenants pay generally in several instalments, the amount of Nazrana paid in a year bears a substantial ratio to the actual rent Generally, receipts for payments are not given At one place I was told by a number of peasants that the Zamindar issued receipts only on receiving an extra payment for the act of granting receipt

Added to the Zamindars and officers of the administration is the money-lender, advancing money at interests ranging from

24% upwards An anna and even two annas a rupee per month were mentioned as rates of interest which many had to pay. Even the cooperative societies have proved a curse rather than a help The methods of the money-lender are, of course, different from those of the Zamindar and the Goverment official. His mysterious account book is a charm with which the villager can always be brought into submission An account once opened is not easily closed inspite of payments several times the original advance.

Huge Conspiracy

The truth of the matter is that the very weakness and helplessness of the peasant tempts all the small men, who have any kind of power in the villages, to oppress and extort money from him. When they are not actually extorting cash, they compel him to sell his things for prices much lower than the market rate The Kisan passes his life in an atmosphere of perennial terrorisation The whole fabric seems to be a huge conspiracy to exploit him And the slightest resistance on his part against illegal dealings is construed as an act of insubordination and rebellion and is punished both outside and inside the courtroom

What is the remedy for all this mass of tyranny and corruption? Ultimately, of course, the transfer of full power to the people themselves But even while the Government of India by Britain lasts, the condition of the peasants could be substantially improved The Zamindari system is the root cause of the weakness of the peasants' position in these provinces

Chief Remedy

I can have absolutely no ill-will towards the Zamindars as a body, but the present land tenure system needs radical overhauling The Government should give reasonable compensation to the Zamindars and make settlement of land directly with the cultivators That to my mind is the chief remedy And I am convinced that this is very practical and feasible

The immediate need, however, is large reduction in rents, so as to leave a margin for the necessities of life for the cultivators At present because of the cheapness of the grain the margin is

very small, in a large number of cases there is no margin at all. Rent should be conceived as equal to a certain portion of the produce, one-eighth, or one-tenth or one-twelfth, as was the old rule, and the money value of rent should be fixed with reference to prices.

Then there are problems of arrears and debts. They also demand immediate solution and cannot be ignored. If Lord Linlithgow wishes to provide a little milk to all children he must apply himself to these problems, with the solution of which the happiness of every village will depend Government revenues will also have to be reduced and so also the cost of administration. Obviously, huge salaries of Government Officials and milk for the poorman's child cannot go hand in hand.

20 जून 1936 के 'एडवान्स' पत्र से

□

६

हिंद रक्षक दल के संबंध में टंडनजी के विचार

स्पीकर भवन,
लखनऊ
१०-९-४७

भाई हंसराज अरोडाजी,

आपका ६ ता० का अग्रेजी भाषा का पत्र मिला। हिंद रक्षक दल की योजना यह है कि हर जिले मे एक सचालक नियुक्त किया जाय और वह हर एक थाने के क्षेत्र के लिए एक-एक थानापति नियुक्त करे। हर एक थानापति का काम होगा कि अपने दायरे मे इतने अखाडे खुलवाये कि कुल जनता को किसी अखाडे पर जाने की सुविधा हो। हर एक अखाडे के लिए वह एक नायक नियुक्त करेगा। यह नायक अखाडे की कुल टोली का सरदार होगा। अखाडे मे हल्की कुश्ती, लाठी, विनवट, तलवार, छुरी, धनुष वाण की क्रियाए सिखाई जाएगी। व्यायाम की ओर भी ध्यान दिया जाएगा। यह मैं जानता हू कि हथियार नही मिलते, किन्तु व्यायाम और लाठी आदि के आधार पर भी सामूहिक सगठन हो सकता है और वह अपने मे महत्व की वस्तु है। आगे चलकर आशा है कि हथियार मिलने की भी सुविधा गवर्नमेंट करेगी।

गोरखपुर जिले के लिए मैं इस प्रतीक्षा मे हू कि कोई उचित सचालक मिले। आपने हिंद रक्षक दल का जो काम उठाया है उसका स्वागत करता हू। आप यदि जिम्मेदारी के साथ इस विपय मे कुछ काम उठा सकें तो लिखिएगा कि कितने दायरे मे काम कर सकते है।

शुभैषी,
पुरुषोत्तमदास टडन

७

व्यायाम और हिंद रक्षक दल के संबंध मे एक अन्य पत्र का अंश

"व्यायाम संबंधी मेरी योजना इस प्रकार है—हमारे सूबे का प्रत्येक जिला मडलो मे विभक्त है और हाल मे सूबा कमेटी ने आज्ञा निकाली है कि प्रत्येक मडल कुछ क्षेत्रो मे विभक्त हो ताकि एक एक क्षेत्र मे सात, आठ या दस गाव तक आ जाए। रक्षा की दृष्टि मे यदि प्रत्येक क्षेत्र मे दो या तीन या कम से कम एक अखाडा खोला जाय जिसमे कुछ कुश्ती हो और लाठी सिखाने का क्रम हो तो मेरी कल्पना है कि प्रत्येक क्षेत्र मे दो या ढाई सौ युवक अर्थात १६-१७ वर्ष से लेकर ४० वर्ष तक के पुरुष इस व्यायाम योजना मे सम्मिलित हो सकते है। अखाडे को रोचक वस्तु बनाया जाय। वहा व्यायाम के साथ एक समाचार-पत्र भी आ जाय और रोचक तथा राष्ट्रीय बात-चीत करने का अवसर हो। जहा तक हो यह अखाडे किसी कुए या तालाब के समीप बनाए जाएं और ग्रामीण जीवन के केन्द्र हो सके। चर्खे के काम मे भी उत्साह दिलाया जाय, किंतु मुख्य काम रक्षा के लिए व्यायाम हो जिससे युवको को स्वभावत आकर्षण हो और इस प्रकार प्रत्येक मडल मे कई सौ युवक व्यायाम के काम मे सम्मिलित होने लगें। इन युवको मे से पहरा देने के लिए भी लोग चुने जाए और नियन्त्रित रूप से काम करने की उनको कुछ साधारण बातें बताई जाएं। प्रत्येक जिले मे इस प्रकार हजारो युवक तैयार हो सकते हैं।

क्षेत्रनायक और दलनायक हमारे सूबे मे बनाए गये हैं। वह लोग अपने क्षेत्रो और मडलो के अखाडो की और उनमे व्यायाम करने वालो की सूची रखें। इस प्रकार मडलो के नायको मे आपस मे सहयोग हो सकता है और जिले का एक नायक सब मडलो की सूची की देख भाल कर सकता है।

यह एक प्रकार से गैर सरकारी अच्छा रक्षा दल तैयार हो सकेगा जिसके

भीतर से आवश्यकता पडने पर देश की रक्षा के लिए हम वैरियो के विरुद्ध भी लडने वाले खडे कर सकते हैं। डाका आदि से रक्षा करने मे तो यह दल वहुत ही मूल्यवान काम कर सकता है।"

□

८

पं० जवाहर लाल नेहरू का पत्र

Secret & Personal

Prime Minister
INDIA

New Delhi
Aug 8, 1950

प्रिय पुरुषोत्तम,

For sometime past I have been greatly troubled about the Congress Presidentship. Naturally, we discussed it here amongst some of us I have a dislike for getting entangled in any election, and normally, my only interest would have been that a strong and effective President should be chosen The Congress is in a bad way and, unless some steps to rejuvenate it are taken, is likely to fade away As it is, it seems to have lost some inner strength that it possessed and we are concerned chiefly with faction, fight and manoeuvring for position and place. It is sad to see the great organization function in this petty way.

The problem that troubled me, however, was somewhat different You are one of the candidates for the presidentship and there are some other old colleagues. Most of these are friends of old standing, you the oldest of them I need not tell you of my affection for you and my high regard for your integrity. Nevertheless, I have been troubled and distressed in mind. It has been our misfortune during the past 2 or 3 years or so to have drifted apart to some extent I am refering not to our infrequent meetings but rather to the way our minds have been functioning

Probably, you think that much that I say or do is wrong For my part I have often read your speeches with surprise and distress, and have felt that you were encouraging the very forces in India, which I think, are harmful.

We have many major problems in India but I feel more and more that perhaps the most important of them is how to hold fast to certain basic ideas of the Congress, as it used to be One of these, which is of supreme importance to day, is to fight against communalism I see this communal spirit growing and spreading in India, together with something I would call revivalism. I know all that has happened in Pakistan and that this is the reaction to it in India. But that is partly an explanation, it does not help. It has brought out all the intolerance, pettiness and narrow-mindedness in our people, and I fear that India can never progress if we think and *function in this way.*

Your presiding over the Refugee Conference recently held in Delhi also distressed me because that Refugee Conference gave expression to views which struck me as excessive, intolerant, communal and impractical We are all interested in helping and rehabilitating the refugees and it may be that we have not done as much as we should have done But that should not lead us into wrong directions I think the major issue in this country today, if it is to progress and to remain united, is to solve satisfactorily our own minority problem Instead of that, we become more intolerant towards our minorities and give us our excuse that Pakistan behaves badly What happens to Pakistan is not my primary concern But I am most intimately concerned with what happens to India and this progressive decline in some of the basic things of life is distressing

Unfortunately, you have become, to large numbers of people in India, some kind of a symbol of this communal and revivalist outlook , and the question rises in my mind, is the Congress going that way also? If so, where do I come into the picture, whether it is the Congress or whether it is the Government run by the Congress? Thus this larger question becomes related to my own activities.

I would have gladly welcomed your election to the Congress Presidentship But when I look at this matter impersonally and from the larger point of view, I feel that this election could mean great encouragement to certain forces in India, which I

consider harmful Hence, my difficulty and my distress.

Another aspect of this question has been before my mind Am I to remain silent over all this or should I express my opinion in some way? My first impulse was to remain silent, but the more I have thought of it, the more it has appeared to me that this course of action is not fair to the country or others concerned We can not build up our public life in this way and if, later, I have to express my opinion, would not people say that I had no business to remain quiet at an earlier stage? I feel, therfore that I should express my opinion in some form or the other before the Congress election takes place

Some people, without my knowledge, had put forward my name for the Presidentship I was quite convinced that it would be improper for me to accept this great honour and responsibility so long as I remain Prime Minister That would have been a gesture only with no real meaning.

I am writing to you today, because I feel, I owe it to you to tell you how I feel Inspite of such differences as may creep in our political or other approaches to our major problems nothing, I hope, will affect our friendship and affection for each other

सप्रेम

तुम्हारा
जवाहर लाल नेहरू

टंडन जी का उत्तर

Councillor's Residence,
Darulshafa,
Lucknow
August 12, 1950

My dear Jawaharlal,

I have your letter of the 8th instant I have read parts of it with sorrow and also with surprise.

I agree that the Congress is in a bad way and that steps have to be taken to prevent its utter collapse Our whole social life

is going to pieces and the Congress is a sample of the grossly low ethical standard spreading all round The soul of the country has to be saved. I wish you could take up this great work which is so much above the Prime Minister's, routine task—highly important as it is.

You have referred to my nomination for the Presidentship of the Congress It is not of my seeking It is something like what happened in the last Presidential election of our own Province about which you have some knowledge I tried my level best to dissuade friends, who were keen on my nomination, from bringing it about. But I had ultimately to bow to their wishes

You have referred to some of my speeches about which you have read and to my presiding over the Refugee Conference. I ask you to believe your eyes and ears more than newspapers or other reports You seem to connect me with narrow communalism and what you call revivalism. While you and I have agreed on and worked together on many vital problems, there have been some matters on which you and I have not seen eye to eye—the adoption of Hindi as the national language and the partition of the country with its consequential issues being the cheif among them It is a human failing even with great persons to take their own geese for swans, their own aptitudes for fundamental principles But I ask you to look at the matter with some detachment It is possible that others may be right and you may be wrong. In any case why should it be necessary to attribute narrowness to others who differ from you

Obviously, you have the Hindu Muslim question in mind when you speak of communalism You were present at the last Political Conference of our province when I spoke for about an hour and a half as President I expressed then clearly my views on the Hindu-Muslim question in general, and on the cultural relationship between the two communities in particular. I have never deviated from the views then expressed I do not recognise any Islamic culture or any Hindu culture I do not recognise that there is any *Book* in the world which has said the last word on what man should be Neither the Veda nor the Quran is the last word for me in human thought Muslim divines take umbrage at my expressing this view and say I am anti-usmlim I thought you at least would rise above that outlook

The old-world Pandits of Banaras also dislike my views and attack me freely in their organs—the daily Hindi 'Sanmarg' is an exponent of their views My leading thought in politics is an allround unity in the country as far as it can be achieved—with unavoidable and necessary diversities being kept within proper limits I have openly advocated Hindu Muslim marriages and, as you know, caste orthodoxy has played little part in my life I am, therefore, surprised at your connecting me with a communal outlook.

Revivalism is a confusing expression It may mean Renaissance and it may mean Reactionaryism I would revive today some of the great spiritual standards that our country stood for in the Past I regard them as precious legacies At the same time I reject strongly the irrational dogmas that surround both Hinduism and Islam in action—though such dogmas may be laid down by the religious books sacred to Hindus or Muslims I hold that all religious precepts have to be weighed by the Intellect and not one of them can be accepted merely on the authority of a Book The question of refugees stands on a footing different from that of the Hindu-Muslim relationship It is a human question It has assumed intensity because of our national action in bringing about the partition To have sympathy for the cause of refugees is natural both for you and me I feel that we must do much more for them than we have done hitherto and that, apart from Providence, you and I and the leaders of public opinion in our country are responsible for the miseries of the refugees It was, therefore, in the ordinary course of public life that I accepted some months ago an invitation, pressed with earnestness by Dr Choithram Gidwani and Lala Achintram, that I should preside over the proposed Refugees Conference I am responsible for what I said I suggested a Capital levy which would bring in a few *arabs* of rupees, not crores, for the purposes of rehabilitation This is perhaps a heroic remedy. But I feel that it is practical and deserves earnest and fearless examination Thirty crores or so a year cannot solve this big problem

It would not be fair to saddle me with all the opinions that were expressed in the Conference. I can only say that the influence which I exercised as President was always towards restraint in thought and word You might well enquire from

some reasonable person who was present during the gatherings as to what the direction of my effort was I could see that there were some men who wished to use the troubles of the Refugees for discrediting the Congress and for political ends It was obvious that they would harm the real cause of the refugees But I believe I succeeded in thwarting their desire by invoking the good sense of the Refugees at the public meetings and also by private persuasion Here is a cutting of a Hindi newspaper You have here a sample of what some extremists felt This paper openly says that the Refugees made a mistake in selecting me as their President. The reason of this displeasure, so far as I see, was that I was able to prevent rabid language and rowdism.

You say that you feel that you have to express an opinion about the Presidential election That is a hint that you may have to say things unsavoury about me I would be happy if my name is allowed to be dropped; if that is not done and if as a result of your statement my name is not accepted after a poll, I shall not be very sorry. I assure you that with the bitterest language that you may employ against me you will not succeed in making me bitter or abate my personal affection for you I have loved you all these years as a younger brother, though my feeling is unobtrusive The younger brother may sometimes indulge in bitterness and even ill-will towards an elder one, but the latter rarely does so in respect of the object of his affection.

I do not like some of your opinions and administrative acts I wish you could take a more balanced view in some matters and a sterner attitude in others, but that cannot affect my personal emotion towards you or those connected with you, for it is part of my being

The Presidentship of the Congress or the Prime Ministership of the country are great and attractive positions but are after all small things in a proper valuation of our duties or of what contributes to our happiness Looked at in a world perspective the country itself becomes a small affair. Even before our eyes the importance of individual countries is dwindling in the world drama Perhaps with returning sense or what you may call a revivalism of the old concepts, the world itself may appear to many as not the be-all and end-all of existence.

६

नासिक कांग्रेस के अध्यक्ष पद से २० सितंबर १६५० को दिया गया भाषण

वहिनो और भाइयो,

इस राष्ट्रीय महासभा का अध्यक्ष चुनकर आपने मुझ मे जो विश्वास प्रकट किया है उसके लिए वहुत कृतज्ञ हू। पिछली वार जयपुर मे जव हम इकट्ठे हुए थे तव से अव तक हमे जिन सहयोगियो का विछोह सहना पडा उनमे विशेषकर श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री कोंडा वेंकटपय्या, श्री शरत चद्र वोस, श्री गोपीनाथ बारदोलाई, श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव, स्वामी सहजानद सरस्वती, श्री युसुफ मेहरअली और श्री साने गुरूजी की याद आ रही है। वहिन सरोजिनी जी की अद्‌भुत प्रतिभा हमारे देश की मूल्यवान सपत्ति थी। उस पर हमे गर्व था। वह देश के विभिन्न वर्गों को चेतना देने वाली और ससार के सामने हमे ऊचा करने वाली थी। सरोजिनी जी कानपुर मे इस राष्ट्रीय महासभा के सन् १६२५ के अधि-वेशन की अध्यक्षा थी। व्रिटिश गवर्नमेट के साथ हमारे स्वतत्रता सघर्ष की वह वुद्धिमती और सशक्त अगुआ थी। उत्तर प्रदेश मे हम लोगो का यह विशेष सौभाग्य था कि वह वहा राज्यपाल होकर गईं और उनके मोहक व्यक्तित्व का लाभ हमारे प्रदेश को उनके अतकाल तक मिलता रहा। कोयल की अतिम कूक भी उसी प्रदेश मे हुई। अव वह काव्य-रस-रजित वाणी हमे सुनने को न मिलेगी। प्रकृति नटी अपने पात्रो को शीघ्रता से वदलती रहती है किंतु हृदय मे वसी स्मृति के हटाने मे वह असमर्थ है।

श्री कोंडा वेंकटपप्या हमारे देश के वहुत पुराने काग्रेस नेता थे। मुझे उनको पास से देखने का सौभाग्य हुआ था। उनका स्वभाव वहुत सरल था। सच्चरित्रता और देशप्रेम उनमे भरा था। वह न केवल आंध्र के किंतु सारे देश के उज्ज्वल रत्न थे।

कलकत्ते के वोस कुटुंव से देश अच्छी तरह परिचित है। श्री शरतचद्र वोस ने यद्यपि अपने छोटे भाई नेताजी श्री सुभापचद्र वोस के समान देश की राजनीति पर गहरी छाप नही डाली तो भी वह काग्रेस के एक प्रभावशाली नेता थे। वगाल मे उनका वहुत मान और प्रभाव था। वह काग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य रह चुके थे और केन्द्रीय शासन मे मत्री भी रहे थे। अपने अतकाल से पहले वह काग्रेस से अलग हो चुके थे और एक नया दल वनाकर उसके नेता थे।

श्री वारदोलाई जी असम प्रदेश के रत्न थे। स्वतत्रता संघर्ष मे वह उस प्रदेश के नायक थे और उस सघर्ष की समाप्ति पर उन्होने मुख्यमत्री पद से उसका नव-निर्माण किया। आज असम के ऊपर जो प्राकृतिक कोप है उसमे, जन-रक्षा के हेतु, वारदोलाई जी की याद आना स्वाभाविक है।

श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव उत्तरप्रदेश के काग्रेस जनो के उस प्रथम जत्थे मे थे जिसने स्वतत्रता सघर्ष मे महात्मा गाधी के झडे के नीचे सन् १९२१-२२ मे भाग लिया था। वे प्रतिभाशाली पत्रकार थे और 'हिंदुस्तान' नामक अग्रेजी साप्ताहिक के सस्थापक और सपादक थे।

स्वामी सहजानद सरस्वती के निधन से हमारे वीच से एक अच्छा कर्मयोगी उठ गया। भारत के और विशेषरूप से विहार तथा उत्तरप्रदेश के किसान स्वर्गीय स्वामीजी की सेवाओ को कृतज्ञता के साथ स्मरण करेंगे। इधर उनका काग्रेस से मत-भेद हो गया था। पर उनके प्रति उनके सहयोगियो की श्रद्धा पूर्ववत् वनी रही।

श्री युसुफ मेहरअली जिनका देहात लगभग युवावस्था मे हुआ अत तक चित्ताकर्षक सहयोगी थे। वह शक्तिवान लेखक थे। उनके व्यक्तित्व मे भारतीय सस्कृति और पाश्चात्य प्रगतिशील दृष्टि का सुदर समन्वय था। वह काग्रेस समाज-वादी दल के सस्थापको मे से थे परतु जव उस दल का काग्रेस से विच्छेद हुआ तव वह भी काग्रेस के सदस्य नही रहे।

श्री साने गुरुजी की सेवाओ से इस प्रदेश की जनता भली भाति परिचित है। वे तपस्वी जनसेवक और स्वतत्रता के वीर सैनिक थे। आर्थिक समस्याओ को सुलझाने के अतिरिक्त सामाजिक जीवन के स्तर को ऊचा करने की ओर उनका ध्यान था।

इन सव सहयोगियो के निधन पर देश को शोक है।

भूकप से जो भौतिक परिवर्तन असम मे हुए हैं उनसे वहा की जनता वहुत दुखी है। उसका दुख देश भर का दुख है। हमारे हृदयो मे असम की पीडा की पीडा है और उसकी पीडा को दूर करने के प्रयत्न से ही हम अपनी पीड़ा से मुक्त हो सकते हैं। नदियो की वाढो ने भी पिछले दिनो मे देश के कई भागो को भारी हानि पहुचाई है। हमारी सरकारें इन प्राकृतिक कारणो से दुखी जनता की सहा-यता की ओर ध्यान दे रही हैं। साथ ही हमारे जन समुदाय का कर्त्तव्य है कि वह

सच्ची सहानुभूति के साथ इस कष्ट को कम करने मे सघटित रूप से अपने कर्त्तव्य का पालन करे।

अब मैं उन प्रश्नो पर कुछ निवेदन करता हूं जो इस बीच हमारे सामने आए हैं।

संविधान

हमारे देश के वर्तमान और भविष्य को रूप देने वाला सविधान जिसके बनाने मे तीन वर्ष से काम हो रहा था पिछली २६ जनवरी से चालू हो गया। संविधान सभा के प्रतिनिधियो ने उसके बनाने मे गहरा परिश्रम किया। देश उनका कृतज्ञ है। यह सविधान देश के इतिहास मे सदा स्मरणीय रहेगा। इसके द्वारा ही हमे एक बाहरी देश की अधीनता से नियमित छुटकारा मिला और हम निश्चित क्रम से अपने देश के शासन मे सन्नद्ध हुए।

सविधान के सबंध मे यह समालोचना की गई है कि उसने ब्रिटिश गवर्नमेंट के बनाये अधिनियम को ही अपना आधार रखा। ऐसा करना स्वाभाविक था। शासन प्रणालियों का जनता के जीवन से गहरा सबध होता है। जैसे मनुष्य के विचारो और उनकी आदतो के बदलने मे समय लगता है वैसे ही शासन प्रणालियो के बदलने मे भी समय लगता है। जो प्रणाली चल रही थी उसका ही आधार लेकर और उसमे आवश्यक परिवर्तन कर हमे अभी आगे चलना था। धीरे-धीरे जनतान्त्रिक परपरायें देश मे निश्चित होगी, अनुभव से नये विचार उत्पन्न होंगे और सविधान मे भी आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन होगे।

सविधान के अधीन हमारे देश का शासनक्रम असाप्रदायिक है। इसके कहने की आवश्यकता इसलिए पड रही है कि देश के विभाजन के बाद जो पाकिस्तान नाम का देश हमारे ही पुराने अग से बना उसने अपना शासन इस्लाम धर्म के आधार पर सांप्रदायिक रखा है। हमारे देश का सविधान या शासन किसी विशेष धर्म का अनुयायी नही है। वह किसी धर्मग्रंथ का आश्रित नही है। बिना धर्म या जाति भेद के सब व्यक्तियो के अधिकार उसमे बराबर रखे गए है। मैं इसको अपने देश की बुद्धिमता और दूरदर्शिता का सूचक समझता हू। देश के विभाजन के बाद इस देश मे हिंदुओ की सख्या अन्य धर्मावलबियो की कुल सम्मिलित सख्या से बहुत अधिक है। पाकिस्तान को देखकर यहां के हिंदुओ के मन मे यह भावना उठ सकती है कि हम इस देश मे हिंदू शासन रखे। चुनावो मे इस प्रकार की धुन कभी उठाई भी जा सकती है। मैं इस विषय पर यहा कुछ थोडा सा विचार करना और अपनी बुद्धि के अनुसार चेतावनी देना चाहता हू।

मध्ययुगीन काल मे जो हिंदू राज्य थे उनका केंद्र अधिकतर कोई एक व्यक्ति होता था। शासन का सूत्र उसके अथवा उसकी इच्छा के अनुसार चुने हुए मन्त्रियो

के हाथ मे रहता था। साधारणतया परपरागत शैलियो के अनुसार कार्य-सचालन होता था। परतु आवश्यकता पडने पर परपरा से हटकर भी निश्चय किये जाते थे। ग्रथो का प्रभाव था किंतु किसी काल के सबध में यह नही कहा जा सकता कि शासन का सपूर्ण आधार कोई एक निश्चित ग्रथ रहता था। समय समय पर स्मृतिया रची गई और उन पर टीकाएं बनी। उन सब का आदर होता था। परतु यह नही होता था कि किसी एक ग्रथ की लिखित आज्ञायें जनमत या मन्त्रियो के मत की अपेक्षा शासन मे अधिक अधिकार प्राप्त करती रही हो। गण राज्यो मे और भी अधिक जनता का मत ग्रथो की अपेक्षा बलवान था।

परपराओ का बल रहता था। किंतु यह भी समझना भूल होगी कि परपराओ से हटकर विचार करना असभव अथवा कठिन था। बहुत से लोग प्राचीन या मध्ययुगीन भारतीयो को और उनके धर्म को रूढ़िवादी कहते हैं। इसमे केवल आशिक सत्य है। ससार भर के स्थायी और पुराने शासनो मे रूढि और परपरा का स्थान है। इस देश मे सभवत' उनका बल अधिक था। परंतु मौलिक रीति से भारत बुद्धिवादी रहा है। ग्रथो का बहुत मान करते हुए भी इसने कभी अपनी विचारधारा को किसी ग्रथ मे सदा के लिए सीमित नही किया। ग्रथो का गहरा प्रभाव होते हुए भी यहा बुद्धि का ही वैभव था। ईश्वर के नीचे बुद्धि ही परमतत्व माना गया था और सब शास्त्र बुद्धि की सीमा के भीतर और उसके सजग नियत्रण के अधीन थे। गीता का यह वाक्य—

"यावानर्थ उदपाने सर्वत' सम्प्लुतोदके
तावान सर्वेषु वेदेपु ब्राह्मणस्य विजानत ॥"

[सब स्थानो मे जल फैला होने पर एक गढैया का जो उपयोग है वही ब्रह्मज्ञानी के लिए सब वेदो का है।]

—ज्ञान अथवा बुद्धि की महीमा को वेदो के भी ऊपर रखता है। बृहस्पति स्मृति का यह वाक्य—

"केवल शास्त्रमाश्रित्त्र न कर्त्तव्यो विनिर्णय ।
युक्तिहीन विचारेतु धर्महानि प्रजायते ॥"

[केवल शास्त्र का सहारा लेकर कर्त्तव्य का निर्णय नही होता। जिस विचार मे युक्ति नही है उससे धर्म की हानि होती है।]

—शास्त्र को युक्ति अथवा बुद्धि से नियन्त्रित बताता है। वेदो की व्याख्या के सबध मे यास्काचार्य का यह प्रसिद्ध वाक्य "तर्को वै ऋपिरुक्त" [तर्क ही (वेदो के अर्थ करने वाला) ऋपि कहा गया है] बुद्धि की श्रेष्ठता का निर्देश करता है। मेरा तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल की परपराओ के बीच भी यह देश बुद्धि का

मुख्य सहारा लेता था। जो बात समय के अनुकूल उचित होती थी उसको स्वीकार करने में हमारे देश ने प्राचीन काल से बराबर ग्रथो और परपराओ से हटकर काम किया है। पुस्तको के वाक्यो की अपेक्षा औचित्य पर कितना अधिक ध्यान दिया जाता था यह इस पुराने वाक्य से स्पष्ट है—

'उपयुक्त मनुपयुक्त कर्तुं शक्य नहि वचन सहस्त्रै।" अर्थात एक सहस्त्र (ग्रंथो के) वचन उचित को अनुचित नहीं कर सकते।

यह बात मानी हुई है कि हमे इस देश मे गणतत्र रखना हैं। स्पष्ट ही गणतत्र मे जनता का मत ग्रयो की आज्ञा की अपेक्षा अधिक चलेगा। ऐसे तत्र की आधार-शिला वुद्धि और युक्ति हो सकती है कोई ग्रथ नही। इस सिद्धात को हमारा शिक्षित वर्ग जितना शीघ्र स्वीकार कर लेगा उतना ही शीघ्र हम जनता को फैले हुए मूढग्राह से ऊपर उठाकर जनतंत्रीय शासन के लिए उपयुक्त वना सकेंगे।

जो राजनीतिज्ञ इस देश के शासन को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से चलाने की वात सोचते हैं उन्हे अपने देश की विभिन्न परपराओ और रूढियो को आख से ओझल नही करना चाहिए। किसी एक रूढि अथवा धर्मग्रथ को पकडकर हमारा तंत्र चल नही सकता। इस प्रकार सोचना भी हमारे आपसी झगडो को वढाएगा और शासन को दुर्वल करेगा। पाकिस्तान से हमे इस विषय में सीखना नहीं है। हमारी दृढ आधारशिला कोई पुस्तक नही, चेतन वुद्धि ही हो सकती है। ग्रथ और परपरायें सहायक होगी किंतु वुद्धि का स्थान नही लेंगी। इस प्रकार वुद्धि को आधार मानना ही साम्प्रदायिकता का विरोध है।

इस सविधान का दूसरा मुख्य दृष्टिकोण यह है कि देश के विभिन्न भाग अपनी स्थानीय शासन सुविधाओ को रखते हुए केंद्रीय शासन के द्वारा आपस मे बधे रहे और आपस मे अधिक समीप आने की ओर उनकी प्रवृत्ति हो। इसी से हमारा देश वलवान और ससार मे आदर का पात्र हो सकेगा।

हिंदी भाषा को सरकारी कामो के लिए प्रधानता देकर इसी प्रवृत्ति को वल दिया गया है। मेरा विश्वास है कि सविधान का यह अग देश भर मे विचारो की एकता और प्रादेशिक प्रेम वढाने मे जादू का काम करेगा। जो सस्कृतिक काम पूर्व समय मे संस्कृत भाषा ने इस देश मे किया था उससे अधिक शक्ति देने-वाला काम हिंदी से होने वाला है। सस्कृत भाषा का गहरा प्रभाव हमारे देश की ऊपरी श्रेणियो मे था किंतु हिंदी जनता के भीतर घुसकर और प्रादेशिक भाषाओ से उनकी वहिन के नाते आदान-प्रदान कर देश के समस्त जन समुदाय मे ऐक्य और प्रेम की चेतना उत्पन्न करने वाली है। अपनी एक वहिन को राष्ट्र भाषा के सिहासन पर वैठाकर हमारी प्रादेशिक भाषाए भी स्वय आदरित और सुखी होंगी और अपने अपने साहित्यिक विकास से फलें फूलेंगी।

विना सविधान के सहारे हिंदी की शक्ति ने भिन्न भिन्न प्रदेशो को अपनी ओर खीचा था और अव सविधान का सहारा पाकर वह तो देश भर की जनता की सम्पत्ति वन गयी है। उसके रूप-निर्माण मे भी दिन दिन समस्त देश का हाथ होगा। इससे उसका शब्द और साहित्य भडार वढेगा और उसकी उपयोगिता विस्तृत होती जाएगी।

वास्तविकता को देखते हुए सविधान ने अभी अग्रेजी की मुख्यता १५ वर्षो के लिए मानी है। परन्तु यह हमारे देशवासियो के हाथ में है कि अपनी दूरदर्शिता और लगन तथा प्रेम युक्त परिश्रम से इस अवधि की समाप्ति से वहुत पहले अपनी स्वीकृत राष्ट्र-भाषा को एक परभाषा की अपेक्षा अधिक आदर देकर अपनी सामूहिक शक्ति वढाए और जव अवसर देखें तव सविधान मे भी मिल जुल कर और एक मत होकर आवश्यक परिवर्तन कर लें।

सविधानो की ओर मेरी दृष्टि न केवल आदर की किंतु पूजा की रहती है। उनके साथ खेलवाड करना मुझे सदा अनुचित लगता है। उनकी अवहेलना करना मैं साधारणत आत्महत्या के समान अपराध समझता हू। इस प्रकार की मनो-भावना देश मे अनियत्रण फैलाती है, अनियत्रण राष्ट्रीय शक्ति को क्षीण करता है, शक्ति की कमी दुर्वलता लाती है और दुर्वलता राष्ट्र का नाश कर उसको पराधीन वना देती है।

मेरा मत है कि देश भर अपने सविधान को अपनी सामूहिक इच्छाओ और भावनाओ का प्रतीक समझ उसके प्रति पूजा का भाव रखे। इस विचार को रखते हुए भी मैं परिवर्तनवादी हू। मैं सदा कहता हू कि "समय भेद न धर्म भेद" (समय के भेद से कर्त्तव्य का भेद होता है) परन्तु परिवर्तन मे भी उच्छृ खलता नही, नियत्रण अपेक्षित है। भिन्न दिशाओ मे काम करने के हेतु नये मार्ग वनाने के लिए सविधान ने हमे वहुत फैला हुआ क्षेत्र दिया है किंतु, आगे चलकर किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए जव हमे सविधान मे किसी परिवर्तन की आवश्यकता दिखाई पडे तव सवैधानिक मार्गों से ही हमे परिवर्तन करना होगा।

वैदेशिक नीति

विदेशो से सवध के प्रश्न पर काग्रेस की अव तक यह नीति रही है कि इस समय जो दो वडे दल ससार मे हैं, जिनमे एक का अगुआ अमेरिका है और दूसरे का रूस, उनमे से किसी मे हमारा देश शामिल न हो, किंतु सयुक्त राष्ट्र सघ मे रहते हुए दोनो दलो के साथ मैत्री का वर्ताव रखे और जो प्रश्न राष्ट्र सघ मे उपस्थित हो उनमे से प्रत्येक पर न्याय, औचित्य और शाति-स्थापना की दृष्टि से विचार करे।

हाल के दो प्रश्नो ने हमारी इस नीति के दो उदाहरण हमारे सामने रखे हैं।

लाल-रगी नीति पर चलने वाले चीन को सम्मिलित सयुक्त राष्ट्र सघ मे मान्यता देने के प्रश्न पर हमारे देश का मत अमेरिका और ब्रिटेन के विरुद्ध रूस के साथ मान्यता देने के पक्ष मे है। कोरिया मे जो उत्तरी भाग ने दक्षिणी भाग पर आक्रमण किया उसमे हमारा देश अमरीकी ब्रिटेन समूह के साथ रूस के विरुद्ध उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी घोषित करने के पक्ष मे रहा है।

इस प्रकार की नीति से कुछ लाभ है और कुछ हानि भी। लाभ तो यह है कि सब देशो के सामने हम औचित्य और न्याय का आदर्श रखते हैं और सबो को उस आदर्श की ओर लाने का यत्न कर सकते हैं। हमारी यह नीति विश्व-शासन के आदर्श मे सहायक है और इस कारण आदर्शवादी विचारक हमारा आदर करते हैं। साथ ही इस नीति मे यह त्रुटि है कि इन दोनो बलवान दलो मे हमे कोई अपना पूर्ण सहयोगी नही समझता। विशेषकर हमारे और पाकिस्तान के बीच जो गुत्थिया आती हैं उनमे स्वार्थवश पाकिस्तान को सहयोगी बनाने का दृष्टिकोण बहुतेरे देशो को हमारे विरुद्ध पाकिस्तान की ओर झुकाता है। पाकिस्तान ने काश्मीर मे हमारे देश पर आक्रमण किया, उसका प्रचुर प्रमाण राष्ट्र सघ के सामने आया किंतु सघ ने पाकिस्तान को आक्रमणकारी नही घोषित किया।

वास्तविक बात यह है कि विश्व शासन की भावना तो बहुत देशो मे है किंतु उसके लिए जो नैतिक मनोविकास चाहिए उसकी प्राय कमी है, अथवा यो कहे कि दूर के ध्येय को सामने रखते हुए भी सामूहिक शक्ति की तात्कालिक आवश्यकता से अप्रभावित रहकर प्रत्येक प्रश्न को केवल न्याय की दृष्टि से देखने का अभ्यास अभी ससार के देशो को नही है। कोरिया मे एक नीति और काश्मीर में वैसी ही अवस्था मे दूसरी नीति इसी निम्न दृष्टिकोण का परिणाम है।

हमारी नीति दलो से अलग रहने की है। उसमे हमारा स्वाभाविक आकर्षण है। किंतु ससार मे रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता है। "मेरी तामीर मे मुजमिर है यक सूरत खराबी की"। रजोगुण तमोगुण को जीतता है और फिर वह सात्विकता मे परिणत हो सकता है। राजोगुण के साथ सामूहिक शक्ति का उपयोग होता है। विदेशी राजनीति मे यह असभव नही है कि हमे कभी इस विषय पर भी विचार करना पडे कि सब स्थितियो की नाप तोल कर हम इन दो दलो मे से एक के साथ अपने देश की रक्षा के निमित्त अधिक घनिष्ठता उत्पन्न करें।

काश्मीर के प्रश्न को सामने रखकर पाकिस्तान यह झूठा प्रचार कर रहा है कि भारत रूस के साथ है। अपने को वह अमेरिका और ब्रिटेन का बड़ा पोषक प्रकट करता है। वह समझता है कि इस रीति से सयुक्त राष्ट्रसघ मे वह अमेरिका और ब्रिटेन की सहायता काश्मीर के विषय मे पा सकेगा। उसने यहा तक कहा कि काश्मीर के फसाव के कारण वह कोरिया मे सेना भेज कर सहायता नही कर

सका। इस कथन का मतलब स्पष्ट ही है। हमारे देश को पाकिस्तान की इस चाल से सचेत रहना है।

ब्रिटिश कामनवेल्थ मे भारत रहे या न रहे यह प्रश्न पिछले वर्ष हमारे सामने आया। हमारे प्रधान मत्री इगलैड भी इस विषय की बातचीत के लिये गये और वह इस बात के निर्णय कराने मे सफल हुए कि इगलैड के राजा का कामनवेल्थ के प्रत्येक देश मे राजा माना जाना आवश्यक न समझा जाय। हमारे देश मे गणराज्य है किंतु कामनवेल्थ को जो नया रूप पिछले वर्ष दिया गया उसके अनुसार हमारा देश कामनवेल्थ के भीतर रह सका और अब भी है। हमारे प्रधानमत्री की इस नीति पर एक ओर समाजवादी और दूसरी ओर हिंदू महासभा वाले बहुत आक्षेप करते रहते हे। मैंने आरभ में ही प्रधानमत्री को, जब वह इगलैंड से लौटकर आए, उनके काम पर बधाई दी थी। आज भी मेरा वही मत है। भारतीय काग्रेस कमेटी ने इस मत का समर्थन देहरादून मे किया था और मेरा विश्वास है कि बहुत अधिक काग्रेसजनो का और विदेशी राजनीति पर विचार करने वाले जन समूह का यही मत है।

एशिया महाद्वीप मे हमारे देश का विशेष स्थान है। पश्चिमीय स्वार्थ-साधको से इस महाद्वीप को मुक्त करने का बहुत बडा दायित्व हमारे देश पर है। साथ ही यहा शाति रखने के भार-वहन करने मे हमारा बड़ा भाग है।

इडोनीशिया और बर्मा की कठिनाइयो मे हमारे देश ने जो मैत्री का हाथ उनकी ओर बढाया उसका यह प्रभाव उन देशो पर पडना ही था कि वे हमारे देश की ओर मित्र भाव से आकर्षित हो।

चीन के साथ हमारे देश का पुराना सास्कृतिक सबध है। उस सबध की मधुर ऐतिहासिक स्मृतिया हैं। बहुत सघर्ष के बाद चीन ने अपने शासन की एक नई व्यवस्था की है। उसका रूप क्या होगा यह तो भविष्य की बात है किंतु चीन की जनता के साथ हमारी गहरी सहानुभूति है और हम उसके राजनीतिक प्रयोग की सफलता के इच्छुक हैं। चीन के प्रति अपनी मैत्री का भाव हमारी सरकार ने अपने इस स्पष्ट मत से दिखाया है कि सयुक्त राष्ट्र सघ मे चीन को मान्यता दी जाय।

इस समय सबसे अधिक भयावह वैदेशिक स्थिति कोरिया मे उत्पन्न हुई है। उत्तर और दक्षिण कोरिया का आपसी झगडा अभी सीमित है किंतु सयुक्त-राष्ट्र सघ ने उसमे हस्तक्षेप किया है। उत्तर कोरिया को उसने आक्रमणकारी कहा है और उसके आक्रमण को रोकने के लिए राष्ट्र सघ की ओर से अमेरिका ने अपनी सेनायें भी भेजी हैं। हमारे देश ने अमेरिका और ब्रिटेन का साथ इस बात मे दिया है कि उत्तरी कोरिया आक्रमणकारी घोषित हो किंतु अपनी ओर से कोई सेना भेजने का दायित्व नही लिया है। अब तक जो नीति कोरिया के विषय मे हमारी

सरकार ने बरती है मुझे वह, सब स्थिति को देखते हुये, उचित लगी है। मैं उसका पोषण करता हू।

निर्वासितों की समस्या

देश के विभाजन के कारण पजाब, सरहदी सूबा तथा सिंध से आये पीडित निर्वासितो को बसाने और उन्हें सहायता देने का जो प्रश्न सन् १९४७ मे हमारे सामने आया वह अभी तक हल नही हुआ है। केंद्रीय और प्रादेशिक गवर्नमेंटो ने दु ख के वेग को कम करने मे भरसक सहायता दी है, जो तीव्र पीडा थी वह कुछ सहायता के कारण और सहन करते करते कम हो गयी है। किंतु उससे छुटकारा देने के लिए हमारी केंद्रीय गवर्नमेंट को अभी बहुत काम करना है।

इस बीच पूर्वी बगाल के निर्वासितो की समस्या विशेष रीति से तीव्र हो गई है। जयपुर के अधिवेशन के समय ही पूर्वी बगाल से निर्वासितो के हमारे देश मे आने का प्रश्न खड़ा हो चुका था। जयपुर अधिवेशन मे हमारे अध्यक्षजी ने उस ओर ध्यान दिलाया था। जिस प्रकार ढाका मे लगभग सहस्र घरो को पाकिस्तान की गवर्नमेंट ने छीनकर लगभग १५००० मनुष्यो को निर्वासित किया था उसकी चर्चा उन्होने की थी। तब से अब तक पूर्व बगाल से भागकर और अपनी अचल सम्पत्ति को छोड़ कर बराबर लोग भारत मे चले आ रहे हैं। इस प्रश्न मे मुझे यहा नही जाना है कि अब तक ३४ लाख की जन-सख्या भागकर आयी, जैसा कि सरकार की ओर से कहा गया है, अथवा लगभग ५० लाख मनुष्य आये जैसा कि बगाल के कुछ असरकारी स्रोतो ने बताया है। इतना स्पष्ट है कि पाकिस्तान की नीति पूर्वी बगाल के हिंदुओ को वहा निर्भय और निस्सकोच होकर रहने का अवसर नही दे रही है।

इस वर्ष के फरवरी मास से तो पूर्वी बगाल को छोडकर भारत आने वालो की सख्या तीव्रता से बढी। एप्रिल मे जो समझौता हमारी सरकार और पाकिस्तान के बीच हुआ उसका यह अच्छा परिणाम अवश्य निकला कि जो जन पाकिस्तान छोड़कर आना चाहते थे उनको सुविधायें आने के बारे मे मिली और वहा से भागने का वेग भी रुका। परन्तु यह नही कहा जा सकता कि बगाल के हिन्दू नि शक होकर पाकिस्तान मे रह रहे हैं या रह सकेंगे।

जहा तक हमारे देश मे मुसलमान भाइयो के रहने का प्रश्न है हमारा असाम्प्रदायिक सविधान और शासन इस देश के रहने वाले प्रत्येक मनुष्य के अधिकार बराबर मानता है और किसी प्रकार का जातिभेद नही करता। कही-कही स्थानीय झगडों के कारण कुछ मुसलमान हमारे देश से भी पाकिस्तान गये किंतु सन् १९४७ के उथल-पथल को छोड़कर इनकी सख्या आपेक्षिक दृष्टि से बहुत थोडी है। हमारी स्थिर नीति यह है कि हमारे देश मे साम्प्रदायिकता का प्रभाव न होने

पाए और सब सम्प्रदाय के लोग मिलकर और अपने अधिकार बराबर के मानकर इस देश मे बसें और इसको दृढ बनावें। हमारी मनोवृत्ति यह है कि प्रत्येक सम्प्रदाय के जन अपने को इस देश मे सुरक्षित समझें। इसी नीति के अनुसार हमारे शासन के कुल काम चलते है और हमारा यत्न है कि जनता में भी इसी प्रकार का वायुमण्डल बने जिससे हर एक अपने को सुरक्षित समझे और यदि कही अनाचार दिखायी पडे तो जनता स्वय उसके विरुद्ध शासन अधिकारियो के साथ खडी हो जाय। स्थानीय बहुसख्यक समूहो का यह विशेष दायित्व है कि वे अल्पसख्यकों की सदा रक्षा करें और देश मे अशान्ति न उत्पन होने दें।

यदि पाकिस्तान मे भी यही नीति बरती जाती तो वहा से हिन्दुओ के भागने का प्रश्न न उठता। किन्तु हमारे देश की असाम्प्रदायिक नीति के विरुद्ध पाकिस्तान की साम्प्रदायिक नीति है। वह शासन स्पष्टतया इस्लामी साम्प्रदायिकता के आधार पर है। वहा शासन-बुद्धि साम्प्रदायिकता के अधीन होकर रहती है, उनके ऊपर नही चढती। इस साम्प्रदायिकता को कुछ विशेष पुराने ग्रन्थो का आधार है, बुद्धि और विचार का नही। शासन की खुली हुई साम्प्रदायिकता वहा की मुसलमान जनता मे अनुदारता और असहिष्णुता पैदाकर दूसरे सम्प्रदायो के प्रति द्वेष का भाव उत्पन्न करती है। पाकिस्तान का पृथक् अस्तित्व साम्प्रदायिकता की नीव पर हुआ और अपने अस्तित्व के बाद भी वह बराबर उसी मनोवृत्ति को उत्तेजना देता आया है जिसने पृथकता की माग की थी। वहा इस्लामी साम्प्रदायिक दृष्टिकोण वाले बल पाते है और दूसरे सम्प्रदाय वाले अपने को अरक्षित अनुभव करते हैं। हिन्दुओ के पाकिस्तान से भागने मे, वास्तविक अनीतियो के अतिरिक्त, यह मानसिक कारण भी है।

ससार साम्प्रदायिकता से ऊपर उठ रहा है। हमारे देश मे यह विष न फैले इसके लिये हम सब देश प्रेमियो को सजग रहना है। मेरी तो आशा है कि समय पाकर ससार की प्रगतिशील शक्तिया पाकिस्तान को भी साम्प्रदायिकता से ऊपर उठने के लिये मजबूर करेंगी और तब भारत और पाकिस्तान की मानसिक प्रवृत्ति अधिक समीप हो जाने से किसी भी समुदाय को इन दोनो देशो मे कही अरक्षित रहने का भय न रहेगा।

परन्तु यह तो आगे की बात है। इस समय की समस्या का बोझ तो हमारे ऊपर है ही। इस समस्या के दो अग हैं—एक तो भारत और पाकिस्तान का अपने अल्पसख्यको के साथ व्यवहार और दूसरा पाकिस्तान से हमारे देश मे आये हुए विस्थापितो की सहायता और इनके बसाने का प्रबन्ध। दोनो ही गम्भीर प्रश्न हैं। मैं इनके ब्योरो मे यहा नही जा सकता। हमारी केन्द्रीय गवर्नमेट ने दोनो ही प्रश्नो की ओर ध्यान दिया है और रास्ता निकालने के लिए यत्नवान है। पाकिस्तान से कई बार हमारी गवर्नमेट ने समझौते किये किन्तु समस्या का कोई ठीक समाधान

नही निकला। मुझे ऐसा लगता है कि पाकिस्तान के साथ वर्ताव करने मे अधिक करेंपन की आवश्यकता पडेगी।

विस्थापितो के सबध मे हमारी केन्द्रीय गवर्नमेट ने आरम्भ से सहृदयता से सहायता की है। राज्यो की सरकारो ने भी भरसक सहायता की है किंतु उनकी शक्ति परिमित है। पूर्वी पजाब से सन् १९४७मे पाकिस्तान गयी हुई मुस्लिम जनता ने जो खेती की भूमि छोड़ी थी उसे पजाब की सरकार ने हाल मे पश्चिमी पजाब से आए हुए उन विस्थापितो मे एक अनुपात से बाटा है जो स्वय पाकिस्तान मे भूमि छोड़ कर आये थे। इस प्रकार भी कुछ विस्थापितो को आशिक सहायता पहुची है। परन्तु जो कुल सहायता हुई है, उससे समस्या बडी है। सन् १९४७ से अब तक करोड से ऊपर जन समुदाय इस देश मे आ चुका। केन्द्रीय गवर्नमेट का व्यय इन तीन वर्षों मे लगभग ७५ करोड हुआ है, जिसमें सरकारी प्रबध का व्यय भी शामिल है। स्पष्ट ही निष्कामितो की गहरी हानियो और उनकी आर्थिक स्थिति को देखते हुए यह सहायता बहुत थोडी है।,

पाकिस्तान से आये हुए विस्थापित जो सम्पत्ति वहा छोडकर आए हैं, उसका अनुमान कई क्षेत्रो मे किया गया है। गवर्नमेट की ओर से भी कुछ अनुमान पहले प्रकाशित हुआ है। दाब कर अनुमान करने पर भी यह जान पडता है कि ३५ अरब से ऊपर की सम्पत्ति पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान मे निर्वासितो की छूटी है। निर्वासितो की हानि की कुछ अश मे पूर्ति करने का अपना दायित्व केन्द्रीय गवर्नमेट ने स्वीकार किया है। देश का विभाजन क्यो हुआ इस प्रश्न को बिलकुल अलग छोड़ कर यह मानना ही पडता है कि इन विस्थापितो के कष्ट का कारण हमारी राष्ट्रीय नीति है। राष्ट्रीय नीति के कारण जो हानि किन्ही समुदायो को होती है उसकी आवश्यकतानुसार पूर्ति करना सपूर्ण राष्ट्र का कर्त्तव्य है। हम सबका सम्मिलित हित जिस कष्ट का कारण है उसके दूर करने मे भी हम सबका सम्मिलित दायित्व है। यह काम २५ या ३० करोड वार्षिक व्यय से पूरा नही हो सकता। संपूर्ण हानि का प्रतिफल तो हम दे ही नही सकते, किन्तु मेरा निवेदन है कि फिर भी निर्वासितो के कष्ट निवारण के लिए कई अरब रुपयो की आवश्यकता है। यह रुपया किसी विशेष योजना द्वारा ही आ सकता है। मैंने साम्पत्तिक कर उगाहने की बात कुछ पहले कही थी। मैं इसे व्यावहारिक समझता हू। यदि गवर्नमेट को यह व्यावहारिक न लगे तो वह स्वय पर्याप्त धन सग्रह करने और विस्थापितो को सहायता पहुंचाने का मार्ग निकाले यह मेरा निवेदन है।

भारत-पाकिस्तान

विभाजन के आरम्भ से ही भारत और पाकिस्तान का आपसी सबध हमारी राजनीति की एक मुख्य समस्या रही है। अल्पसख्यको के साथ उचित

व्यवहार के प्रश्न के अतिरिक्त काश्मीर का प्रश्न दोनो देशो के बीच तनाव का कारण है। काश्मीर परपरा तथा व्यवस्था के अनुसार भारत का अग है। पाकिस्तान की सेना ने उस पर चढाई कर उसके एक अश को अपने अधीन कर रखा है। काश्मीर मे जनता के मत लेने की सुविधा उत्पन्न हो इसके लिये भी वह अपनी सेना हटाने को तैयार नही। सयुक्त राष्ट्र सघ से गवर्नमेंट ने जो यह माँग बराबर की है कि वह पाकिस्तान को आक्रमणकारी घोपित करे उसके पीछे हमारी जनता है। जैसा कि अमेरिका के एक प्रसिद्ध पत्रकार ने कहा है, जो बात कोरिया के सम्बन्ध मे सयुक्त राष्ट्र सघ ने की वही उसे पाकिस्तान के सबध मे करना उचित था। इसी मे उस सघ की न्याय बुद्धि का परिचय मिलता और आगे के कार्यों मे उसे शक्ति मिलती। भारत पूरी रीति से सयुक्त राष्ट्र सघ का समर्थक और पोपक है। भारत की यह धारणा है कि ससार मे शान्ति रखने, देशों को आपसी द्वेषोऔर लडाइयो से बचाने और उनको नियन्त्रित रखने तथा उनके नैतिक स्तर को ऊचा करने के लिये ससार भर मे एक केन्द्रीय शासन की आवश्यकता है। सयुक्त राष्ट्र संघ के स्वरूप मे उसे अपनी इस भावना की पूर्ति सभव दिखाई देती है। भारत इस विषय मे अपने सीमित स्वार्थो से ऊपर उठकर संसार का स्वार्थ देखता है। हमारे देश के लिये यह कोई नई बात नही है। ससार भर के हित की भावना हमारी प्राचीन सस्कृति का अंग है।

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया ।
सव भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् खभाग् भवेत् ।।

[ससार के सव लोग सुखी और रोग रहित हो, सबो का कल्याण हो, कोई भी दु खी न हो]

हमारे देश का यह पुराना वाक्य सयुक्त राष्ट्र सघ का सिद्धात वाक्य होने के योग्य है।

किंतु अभी हम देख रहे हैं कि वह सघ पक्षपात रहित न्याय करने की बुद्धि अपने सदस्यो मे नही पैदा कर सका है और उनमे अपने स्थानीय स्वार्थों के कारण सघर्ष होता रहता है।

भारत की सरकार ने अपने सौजन्य से सघ का सम्मान करते हुए पाकिस्तान के प्रश्न को स्वय अपनी ओर से उसके सुपुर्द किया था। किंतु ऐसा करके वह कुछ देशो की स्वार्थ-नीति का निशाना हो गया। उसके अपने अग पर पाकिस्तान की सेना अब भी बैठी है जिसे वह अपनी शक्ति से, बिना राष्ट्रीय सघ की सहायता लिए हुए, हटा सकता था। उसने राष्ट्रीय सघ का सम्मान वढाने का यत्न किया किन्तु सघ ने अपनी नीति से भारत पर एक जटिल समस्या लाद दी और पक्षपात् रहित नीति से काम नही किया।

श्री ओवन डिक्सन आए और चले गए और काश्मीर का प्रश्न वही पर है जहां आरम्भ मे था। मैं अपनी केंद्रीय गवर्नमेंट को आश्वासन देता हूं कि काग्रेस और देश की जनता की सहायता उसको इस बात मे दृढ रूप से प्राप्त होगी कि काश्मीर से पाकिस्तान की सेनाए हटाई जाए और काश्मीर मे हमारे उस प्रदेश के शासन का, जिसके अगुआ प्रतीक हमारे भाई शेख अब्दुल्ला हैं, पूर्ण रीति से हमारे सविधान के अनुसार अधिकार हो।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

इन प्रश्नो की चर्चा करते हुए हमारा ध्यान अपने देश के हिंदू-मुस्लिम प्रश्न की ओर जाता है। हमारे नेता महात्मा गाधी ने कहा था कि हिंदू-मुस्लिम एकता हमारे जीवन का श्वास है। हम काग्रेस वाले महात्मा गाधी के नेतृत्व मे सदा हिंदू-मुस्लिम एकता का सुख स्वप्न देखते थे। उस स्वप्न को सच्चा करने के लिये हमने पुरानी लकीरो को मिटाकर अपने खान-पान, रहन-सहन को इसी क्रम पर ढाला कि हिंदू और मुस्लिम मे सामाजिक अतर हटता जाय और हम सब एक समाज और एक सस्कृति के अंग बनें। इस काम मे हमे एक हद तक सफलता भी मिली। खिलाफत आदोलन में हिंदुओ ने मुसलमान भाइयो के साथ कधे से कन्धा मिलाकर काम किया और जनता मे हिंदू-मुस्लिम एकता की लहर फैली, किंतु धार्मिक कट्टरता और स्वार्थ की शक्तियो ने, जो असहयोग के कार्यक्रम मे दब गई थी, अपना सिर उठाया और सन् १९२२-२३ से ही साम्प्रदायिक झगडे प्रकट होने लगे दोनो के बीच खाई को पाटने के कई यत्न हुए। महात्मा गाधी ने अपनी जान की बाजी भी लगा दी। उसका कुछ प्रभाव दिखाई पड़ा किंतु विरोधी शक्तिया प्रबल निकली और स्थाई मेल दूर हो गया। मुस्लिम लीग ने अपनी मागो को रूप दिया और अंत मे उसने अपना वह सिद्धान्त सामने रखा कि हिंदू मुसलमान जातियां दो पृथक् राष्ट्र हैं, दोनो की सस्कृतिया अलग-अलग हैं, दोनो एक देश मे नही रह सकते और उनके बीच देश का बंटवारा होना आवश्यक है। मुस्लिम लीग इस पृथकता की माग को बराबर बढाती गई और देश मे हिंदू-मुसलमानो के बीच वातावरण बिगड़ता गया। लेजिस्लेटिव असेम्बलियो अर्थात् विधान सभाओ के लिये जो पृथक् चुनाव का क्रम था उसने मुस्लिम लीग को जातीय द्वेष फैलाने मे बहुत सहायता दी। पृथक् चुनाव के क्रम को सन् १९१६ मे स्वीकार करना हमारी बहुत भूल थी। उसी सेपीछे की कठिनाइया बढती गईं। चुनाव मे हम कांग्रेस वाले अपने सिद्धांतो के अनुसार हिंदू-मुस्लिम एकता की बात करते थे। मुस्लिम लीग मुसलमानो के अलग होने पर जोर देती थी। उसके सदस्य हिंदुओ के विरुद्ध कटु और विषैली बातें कहते थे और पाकिस्तान बनाने की माग पर बल देते थे। देश मे ब्रिटिश गवर्नमेंट का भेजा कैबिनेट मिशन आया। उसने कुछ सुझाव सामने

रखे। उसको भी यह स्वीकार करना पडा कि देश के विभाजन से हिंदू-मुस्लिम समस्या हल नही हो सकती। हमे आशा हुई कि विभाजन का प्रश्न अब नहीं रहा, दूसरी रीति से हिंदू मुस्लिम गुत्थी का सुलझाव निकलेगा। किंतु पर्दा बदला और जून सन् १९४७ मे फिर विभाजन की बात सामने आई। विभाजन के सबध मे मेरा जो मत था मैंने उसे भारतीय काग्रेस कमेटी के सामने निवेदन किया था। उस विभाजन से जो प्रश्न पैदा हुए आज भी हम उन्ही के फन्दे मे पडे हुए है।

विभाजन के बाद हिंदू-मुस्लिम समस्या का रूप बदला। पृथक् चुनाव के क्रम के बारे मे अपनी पिछली भूल से हमने शिक्षा ली और अपने सविधान मे उस क्रम को हमने हटा दिया। पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य बन गया। किंतु भारत मे भी तो लगभग साढे तीन करोड मुसलमान रहते हैं। हम पाकिस्तान का बनना रोक न सके किंतु हमारे देश मे जो मुस्लिम रहते है उनमे और दूसरी जातियो मे हमारी राजनीति अन्तर नही करती। हमारी निगाह इस बात पर है कि हिंदू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई एक राष्ट्र के अंग हो और आपस मे घुल मिल जाय और हमारे देश मे कुछ स्थानीय अतरो के रहते हुए भी एक सस्कृति हो जिसको रूप देने और जिसके विकास मे सब सम्प्रदायो का हाथ हो।

मेरा यह निवेदन है कि हमारा देश अब कभी सस्कृति या तमद्दुन को धर्म के साथ जोडने की भूल न करे। भिन्न-भिन्न धर्म के मानने वालो की भी एक सस्कृति होती है, क्योकि सस्कृति का प्रश्न भूमि और जलवायु से सबध रखता है। एक स्थान के लोगो का रहन-सहन, बोलचाल मिलती है। किंतु अपने अपने धर्म का काम या मजहबी फर्ज वे अपने अपने अलग ढग से करते हैं। चीन इसका एक उदाहरण है। हम सब प्रकार से एक सस्कृति के विकास मे सहायक हो और एक दूसरे के धर्म कर्मों को उदारता और प्रेम से देखें इस भावना के फैलाने मे हम काग्रेसजनो के प्रयत्न की आवश्यकता है।

किसान और मजदूर

हमारे सामने जनता के जीवन से सबध रखने वाले कई प्रकार के आर्थिक प्रश्न हैं। किसानो की समस्या का एक रूप है। मजदूरो के प्रश्न का दूसरा रूप है। मजदूरो मे भी मिलो और फैक्टरियो मे काम करने वालो का प्रश्न खेती पर मजदूरी करने वालो के प्रश्न से अलग है। स्वराज्य आने के साथ सब ही श्रेणियो मे चेतना का आना और अपनी स्थिति को ऊपर उठाने की इच्छा स्वाभाविक है। पिछले तीन वर्षों मे हमारी गवर्नमेटो ने जिस उत्साह और साहस से इन प्रश्नो को हल करने मे यत्न किया है वह बधाई के योग्य है। सब प्रश्न हल नही हो गए, किंतु चौमुखी यत्न हो रहा है। कई दिशाओ मे यत्न के परिणाम इच्छानुसार नही

निकले किंतु आगे के लिए वरावर काम का क्रम स्थिर हो रहा है।

किसानो की समस्या के सवध मे पिछले कुछ वर्षो मे विशेष जाच हुई है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने सन् १६४८ मे जमीदारी-प्रथा के विनाश के हेतु एक अच्छा विवरण, जिसके तैयार करने मे वहुत समय और परिश्रम लगा था, प्रकाशित किया। काग्रेस कार्यालय से पिछले वर्ष भूमि संवधी समस्याओ पर श्री कुमारप्पा के सभापतित्व मे जो विवरण निकला है वह वहुत उपयोगी है। किसानो की दशा सुधारने के लिए यह सिद्धात, जिस पर मैंने १६३० से वरावर वल दिया था, अव मान लिया गया है कि जमीदारी-प्रथा का अत हो और जमीदारो को प्रतिफल दिया जाय। कुछ राज्यो की विधान सभाओ मे इस विषय के विल उपस्थित और स्वीकार हो चुके है। आवश्यकता यह है कि सव ही राज्यो मे जितना शीघ्र हो सके किसान जमीदारों के दवाव से छुटकारा पाए और नई चेतना से खेती की उन्नति मे लग सकें।

इस दिशा मे उत्तर प्रदेश की गवर्नमेट का काम विशेप रीति से उल्लेखनीय है। वहा एक विस्तृत विधेयक (विल) हाल मे स्वीकार हुआ है। उत्तर प्रदेश की योजना का मुख्य अग यह है कि किसान अपनी जोत का स्वयं मालिक दस गुना लगान देकर वन जाय। दस गुना लगान देने का एक परिणाम यह भी होगा कि किसान का वार्षिक लगान आधा हो जाएगा।

मिल मजदूरो की दशा सुधारने का प्रश्न वहुत सजगता से केंद्रीय परिश्रम विभाग ने उठाया है। उनके निम्नतम वेतन का भी प्रश्न लिया जा चुका है। कई अधिनियम भी वन चुके हैं, जिनका सम्मिलित परिणाम यह है कि मजदूरो की स्थिति मे सुधार होगा और वे केवल मिल मालिको की कृपा पर निर्भर न करेंगे। खेती के मजदूरो के प्रश्न पर भी केंद्रीय गवर्नमेट का ध्यान है। यह प्रश्न मिल मजदूरो के प्रश्न की अपेक्षा वहुत विस्तृत और उलझा हुआ है। अनुमान किया गया है कि हमारे देश मे खेती के मजदूरो और उनके आश्रितो की सख्या ७ और १० करोड के वीच मे है। हमे इन वर्गों के आर्थिक प्रश्नो पर अभी टटोल कर चलना होगा परन्तु आशा है कि रास्ते स्पष्ट होते जाएगे।

इन प्रश्नो के सवध मे कई प्रकार की समस्याओ और रुकावटो के होते हुए भी यह सतोप की वात है कि किसानो और सव प्रकार के मजदूरो की आर्थिक और मानसिक स्थिति पर स्वराज्य स्थापित होने का अच्छा परिणाम हुआ है।

आर्थिक नियत्रण

आज की आर्थिक समस्याओ के साथ मिला हुआ प्रश्न उन नियत्रणो का है जो वस्तुओ के मोल लेने और वेचने पर लगे हुए है। इन नियत्रणो का आरभ पिछली लडाई के समय अग्रेजी गवर्नमेट ने किया था। इनकी आवश्यकता तभी

पडती है जब किसी ऐसी वस्तु के उत्पादन मे कमी होती है जिसकी माग साधारणत अधिक हो और इच्छानुसार वह वस्तु उचित मूल्य पर सबको न मिल सके। यूरोप के देशो मे इस प्रकार का नियत्रण बराबर आवश्यकता पडने पर होता रहता है। उन देशो की जनता इन नियत्रणो को गवर्नमेटो के कर्तव्यो का एक अग समझती है और गवर्नमेटो को इनके लगाने का अधिकार देती है। इन नियत्रणो से असुविधाए अवश्य ही होती हैं परन्तु जनता उनको अपने सगठित जीवन का एक अग समझ कर प्रसन्नता से बर्दाश्त करती है, क्योकि वह समझती है कि यदि नियत्रण न रहेगा तो पैसेवालो को वस्तु अधिक मूल्य देने से मिल सकेगी और साधारणजनो और धनहीनो को दुष्प्राप्य हो जाएगी। सगठित जीवन का एक यह आवश्यक परिणाम होता है कि व्यक्तियो को सघटन के सामाजिक लाभ के साथ ऐसे नियमो के बधनो की असुविधाए भी सहनी पडती हैं। हमारे देश की जनता के लिए इस प्रकार के नियत्रण लडाई के समय बिलकुल नए थे। अब तो हम उनके सिद्धात को बहुत कुछ जान गए है। फिर भी हमारे जीवन मे उस प्रकार का नियत्रित रहन सहन नही है जैसा पश्चिम देशो का होता है। इसीलिए हमारे समाज मे नियत्रणो के विरुद्ध एक प्रकार का बराबर क्षोभ रहता है।

हमारी गवर्नमेटो ने नियत्रणो की प्रणाली पश्चिम से तो ली परतु इसमे भी सदेह नही कि स्वय हमारी गवर्नमेटो के अधिकारियो मे उस प्रकार का सयम नही है जिसके आधार पर पश्चिमी देशो मे ये नियन्त्रण सफलता से चलाये जाते हैं। इसीलिये हमारे समाज की साप छछूदर की सी गति हुई है। शिक्षित वर्ग यह समझता है कि माल कम होने की दशा मे एक प्रकार का नियत्रण उचित है जिससे सबको उस माल का कुछ भाग मिल सके। परतु कर्मचारियो मे सयम की कमी उनको नियत्रणो के हटाने की पुकार मे सहायक बनाती है। हमारे व्यापारियो मे भी उस प्रकार के सयम की बहुत कमी है जो अनियमित कर्म द्वारा पैसे का लाभ उठाकर अपने को कलुषित नही होने देता। व्यापारियो और सरकारी कर्मचारियो की त्रुटियो के कारण इन नियत्रणो से अनीतिया बढ गयी। परिणाम यह है कि जो लोग नियत्रणो के सिद्धात को मानते हैं और उनका लाभ भी देखते हैं वे भी अनीतियो को बन्द करने के लिए नियत्रणो को उठा देने के पक्ष मे हैं। इसी कारण महात्मा गाधी नियत्रणो के पक्ष मे नही थे। परन्तु शासन के सामने वास्तविक कठिनाई है। कुछ नियत्रणो के हटाने का उनका अनुभव यह हुआ कि कुछ वस्तुओ का मूल्य व्यापारियो ने बहुत चढा दिया और तब फिर गवर्नमेट को साधारण जनता के हित के लिए नियत्रण लाना पडा। इस विषय मे मेरी धारणा यह है कि गवर्नमेटो को जहा समाज का नियमन करना पडता है वहा उन्हें इसका ध्यान रखना चाहिए कि निजी व्यवहारो मे वे कम से कम हस्तक्षेप करें और जिन कारणो से समाज मे नैतिकता की कमी आती है उनको दूर करने की ओर ध्यान

रखें। नियत्रणो से जब हमारी आख के सामने, हमारी सामाजिक त्रुटियो के कारण ही सही, अनियमितता फैलती है तब केवल वस्तु पहुचाना ही पर्याप्त कारण नियत्रण का नहीं रह सकता। वस्तुओ मे भी हम छाट कर सकते है। बहुत सी ऐसी वस्तुए हैं जिनके न मिलने से चाहे कुछ असुविधा हो किंतु जीवन स्वास्थ्य और सुख से चल सकता है। ऐसी वस्तुओ के संबध मे जहा तक हो नियत्रणो का न लगाना ही अच्छा होगा। साथ ही मुझे जनता से यह कहना है कि यदि नियत्रण के कारण वस्तु थोडी ही मिलती है तो हमे सम्पूर्ण समाज के हित का ध्यान कर प्रसन्नता से इस प्रकार की असुविधा को सहन करना ही उचित है।

गवर्नमेंटें नियत्रण तभी लगावें जब वे नितात आवश्यक हो और साधारण रीति से सामान्य आर्थिक नियमो के अनुसार समाज को बरतने दें—यह मुझे इस समस्या का समाधान लगता है।

पिछली २५ और २६ अप्रैल को जो आर्थिक आयोजन सम्मेलन (इकनामिक प्लैनिंग कानफ्रेंस) काग्रेस अध्यक्ष की ओर से बुलाया गया था, जिसमे राज्यो के मुख्यमत्रियो और काग्रेस के सभापतियो ने भाग लिया था, उसने यह कहा था कि गवर्नमेंट इन नियंत्रणो को नियमित रीति से और सफलता के साथ नही चला सकी और अब इन नियत्रणो की नीति पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है जिसमे ऐसे नियत्रण जो बहुत आवश्यक न हो हटा दिये जाए। मुझे आशा है कि इस सुझाव पर केन्द्रीय गवर्नमेंट अमल करेगी।

देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था

हमारे सामने यह बडा प्रश्न है कि हमे अपने देश मे किस प्रकार की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था करनी है। काग्रेस ने यह घोषणा कर दी है कि वह वर्ग-विहीन समाज शाति के मार्गो से देश मे स्थापित करना चाहती है। हमारे सविधान ने भी राष्ट्र की नीति अकित की है। इस प्रकार से मोटे रूप मे कुछ सिद्धात हमारे सामने आ गये हैं। फिर भी नीति सबधी कुछ अन्य आवश्यक प्रश्न हमारा ध्यान खीचते हैं।

उत्पादन के क्षेत्र मे हम बडी-बडी मिलो और कारखानो के खोलने और उद्योगो के केंद्रीकरण की नीति पर बल देंगे और अपनी सामाजिक व्यवस्था को उस नीति पर ढालेंगे अथवा हम देश के बहुसख्यक ग्रामो द्वारा उद्योगो को विस्तार देंगे और ग्रामो की जनता को उनके घर पर उत्पादन करने की ओर लगावेंगे, यह मार्मिक प्रश्न है। आर्थिक उत्पादन का क्रम मनुष्य जीवन के सब पहलुओ पर, उनके रहन-सहन, भोजन पर भी, गहरा प्रभाव डालता है और बहुत कुछ हमारी सस्कृति का रूप निश्चित करता है। मैं इस विषय मे महात्मा गाधी के सिद्धातो का प्रतिपादक रहा हू। मेरा निवेदन है कि उन आवश्यक उद्योगो को हम अपवाद रूप मे

रखें जिनमे ससार की स्थिति को देखते और देश रक्षा को सामने रखते हुए हमें ऐसे केंद्र बनाने है जहा श्रमिकों की बडी सख्या एक स्थान मे रह कर काम करे। साधारण आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए हमारा यह ध्येय होना चाहिये कि अपने ग्रामो और घरो मे अपने कुटुम्ब के साथ रहकर कारीगर उत्पादन का कार्य करे। इसी नीति मे मुझे मानवता और नैतिकता की रक्षा दिखाई देती है।

मैंने ऐसा समझा था कि देश ने और विशेषकर काग्रेसजनो ने इस नीति को स्वीकारा है। किंतु जो परिणाम इस नीति को स्वीकारने से निकलते है वे मुझे अभी अपने शासन के क्रम मे दिखाई नही पडते। इस नीति को स्वीकारने का एक अर्थ यह होना चाहिए कि ग्रामो मे आवश्यकता की वस्तुओ को बनवाने का हम सघटित प्रयत्न करें और इन कामो के लिए जनता को अपने उदाहरण से उत्तेजना दें और उनमे उत्साह पैदा करें। मेरा विश्वास है कि हमारे मत्रीगण जो अधिकतर महात्मा गाधी के बनाये हुए वायुमडल मे पले हैं इसी क्रम को अच्छा समझते है किंतु मुझे प्राय यह लगता है कि अच्छा समझते हुए भी वे अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग इस नीति के चलाने मे नही करते। उनके विचार और कथन व्यवहार मे वरते जाते नही दिखाई देते।

महात्मा गाधी का बल खादी और स्वदेशी, विशेषकर ग्रामो की उत्पादित वस्तुओ, के उपयोग पर था। हमारे कुछ शासनो ने खादी और ग्रामोद्योग के लिये आर्थिक सहायता भी दी है। परन्तु खादी उत्पादन के काम मे लगे हुए हमारे सहयोगी यह खुली रीति से कह रहे है कि इस समय खादी की माग घटती जा रही है। उत्पादन कराना और उत्पादित वस्तुओ की खपत का रास्ता न निकलना यह कल्पना और आयोजन की कमी है।

शासन का नेतृत्व इसमे है कि देश भर मे उन वस्तुओ की माग उत्पन्न की जाय जिनका निर्माण हम ग्रामो मे कराना चाहते हैं। इन वस्तुओ की खपत मे साधारण सस्ती और महगी का क्रम नही लगेगा। उदाहरण के लिये मैं खादी को लेता हू। इसके उत्पादन और व्यवहार के अर्थशास्त्र को देश के सामने रखने मे गाधी जी ने अथक परिश्रम किया था। वह इस विषय के अग्रणी विचारक थे। हम मे से बहुतो ने उनकी विचार प्रणाली पर स्वय विचार कर उसे उचित माना था और प्राय समस्त कांग्रेस जनो ने उसे स्वीकार किया था। अब जब हमारे हाथ मे उस विचार प्रणाली को काम मे लाने की शक्ति है तब हम आगा पीछा कर रहे हैं और उसे स्वीकार करने मे साहस की कमी दिखा रहे हैं।

मैं यह नही कह रहा हू कि गाधीजी ने खादी की जो बात कही उसके ही कारण आप कोई काम कीजिए। मैं खादी सबधी उनके बताए मार्ग का इसलिये अनुसरण करने को कहता हू कि उनका बताया तर्क बुद्धिग्राह्य और शास्त्रीय है। उस तर्क के अनुसार देश भर का कर्त्तव्य है कि वह खादी के उत्पादन, व्यवहार

और प्रचार मे भाग ले। यह कर्त्तव्य व्यक्तियों का तो है ही, काग्रेस सिद्धात पर चलने वाले शासनो का और अधिक है।

हम लोगो मे से वहुतो ने खादी के सिद्धात को मानकर सन् २० से खादी को छोडकर एक पैसे का भी दूसरा कपड़ा अपने तन ढकने या ओढने विछाने को नही लिया। "खादी ओढन खादी डासन" हमारा मत्र हो गया। खादी हमारे स्वभाव का अश वन गयी। किसी भी मूल्य पर वह हमे प्यारी लगती रही है। दूसरे कपडे की अपेक्षा महगी होने पर भी हमने उसे सदा हृदय से लगाया, न केवल इसलिए कि हमारे नेता की यह शिक्षा थी किंतु इसलिये कि अपने देश के अनगिनत भाइयो और वहिनो को रोटी पहुचाने मे वह सहायक थी। फिर अव क्यो काग्रेस शासनो के मत्रीगण सरकारी आवश्यकताओ की पूर्ति करने मे खादी की उपेक्षा कर रहे हैं? ग्राम उद्योगो मे खादी का पहला स्थान है और प्रत्येक काग्रेस शासन का कर्त्तव्य है कि अपनी कपडे की आवश्यकताओ के लिए खादी का ही, जव तक वह मिल सके, प्रयोग करे। खादी और ग्रामोद्योग का आर्थिक तर्क यदि सही नही है तो उसको छोड देने की वात मै समझ सकता हू किंतु उसको मानते हुए काग्रेस शासनो की ओर से खादी के व्यवहार मे उदासीनता मेरी समझ मे नही आती।

केन्द्रीय और राज्यो के शासन यदि इस एक मद को उठा ले और खादी का वायुमडल वना दें तो खादी की खपत और उसका उत्पादन शीघ्रता से कई गुना वढ जाएगा और उससे अन्य ग्राम उद्योगो को भी भारी सहारा होगा।

अपने एक मित्र से जो एक राज्य मे मत्री हैं मैंने गवर्नमेट की आवश्यकताओ के लिये खादी चलाने की वात की। उन्होने उत्तर दिया कि हमारा जो वजट कपडे के लिये वनता है उसके भीतर खादी महगी होने के कारण नही चल सकती। यह तो वही दलील है जो गाधी जी के समय मे भी दी गई थी और जिसका उत्तर कई वार शास्त्रीय क्रम से दिया जा चुका है। यदि यह दलील सही है तो हम सव पैसो की वचत के लिये खादी छोड सकते है। यदि गवर्नमेट खादी के सवध मे स्वय रुकती है तो दूसरो को भी अपने प्रभाव के कारण वह विना कहे रोकती है। "यथा राजा तथा प्रजा" यह वाक्य कई अशो मे सही है। यदि खादी को हम आवश्यक मानते हैं तो हमारा वजट खादी के सिद्धात पर वनेगा, अर्थात् या तो खादी के लिये अधिक रुपया वजट मे रखा जाएगा या कपडे की आवश्यकता इस प्रकार कम की जाएगी जिसमे खादी से निर्वाह हो सके।

मुझे यह नितात उचित लगता है कि काग्रेस इस वात पर वल दे कि जिन शासनो के वनाने मे काग्रेस का हाथ है उनकी नीति खादी और ग्रामोद्योग की वस्तुओ के खपाने की होगी। शासन और अधिकारीगण यदि लगन और विश्वास से इस काम को उठावें तो हमारी कई ऐसी आर्थिक समस्याए हल हो जाएगी जो

आज हमारे लिए जटिल और कष्टकर हो रही है।

अपने देश की उन्नति का जो चित्र मेरे मन में है उसमे सहयोग द्वारा ग्रामो की आत्म-निर्भरता, स्वच्छता, शिक्षा और नैतिकता का मुख्य स्थान है। नगरो और शहरो का भी चित्र मेरे हृदय मे आज के नगरो और शहरो से बहुत भिन्न है।

शिक्षा पद्धति मे मैं यह देखना चाहता हू कि उसका बल केवल जानकारी के उपार्जन पर न हो किंतु इन दो सिद्धातो पर हो - (१) चरित्र निर्माण और (२) वस्तु उत्पादन कला द्वारा आत्म निर्भरता। शिक्षा पद्धतिया, विद्यार्थियो का रहन-सहन, भोजन, खेल कूद सब इस प्रकार के हो जो इन दो आदर्शों की पूर्ति मे सहायक बनें।

इन सब कामो मे हमारा ध्येय यह होगा कि हमारा सामाजिक जीवन अधिक पूर्ण और अधिकऊचे स्तर का हो। इसके लिए आयोजन करना होगा। वस्तु उत्पादन इस आयोजन का मुख्य अश होगा। देश भर मे कोई बेकाम न रहे, हर एक अपने समय का उचित उपयोग करे और अपने साधारण काम से जो समय बचे उसमे उपयोगी वस्तु उत्पादन करे, इसके लिए देश भर मे उत्साह फैलाना हमारा कर्त्तव्य होगा। इस उत्पादन मे मानव शक्ति और मशीन शक्ति दोनो का ही उपयोग होगा।

गावो के उत्पादन मे हम बिजली शक्ति द्वारा बहुत सहायता पहुचा सकते हैं। कारीगरो को उनके घरो के पास बिजली पहुचाने की योजनाओ को हमे प्राथमिकता देनी चाहिए।

आर्थिक आयोजन के बारे मे आज बहुत प्रकार के विचार फैले है। कही-कही तो जो काम उठाये गये उनमे धन का अपव्यय भी हो गया है। अनुभव की कमी से आरभ मे कुछ धन का अधिक व्यय हो जाना क्षम्य है। परंतु धन को बचाने और उसका पूर्ण उपयोग करने की प्रवृत्ति हमारे शासनो मे अधिक आनी चाहिए। केन्द्रीय और राज्यो के सचिवालयो मे भी व्यय घट सकता है ऐसी मेरीधारणा है। आवश्यकता यह है कि हम अपने सीमित स्रोतो का अधिक से अधिक लाभ उठासकें।

धन का अपव्यय इस कारण से भी हुआ है कि कई प्रकार के काम एक साथ उठा लिए गये और सबो को चलाने के लिए पर्याप्त धन शासन के पास नही था। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक शासन अपने विभागो को अलग-अलग काम बढाने की छूट न दे दे किंतु मत्रीगण सम्मिलित विचार कर निर्णय करें कि किस विभाग के किस काम को प्रथमता देनी है और किसको पीछे उठाना है। यह सब उचित आयोजन की बात है। इस काम का उचित सपादन करने के लिए भारत सरकार ने राष्ट्रीय आयोजन कमीशन नियुक्त किया है। उसने सतर्कता से काम उठाया है। मुझे भरोसा है कि उसकी योजनाओ के साथ राज्य शासन अपनी योजनाओ का समन्वय करेंगे। इसके साथ हमे यह सदा स्मरण रखना है कि जीवन का स्तर केवल आर्थिक सुविधाओ मे ऊचा नही होता, उसमे आदर्श की ओर चलने

की प्रेरणा चाहिए और उस प्रेरणा को मूर्त्तिमान करने के लिए तपस्या चाहिए। मनुष्य जीवन की सफलता इन्द्रिय भोगो की प्रचुरता मे नही, किंतु उनके नियत्रण मे है। देश की सपत्ति वढाने के लिए हम अपनी आवश्यकताए वढायें और उनकी पूर्ति की योजनायें वनायें यह अर्थशास्त्र को उलटा समझना है। अर्थशास्त्र जव जीवन को भोग लिप्सा की ओर ले जाने मे प्रवृत्त होता है तव वह अपने कर्त्तव्य से गिर जाता है। सपत्ति की वृद्धि अपने मे जीवन का आदर्श नही हो सकती। उसमे सुख देने की भी शक्ति सव अवस्था मे नही है। उसकी उपयोगिता इसी मे है कि समाज के काम आकर सामाजिक जीवन को अधिक पूर्ण वनाए।

कला की भी यही कसौटी है कि जीवन मे आदर्शों की ओर प्रवृत्ति उत्पन्न करे। वाहरी भोगो मे फसाने के लिए जिस कला का निर्माण हो वह भय की वस्तु है।

इसलिए समाज के सचालको का यह कर्त्तव्य है कि वह धन के और कला के उचित उपयोग का ध्यान रखें। चारो ओर जिस प्रकार दूषित चलचित्रो में धन और कला का इस समय दुरुपयोग हो रहा है वह मेरे कथन का एक उदाहरण है।

अधिक विस्तृत इस विषय को मैं नही करता। मेरा तात्पर्य यह है कि शासन को इस वात मे सजग रहना है कि भोग की प्रवृत्ति समाज के स्तर को नीचा न करे। उसके उचित नियत्रण के साधनो की खोज शासन के कर्त्तव्यो की सूची मे एक मुख्य मद है।

हमारे समाज मे जव अच्छी संख्या मे ऐसे लोग मिलेंगे, जिनके लिए धन केवल अपने भोग लिप्सा की नही किंतु सेवा की वस्तु हो, जिनको सुख दूसरो को सुखी देखने मे हो, तव ही उसका स्तर ऊचा होगा। तव जीविकाहीन जन हमे नही मिलेंगे, समाज सवको उपयोगी काम मे लगा सकेगा, लूले, लगडे और रोगी रास्तो मे अपनी करुण गाथा कहते हुए समाज की दुर्वलता का परिचय नही देंगे, किंतु उनके लिए यथा साध्य आश्रमो मे रहने का प्रवध होगा, भिक्षा मागने की प्रवृत्ति नही होगी, आत्माभिमान उसे रोकेगा और समाज उसका अवसर ही न आने देगा, स्त्रिया पुरुष के आदर की पात्र होगी, उनका शरीर पैसो के वदले मे वेचना पातक समझा जाएगा, आज लगभग ३० लाख की सख्या मे जो हमारी वहिनें अपने शरीर का सौदा करती हुई नार्किक गड्ढे मे पडी हैं उनकी मुक्ति समाज करेगा और हमारा पुरुषत्व इसको अपना अपमान समझेगा कि कोई स्त्री जीवन निर्वाह के लिये अपना शरीर वेचती फिरे। इस प्रकार के समाज का चौमुखी संघटन और नैतिक सौंदर्य—यह हमारे शासन का ध्येय होगा। गाधी जी ने इसी प्रकार के शासन को राम राज्य कहा था। उसकी ओर वढने मे ही कांग्रेस की सार्थकता है।

काग्रेस संघटन

बहुत काल के बाद हमे स्वतत्रता मिली है। उसकी रक्षा के लिये काग्रेसजनो को दृढ प्रतिज्ञ होकर जनता के लिए मार्ग दिखाना है। यदि हम चारों ओर जीवन को नियन्त्रित करने का उत्साह अपने उदाहरण से भर दें तो देश को निश्चय ही ऊचा कर सकेंगे। हमारे जीवन मे सादगी और उच्च चितन हो, हमारी आवश्यकताओ मे नियत्रण हो और उनकी पूर्ति मे यह ध्यान निहित हो कि हम अपने भाइयो को रोटी देने मे सहायक बने और दूसरे देशो की चमकीली वस्तुओ को लेकर हम उनकी जीविका न छीनें। यह विचार शैली हमे शक्तिवान बनाएगी और सुखदायक होगी।

हम काग्रेस वालो के लिये काग्रेस सगठन सेवा का मार्ग रहा है। आज वह चुनावो द्वारा शासन मे अधिकार पाने का भी मार्ग हो गया है। परतु अधिकार तब ही तक रह सकेगा जब तक वह सेवा की भावना से प्रेरित है। काग्रेस के उदार सविधान का लाभ उठाकर बहुत से ऐसे जन भी काग्रेस मे आए है जिनका अधिकार की ओर मुख्य ध्यान है। राजनीतिक सगठन मे यह होना स्वाभाविक है। किंतु यदि एक अच्छी सख्या ऐसे कार्यकर्ताओ की रहे जिनके सामने मुख्य लक्ष्य देश की रक्षा और सेवा हो और पद जिनके लिए गौण हो तो काग्रेस की लोकप्रियता बढेगी।

काग्रेस के सविधान मे हमे जो त्रुटिया दिखायी पडी हैं उन्हे दूर करना हमारा एक कर्त्तव्य होगा। एक एक जिले मे कई सहस्त्र व्यक्तियो और दो एक जिलो मे कुछ लाख का कर्मठ या योग्य सदस्य बनना प्रकट करता है कि इन व्यक्तियो मे और हमारे कार्यकर्ताओ मे सचाई की कितनी कमी आ गयी है। हम सब जानते हैं कि कर्मठ या योग्य सदस्य बनने की जो शर्तें हमारे विधान मे हैं उनको पूरा करने वाले व्यक्ति साधारणतया किसी भी जिले मे तीन अको की सख्या के ऊपर नही मिलेंगे। देश भर मे इस विषय मे वास्तविकता और सचाई के विरुद्ध काम हुआ है। यह हमारे सगठन की मर्यादा को नीचा करता है। मैं बहुत नम्रता से कहना चाहता हू कि आगे को हमें दृढता और दूरदर्शिता से यह प्रबध करना होगा कि कांग्रेस के सदस्य, चाहे कम हो किंतु जो हो, वे सचाई के रास्ते से आवे और सचाई का बर्ताव करें। तब ही काग्रेस की शक्ति बढेगी और उसका ध्येय पूरा होगा।

१०

कानपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन सन् १९२३ के सभापति पद से दिया गया भाषण

स्वागत समिति के सभापति महोदय, सम्मेलन के प्रतिनिधि वन्धु, देवियो और अन्य सज्जनो—

आपको धन्यवाद देने के लिये मेरे पास शब्दावली नही है। मैं आपकी दया का पात्र हू। जिस प्रकार छोटा बालक गुरुजनो से प्रेमपूर्वक विनोदार्थ उच्चस्थान पर बैठाए जाने पर भयभीत होता है, वैसे ही मैं भयभीत हो रहा हू। आपने तो अपने प्रेम से मुझे यहां ला बिठाला, किंतु अपनी सामर्थ्यहीनता का अनुभव कर मे घबरा रहा हू और आपकी रक्षा का इच्छुक हू। सच जानिए, यह बात मैं साधारण शिष्ट जनो के प्रथानुसार केवल नम्रता निर्दशित करने के लिए नही कह रहा हू, किंतु वास्तविक दशा का अनुभव कर कह रहा हू। इस विज्ञ-समुदाय के नभोमण्डल मे प्रज्वलित और कान्तिमय ताराओ और नक्षत्रो के समक्ष मेरी बाल-बुद्धि क्रीडा करने का साहस नही करती। चौदह महीने तक सभा, समाज और साहित्य से दूर ब्रिटिश सरकार के सकीर्ण निवास स्थान मे प्रवासित रहने के बाद जब मैं छूट कर आया और उसके थोड़े ही दिनो पीछे मुझे इस सम्मेलन के सभापति चुने जाने की सूचना मिली, उसी समय मैंने इस पद के लिए अपनी अयोग्यता का अनुभव कर न केवल पत्र लिखकर क्षमा मागी, किन्तु कई कानपुर के मित्रो से, जिनसे मैं सहायता की कुछ आशा रख सकता था, अपने असामर्थ्य का प्रकाश कर इस कठिन भार से बचाए जाने का निवेदन किया। मेरा निवेदन प्रबल कारणो से परिपुष्ट था। एक तो यो ही मैं साहित्य का पण्डित नही, मेरे साहित्य-ज्ञान के खाते मे एक कृति भी जमा नही जिसका कुछ भी मूल्य हो, दूसरे जो कुछ साहित्य-प्रेम और साहित्य अध्ययन की थोडी पूजी किसी समय मेरे पल्ले थी भी, वह भी कई वर्षों से राजनीति के नाम पड़ती गई और अंत मे चौदह महीने का साहित्य-

प्रवासन जो मेरे नाम पडा उसने मुझे सर्वथा दिवालिया बना दिया। ऐसी हीन दशा मे वाक्‌श्री-सम्पन्न गुणाढ्यो के योग्य इस पद को अगीकार करते हुए हिच-किचाना स्वाभाविक ही था। फिर मुझे यह भी तो आशा नहीं थी कि पूर्व सचित पूजी न सही, कुछ शेष समय मे माग जाच कर अथवा इस बसत ऋतु मे कुसुमित दूसरो की ही लहलहाती वाटिकाओ अथवा प्राकृतिक वनवीथियो मे से ही कुछ स्वादिष्ट और सुगन्धित फल-फूल ले आप के सत्कार करने का समरण कर सकू। मै तो जानता था कि मुझे इस प्राकृतिक सम्पत्ति के उद्‌गार और उत्सर्ग के समय भी दरिद्र ही रहना पडेगा। वन-बाग की हरियाली छटा, अधखिले फूलो की मुसक्यान, प्रौढ पुष्पो के पराग की सुरभित सम्पत्ति और भ्रमरवृन्द की दैवी तान के स्थान मे मुझे तो नगर की गरदीली गलिया, अधखुली नालियो की भयकर चेष्टा, खुले बाजारो मे मनुष्यो और पशुओ की रेलठेल से कपित आकाश-मडित रज और म्युनिसिपल चुनाव मे वोट मागने वालो का आर्त्तनाद बदा था। मैंने अनुभव कर लिया था कि जिन उद्दीपक विभावो के आप रसिक हैं उनका सग्रह और सचार करना मेरे प्रयास के बाहर होगा। कहा आप गद्य पद्य और चम्पू की त्रिविध समीर मे कचनार की पतली प्यारी आभूषित अगुलियो के सकेत पर नाचने वाले, काव्य के मुकुलित महुए के रस पान से मस्त सुगन्धित बौरो से लदी हुई साहित्य की रसाल-कुजो मे केलि करने वाले प्रवीण भ्रमर और कहा राजनीति की कीच मे सना भुनगा मैं। इसीलिए निश्चित रूप से अपने को सब प्रकार से अयोग्य जान इस दायित्वपूर्ण पद के प्राकार को देख कम्पित था। किंतु स्वागत-समिति से मेरी चलने न पाई। गणेश से सरल और शकर के समान तीव्र आज मेरे मित्र गणेश शकर जी कानपुर मे होते तो उनकी रक्षा का मुझे पूरा लाभ मिलता, किंतु जिनकी शक्ति के सकेत से यह समारोह यहा सघटित है और जिनका ही आत्मिक आकर्षण मुझे भी यहा बरबस खीच लाया, आज मेरे दुर्भाग्य से वही यहा नही हैं। अपने तप से वह तो देश के उद्धार का समय निकट ही कर रहे हैं, किंतु उनकी अनुपस्थिति मुझ दुर्बल हृदय वाले को खल रही है। ऐसी अवस्था मे मेरी अपील आप से ही है कि आप मेरी रक्षा कीजिए।

शोक स्मृति

इसके पहिले कि मैं कुछ आगे कहू मेरा कर्त्तव्य है कि मातृ-भाषा के उन वीर्य वान सुपुत्रो का स्मरण करू जिनका इस वर्ष हमसे विछोह हो गया है। सबसे पहिले आपके और हमारे हृदय मे प्रेमघनजी की पूजनीय मूर्ति आ विराजती है। प्रेमघनजी भारतेंदु हरिश्चद के उस ज्योतिर्मय मंडल के एक देवदीप्यमान नक्षत्र थे जिसने हिंदी के आधुनिक रूप का निर्माण किया और जिसके अन्य प्रज्वलित तारागणो मे मेरे भाषा-गुरु प्रात स्मरणीय बालकृष्ण भट्ट और श्रद्धेय स्वनामधन्य

अम्बिकादत्त व्यास, प्रताप नारायण मिश्र, सुधाकर द्विवेदी, तोताराम काशी-प्रसाद, श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी ऐसे नाम आज भी सवत् १९२०से ४० तक के नवीन युगारम्भ के समय की याद दिलाते हैं। हर्ष की वात है कि आज भी उस प्रतिभान्वित समय के अवशेष-स्वरूप एक सुन्दर और प्रौढ़-स्तम्भ गोस्वामी राधाचरण जी वर्तमान को अपना कर्त्तव्यपथ दिखाने के लिए विद्यमान हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह गोस्वामी जी को अभी वहुत वर्षो तक हम लोगो के उपकारार्थ इस संसार मे रहने का अवकाश दे।

इसके वाद अपने प्रियमित्र प० चन्द्रधर गुलेरी और उनके लघुभ्राता सोम-देव जी की चर्चा करनी पडती है। चन्द्रधर जी सस्कृत और हिंदी के प्रचड विद्वान् थे। इसका कुछ पता उनके गवेषणापूर्ण लेखो से चलता है। मुझको लगभग १८ वर्षों से उनको जानने का सौभाग्य प्राप्त था। इसलिए मैं कह सकता हू कि उनके हृदय मे हिन्दी भाषा के प्रति कितना अनुराग था और उनकी कितनी उत्कट इच्छा रहती थी कि हिंदी का आधुनिक साहित्य सर्वांग सुन्दर होकर ससार के उच्च से उच्च कोटि के साहित्य से समानता करे। उनके छोटे भाई भी हिंदी के सुलेखक थे। इतनी कम अवस्था मे इन प्रतिभावान् भाइयो का ससार से उठ जाना हम सव का ही दुर्भाग्य है।

पण्डित रामेश्वर भट्ट के नाम से भी आप सभी परिचित हैं। कदाचित ही किसी हिंदी-प्रेमी ने उनकी रामायण की टीका न देखी हो। इस समय तो हिंदी पाठको के सौभाग्य से रामायण की कई टीकाएं प्राप्त हैं और मैंने सुना है, और टीकाए भी तैयार हो रही हैं। विशेषकर पण्डित विनायकराव जी ने अपनी विनायकी टीका लिखकर तुलसीकृत रामायण का पठन-पाठन अधिक रोचक और साहित्यिक वना दिया है, किंतु जिस समय ये नवीन टीकाए नही थी, पण्डित रामेश्वर भट्ट की टीका ने रामायण के प्रचार मे वहुत वर्षो तक सहायता की। विनय पत्रिका की भी टीका कर भट्ट जी ने तुलसीदास जी के इस काव्य-रत्न की आभा का साधारण पाठको मे प्रचार कर हिंदी की अच्छी सेवा की है।

भाषा की उत्पत्ति का रहस्य

जिस भाग्यवान् को आप सम्मेलन के सर्वोच्च आसन पर वैठाते हैं उससे आप साधारणतया आशा रखते हैं कि वह हिंदी साहित्य के सवध मे प्रतिभा संपन्न अथवा पाण्डित्य पूर्ण लेख आपके सामने प्रस्तुत करे। मैंने पहिले ही आपकी रक्षा की भिक्षा मागी है, वह इसीलिए कि मैं आपकी आशा पूरी नही कर सकूंगा। तो भी सम्मेलन के एक अल्प सेवक के नाते मे अपने विखरे हुए विचार आपके सामने उपस्थित करता हूं।

हिंदी भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, किस वाणी के महास्रोत से उसकी

धारा बहती हुई हम तक आई, मार्ग में किन पर्वतों और वनों के प्राकृतिक रत्नों को अपने साथ लेती और कहां कहां उनको छिनराती आई है, अथवा किस प्रकार से उसने अपने निर्मल जल से कूलों पर कुंज लताएं पोषित कर और इन कूलों के निवासियों को अपने पवित्र जल से मानसिक जीवनदान दे उन्हें सभ्य बनाया है, इसकी चर्चा आपको कतिपय खोज सम्बन्धी ग्रंथों में और सम्मेलन के कुछ मेरे पूर्ववर्ती सभापतियों के भाषणों में मिलेगी। यह विषय जितना रोचक है उतना ही गंभीर है। आर्यों का आदिम स्थान कौन था, आर्यों का आदिम स्थान क्या भारतवर्ष के बाहर था, क्या उसी स्थान से उनकी कई शाखाएं पूर्व और पश्चिम की ओर निकलकर फैलीं और वह जहां जहां गये अपने साथ अपने आदिम स्थान की प्राचीन आर्यभाषा लेते गये, जिसके ही कारण यूरोप की भाषाओं—जैसे यूनानी, लैटिन, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मनी,—में भी आज हमारे देश के कुछ आदि शब्दों से समानता दिखाई पडती है, अथवा क्या भारतवर्ष में ही सभ्यता और भाषा की लहर पश्चिमीय देशों में गई—इस विषय पर इतिहास और भाषा के उच्चकोटि के पण्डित पिछले लगभग १०० वर्षों से विचार करते आए हैं और अब भी यह नहीं कहा जा सकता कि इन विचारों का अंतिम निष्कर्ष निकल चुका। मनुष्य की परिमित शक्ति को देखते यह कहना भी कठिन है कि उसका निकाला हुआ परिणाम कभी भी निश्चयात्मक हो सकेगा। प्रकृति अपने रहस्यों को इस प्रकार से छिपाकर रखती है कि मनुष्य चाहे उसका एक कोना देखकर आनन्द उठा ले, किंतु किसी बड़े अंश का अच्छी तरह निरीक्षण कर पाना विधाता ने उसके भाग्य में नहीं लिखा है। अर्जुन का सा ही कोई कृष्ण का प्रेम पात्र हो, तभी क्षण भर के लिए उसे वास्तविक दशा का दर्शन हो जाता है और तब उसके मुख से यही शब्द निकलते हैं —

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥

———

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगा ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगा ॥
—गीता, ११ अध्याय ।

ईरानी भाषाएं और संस्कृत

ईरानी भाषाएं, जैसे परजी, जिससे पहलवी और फिर पहलवी से फारसी निकली, और मीदी, जिसमे पारसियो का धर्मग्रंथ 'जैद अवस्ता' लिखा गया है—इसका पुरानी सस्कृत और प्राकृत से कितना घनिष्ठ सबध है, यह भी भाषा तत्त्व के जिज्ञासुओ के लिये बहुत रोचक विषय है। यह तो स्पष्ट ही है कि सस्कृत और अवस्ता और पुरानी फारसी का सादृश्य आकस्मिक नही है। अवस्ता की भाषा फारसी के समान दाहिनी ओर से बाई ओर को लिखी जाती है, किंतु उसकी लिपि बिल्कुल भिन्न है और उसके अक्षर एक दूसरे से अलग नागरी लिपि के समान लिखे जाते हैं। उनमे और नगरी लिपि मैं इतना विशेष अंतर अवश्य है—जो अतर स्वय हमारी कुछ पुरानी और आधुनिक लिपियो मे भी है—कि अवस्ता मे स्वरो के स्थान मे मात्रा चिन्ह न होकर अलग-अलग अक्षर हैं। यदि आप अवस्ता के छदो को उठाकर पढ़ें तो आपको यही जान पडेगा कि हम वेदो के छदो के कुछ विचित्र रूप का पाठ कर रहे हैं। आज भी हमारे देश के पारसी भाइयो मे अवस्ता का वही स्थान है जो हिंदुओ मे वेदो का। मुझे अपने पारसी मित्रो के कुछ विवाहोत्सवो मे सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके वैवाहिक सस्कार के समय जब मैंने ईश्वरोपासना सबधी छंदो का उच्चारण सुना, तब मुझे यही जान पडता था कि मानो वेदो के अपरिचित छदो का कोई विचित्र परिवर्तन कर गान कर रहा है। मैं आपको सुनाने के लिये कुछ छद नीचे उद्धृत करता हू—

यश्त नामक भाग के दसवें अध्याय का छठा मन्त्र इस प्रकार है —

तम् अमवतम् यज़मम्
सूरम् दामोहू सविष्टम्
मिथ्म यज़आइ जव थात्यो ॥

तनिक इस मत्र पर विचार कीजिए,। देखिए, इसके एक एक शब्द सस्कृत मे किस प्रकार लिखे जा सकते हैं—

तम् अमवतम् यजतम्
शूरम् धैमसु शविष्ठम्
मित्रम् यजाइ होत्राम्य ।

अर्थात् बली शूर वीर मित्रदेव की होत्र से पूजा करता हू, जो सब जतुओ पर दया करता है।

जैंद अवस्ता मे दो प्रकार की भाषा स्पष्ट दिखाई देती है, एक तो यासना (यज्ञ) विभाग मे दी हुई पाचो गाथाओ की जिनके नाम यह हैं—अहुनवैति, उष्टवैति, स्पन्तामेन्युष, वहिष्टाइहि और वोहुक्षत्र।

दूसरे प्रकार की भाषा 'खुर्द अवस्ता' तथा अवस्ता के अन्य भागो मे पाई जाती है। गाथाओ की भाषा के सबध मे मे कुछ भाषा तत्वविदो का विचार है कि वह वेदो की भाषा के समान प्राचीन है। उष्टवैति गाथा मे से दो छद मैं नीचे उद्धृत करता हू जो पारसियो के आदि पुरुष भगवान जरतुश्त के ही कहे हुए माने जाते है—

अत् प्रवक्ष्या नू गूशोदूम मू सवोता।
य एचा अस्नात् य एचा दूरात इषया।
नू इम वीस्पा चिथूरी मज्द न्होदूम्
नोइत दैवित्तीम् दुशसीन्तश।
अहूम मेरश्यात् अकात्ररना द्रग्वै हिज्वै आवरतो ॥१॥
अत् प्रवक्षपा अन्हाउस मइन्यू पोउरूयै।
यवैस्पन्य ऊहति भ्रवत् यम् अग्रम।
नोइत नाम नै नोइत् सधा नोइत् खतवो
न एदा वरना नोइतृ उरव्धा न यदाश्यवथना।
नोइत द एनै नोइतृ उर्वनो हचइतै ॥२॥

इसका अनुवाद, जो अवस्ता भाषा के पडितो ने किया है, यह है—'अब मैं कहूगा और तुम कान देकर सुनो।

जो यहा पास से और दूर से आए हो।
तुम इन बातो को चित्त मे स्पष्ट धर लो।
दुष्ट उपदेशको से अपना आगामी जीवन नष्ट मत कराओ।
और न पतित पापी के झूठे विश्वास से अपनी जिह्वा को ॥१॥
'अब मैं जगत् की दो प्राथमिक आत्माओ का कथन करूगा।

जिनमे से पवित्र (आत्मा) ने दुष्ट (आत्मा) से कहा—न हमारे मन, न हमारी शिक्षा, न हमारे विचार,

न हमारे विश्वास, न हमारे शब्द, न सचमुच हमारे कर्म,
न हमारी बुद्धि और न आत्माए किसी बात मे मिलती है ॥२॥

भाषा-विज्ञान के सौभाग्य से आज वेदो के अतिरिक्त इतना प्राचीन ग्रथ हमे उपलब्ध है। यदि किसी प्रकार से अन्य भाषाओ के प्राचीन और प्राचीनतम स्वरूप हमे हस्तगत होते तो भाषाओ के शृखलाबद्ध तारतम्य से हम प्राचीन घटनाओ का कुछ निश्चित रूप से निरीक्षण कर सकते। अवस्ता के और प्राचीन

सस्कृत के स्वरूप को देख न केवल उनके साधारण 'शब्द कोप किंतु उनके व्याकरण मे भी सादृश्य की झलक देख आप क्या परिणाम निकालते हैं ? न केवल वैदिक 'आर्यमन' अवस्ता का 'ऐर्यमन' है, 'वायु''वायु''दानव' 'दान' और 'असुर''अहुर' हैं, किंतु सस्कृत द्वितीया के रूप, 'शूरम्' 'मिर्थम' और पचमी के रूप 'अम्नात्' दूरात्' दिखाई पड़ते हैं, और कुछ सस्कृत सर्वनाम—मे, मन, त्वम्—अवस्ता मे भी उन्ही रूपो मे दिखाई पडते हैं। सस्कृत के समान ही अस्वता मे भी तीन लिंग और तीन वचन पाए जाते हैं। सज्ञा और विशेषण की आठ विभक्तिया भी स्पष्ट दिखाई देती हैं। अवस्ता और सस्कृत के धातु रूपो मे भी समानता है। छद भी वैदिक छदो से मिलते जुलते दिखाई पडते है। यह मिलान आकस्मिक नही हो सकता। यह अवश्य दोनो भापाओ का सबध स्थापित करता है।

इसी प्रकार पुरानी फारसी और सस्कृत की समानता आश्चर्यजनक है। विचार के साथ यदि आप आधुनिक फारसी भी पढें और उसमे अरवी से आए हुए वहुसख्यक शव्दो को अलग कर दें, तो पग-पग पर आपको ऐसे शव्दो की भरमार मिलेगी, जिनके रूप-रग मे सस्कृत शव्दो की ही वशाकृति दिखाई पड़ती है। फारसी का पडित न होते हुए भी फारसी के प्राचीन काव्यो के पढते समय मुझे तो ऐसा जान पडता है कि यदि अरवी के शव्द छोड दिये जाए तो शेप शव्दो मे लगभग पचास फीसदी इस समय ऐसे शब्द मिलते हैं जिनका रूपातर आप सस्कृत शव्दो मे देख सकते हैं। फारसी पढते समय कभी कभी मैंने ऐसे शव्दो को टाक लिया है। उन्ही शव्दो मे से कुछ इस समय आपके सामने उपस्थित करता हू —

सस्कृत	फारसी	सस्कृत	फारसी
भूमि	वूम	शर्करा	शक्कर
वारि, वारिणि	वारा	क्षीर	शीर
आप	आव	ताम्वूल	तम्वौल
वात	वाद	शृगाल	शिगाल
मिहिर	महर	शकुन	शुगुन
सूर	हूर	अहम्	अम
जीवन	जान	नव	नव
अघ	आक	क्षुद्र	खुर्द
कुज	कुज	एक	यक
गौ	गाव	द्वि	दोह
खनि	कान	चत्वार	चहार
तनु	तान	पज	पंज
जानु	जानू	षष्ठ	शश

भ्रू	अवरु	सप्त	हत्फ
अभ्र	अब्र	अष्ट	हशत
मष	मूष	नव	नह
मूषक	मूषक	दश	दह
अश्वतर	असतर	रुह, रौहति	रवीदन,
	असतूर		रवीद
अश्व	अस्प	श्रृखु	शूनौ
आपद	आफत	दृ	दरीदन

इन उदाहरणो से यह स्पष्ट है कि हमारे देश की प्राचीनतम भाषा का वैसा सकुचित क्षेत्र न था, जैसा समय पाकर धीरे-धीरे हो गया, वरन् उसका नैसर्गिक घनिष्ठ सवध ससार की अन्य शिष्ट भाषाओ से था। यह सवध कैसे हुआ और किस प्रकार का था, अन्य देश की भाषा भारतवर्ष मे आई अथवा भारतवर्ष की भाषा अन्य देशो मे गई, यदि आई तो किन किन मार्गो से और किस के साथ, यदि गई तो कैसे और किसके द्वारा, और जहा गई वहा की पहिले की भाषा मे उसने किस किस प्रकार परिवर्तन किया, प्राचीन सस्कृत का अन्य प्राचीन भाषाओ के साथ वहिनो का अथवा माता-पुत्री का नाता है, इत्यादि ऐसे प्रश्न वड़े रोचक और आकर्षक हैं। इन पर वडे-वडे भाषा-तत्वज्ञो ने विचार किया है, किंतु अव भी वहुत अन्वेषण और विचार की आवश्यकता है। यह अवसर इन प्रश्नो के उठाने का नही है और न मुझ मे इन पर कोई नवीन प्रकाश डालने की योग्यता ही है। भाषा कितनी व्यापक हो सकती है, किंतु स्थान-भेद और समय भेद से उसमे कितना परिवर्तन हो सकता है, इसका अल्प उदाहरण ऊपर कही गई वातो से मिलता है।

प्राकृत और सस्कृत

ऊपर जिन भाषा सवधी प्रश्नो का मैंने सकेत किया है उनसे कुछ ही कम गहन (कम इसलिये कि उनका क्षेत्र आपेक्षिक दृष्टि से परिमित है और गहन इसलिये कि हजारो वर्षों की लवी गुफा के अधकार मे हमे टटोल कर विना भटके चलना दुष्कर है) यह प्रश्न है कि हमारी प्राचीनतम भाषा का क्या रूप था, उसके सस्कृत होने मे क्या परिवर्तन हुए, इस परिवर्तन ने किस प्रकार साधारण भाषा पर अपना प्रभाव डाला और यह परिवर्तित भाषा किसी श्रेणी विशेष की भाषा ही रही अथवा कभी जनता की वोलचाल की भाषा भी वनी और हमारी प्राचीन भाषा और इस सस्कृत भाषा ने किस प्रकार धीरे-धीरे अन्य भाषाओ को उत्पन्न किया, जिनसे समय पाकर आधुनिक भाषाए निकलीं। इस विषय के सवध मे दो मुख्य विचार है। एक तो यह कि पाली और अन्य प्राकृत भाषाए, जिनसे आधुनिक भाषाए निकली हैं, सस्कृत की पुत्री थी, अर्थात सस्कृत भाषा ही भ्रष्ट होकर प्राकृत

वनी और प्राकृत के अपभ्रश से धीरे-धीरे आज कल की भाषाए निकली।

दूसरा मत यह है कि सस्कृत कभी साधारण वोलचाल की भाषा न थी, अथवा थी तो केवल शिष्ट और शिक्षित समुदाय की, और साधारण लोगो की भाषा आदि समय से ही भिन्न थी, इस कारण से प्राकृत भाषाए सस्कृत से नही, किंतु प्राचीन प्राकृत से ही निकली हैं, अथवा यो कहा जाय कि प्राचीन भाषा, जिसे मूलप्राकृत कह सकते है, समय के प्रभाव से धीरे-धीरे उन रूपो मे परिवर्तित हुई, जो सस्कृत और पाली के ग्रन्थो मे पाए जाते हैं और उन्ही से आधुनिक भाषाओ का विकास हुआ। पहले पक्ष के पृकृष्ठ पोषक हमारे देश के प्रचड विद्वान् रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर हैं। इसी पक्ष का तृतीय सम्मेलन के सभापति परलोक वासी श्रद्धेय वदरीनारायण चौधरी ने समर्थन किया था। दूसरे पक्ष मे विल्सन, वेवर, वीम्स आदि सस्कृत के पाश्चात्य विद्वान् सघटित हैं। स्वागत-समिति के पूज्य सभापति हिंदी के अद्वितीय विद्वान प० महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'हिंदी भाषा की उत्पत्ति' नामक पुस्तिका देखने से अनुमान होता है कि वह भी इसी सिद्धात के पोषक हैं। ऐसे अनुभवी और अन्वेषणशील विद्वानो के वीच की वात मे मेरा कुछ भी कहना वच्चे की वकवाद सा जान पडेगा। किंतु इस कारण से कि मैं इस विषय मे कुछ अपनी सम्मति रखता हू, यद्यपि इस विषय मे मेरा अनुशीलन तो वहुत ही थोडा है, आपके सामने उसे प्रगट करने की धृष्टता करता हू। मुझे तो ऐसा जान पडता है कि इस विवाद मे 'सस्कृत' शब्द के अर्थ पर ही सत्य का निर्णय निर्भर होगा। यदि सस्कृत का अर्थ केवल उस भाषा से लिया जाय, जिसमे हमारी प्राचीन सभ्यता का उत्तुगउत्कर्ष ढले हुए शब्दो मे दक्ष चितेरो की कूची से चित्रित है, और जिसने सैकडो वर्ष के ससार के वाद पतजलि और कात्यायन के समय मे अपना रूप निश्चित किया, तो मुझे भी यही कहना पडेगा कि इस भाषा से प्राकृत और हिंदी का प्रादुर्भाव नही हुआ। सस्कृत शब्द से यही अर्थ प्राय उन लोगो ने समझा है जिन्होने इस मत का पोषण किया है। एक अश मे उनका यह अर्थ करना ठीक भी है क्योकि सस्कृत शब्द भी उसी भाषा का वोधक है और साधारणतया उसी अर्थ मे प्रयुक्त भी होता है। किंतु यदि सस्कृत शब्द मे उन समस्त वोलियो का समावेश हो, जो ऋग्वेद की ऋचाओ और तत्पश्चात् व्राह्मणो के समय मे वोली जाती थी और जिनमे स्वभावत न केवल शिष्ट किंतु ग्रामीण तथा अशिक्षित जातियो के भी शब्द सम्मिलित थे और आपेक्षिक दृष्टि से जिनका प्रचार वहुत पीछे के काल तक होता आया अर्थात् जो सहस्रो वर्ष इस देश में रूपातरित हो पतजलि के समय तक वोली जाती रही, तो अवश्य यह कहा जा सकता है कि सस्कृत से ही आधुनिक एतद्देशीय भाषाए निकली है। मुझे तो यही अनुमान होता है कि सस्कृत भाषा की परिभाषा यदि हम निश्चय कर लें तो इस विवाद का निराकरण हो जाय। आप स्वय तनिक विचार तो कीजिए कि क्या यह कभी

सभव था कि जब बोलचाल की भाषा का सस्कार कर सस्कृत भाषा बनी, तब क्या वही सस्कृत समस्त जनता की कभी बोलचाल की भाषा हो सकती थी और क्या प्रचलित भाषा का सस्कार होते ही वह उस नई भाषा मे तल्लीन होकर लुप्त हो गई ? उन पाश्चात्य विद्वानो का, जो प्राय सस्कृत से प्राकृत भाषाओ का प्रादुर्भाव नही मानते, यह मत है कि सस्कृत एक प्रकार की अप्राकृतिक भाषा यज्ञ पूजन आदि के काम के लिये ब्राह्मणो ने निर्माण की थी और वह कभी बोलचाल की भाषा हुई ही नही, उसमे केवल गौरव के लिये शिष्ट समुदाय ने ग्रन्थ लिखना आरभ किया। भाडारकरजी ने इस मत का खडन बडी विद्वत्ता से अपने प्रसिद्ध भाषा तत्व सबधी व्याख्यानो मे किया है, और मेरी भी अल्प बुद्धि उनकी इस विषय की दलीलो को स्वीकार करती है। किंतु एक बात ध्यान मे रखने की यह है कि इस बात के दिखलाने के लिए कि सस्कृत भाषा के साथ साथ बोलचाल की साधारण भाषा कुछ अन्य थी, पाश्चात्य विद्वानो के इस मत से सहमत होना आवश्यक नही कि सस्कृत एक अप्राकृतिक रीति से वैसे ही निर्मित भाषा थी, जैसे कुम्हार के चाक से निकला हुआ कुभ, जो केवल यज्ञ की वेदी पर रखने के लिये बनाया गया हो। यह क्यो असभव समझा जाय कि वास्तव मे जो प्रचलित बोलिया बोली जाती थी, उनमे से ही एक प्रकार की आदर्श भाषा स्वाभाविक रीति से शिष्ट समाज मे प्रचलित हुई और उसी से, व्याकरण के मत्रो से सस्कार करने के पश्चात् सस्कृत बनाई गई। इस प्रकार से भाषा बनने और पाश्चात्य विद्वानो के मतानुसार यज्ञ पूजनादि के लिये भाषा बनने मे बडा अन्तर है। मुझे तो यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि जिस प्रकार सदा एक देश अथवा राष्ट्र मे बहुत सी स्थानीय बोलिया रहते हुए भी एक खिचरी भाषा कुछ ऐसी होती है, जिसमे साधारण जनता अपने मनोभाव का लेन देन करती है, उसी प्रकार प्राचीन समय मे भी या तो छोटे से आर्य समुदाय मे एक ही बोली थी अथवा भिन्न भिन्न समुदाय और उनकी भिन्न भिन्न बोलिया होने पर भी उनकी एक भाषा इस प्रकार की रही, जो बोलियो से तो भिन्न थी, किंतु जिसमे बोलियो का समावेश होता था। आज भी यही दृश्य हम अपनी आख के सामने देख सकते हैं। जिस भाषा मे इस समय बोल रहा हू, वह हमारे देश की स्थानीय बोलियो से भिन्न है, किंतु वह केवल शिष्टजनो की अप्राकृतिक नियमो से गढी हुई भाषा नही कही जा सकती, ग्रामीण मनुष्य भी उस भाषा को पहचानता है और उसे अपनी भाषा कहता है, यद्यपि वह उसे उसी रूप मे व्यवहृत नही करता। हिंदी साधारण ग्रामीण बोली न होती हुई भी किसी विशेष कार्य के लिये गढी नही गई, वह पूर्ण रूप से और अतिव्याप्ति और अव्याप्ति के दोषो से बचते हुए जनता की भाषा कही जा सकती है। हा, यदि हममे से कुछ चतुर विद्वान इस भाषा मे साधारण और गौरवन्यूनता का दोष देख इस प्रकार से उसका शोधन करने बैठें कि उसमे आए हुए प्रचलित शब्दो

की काटछाट कर व्याकरण के ऐसे अकाट्य नियम रक्खें जिनको विना सीखे कोई भी शिष्ट भाषा-भाषी न कहा जा सके तो अवश्य ऐसी संस्कृत हिंदी की सूरत और दशा दूसरी हो ही जाएगी। मुझे अपने तात्पर्य को कुछ और स्पष्ट करने की आवश्यकता जान पडती है। मेरा यह विचार है कि आरम्भ से स्थानीय परिवर्तनो के होते हुए भी आर्यों की एक जीती जागती साधारण भाषा थी, जो सस्कृत न होते भी सस्कृत से वहुत भिन्न नही थी। यदि हम इसी भाषा को सस्कृत कहे तो सस्कृत से ही पाली तथा प्राकृत भाषाओ का प्रादुर्भाव कहा जा सकता है और यह विवाद ही नही रह जाता कि प्राचीन प्राकृत से मध्यकालीन प्राकृत निकली अथवा सस्कृत से। इस सिद्धांतानुसार मूल प्राकृत और सस्कृत एक ही वस्तु के दो नाम हो जाते हैं। किंतु पीछे से व्याकरण के नियमो द्वारा सशोधित हो शिष्ट समुदाय और ग्रथकारो की जो भाषा हुई, यदि केवल उसी का नाम हम सस्कृत रखते हैं, तो आर्यों की यह प्राचीन भाषा मूल प्राकृत कही जा सकती है। इस भाषा का वेदो की भाषा तथा जैंद अवस्ता की भाषा से भी वहुत सादृश्य रहा होगा। इसी जनता की भाषा का सस्कार करते करते सस्कृत वनी और ज्यो ज्यो उच्च कोटि के आर्य और साधारण जनता मे भेद होता गया, त्यो त्यो सस्कृत साधारण जनता की भाषा से, उसपर अपना प्रभाव डालती हुई भी, अलग होती गयी। सस्कृत भाषा के निर्माण से अथवा उच्च आर्यों की चर्खी पर चढ कर मजे हुए स्वरूप मे उसके निकलने से यह तो सभव ही न था कि मूल भाषा अथवा प्राकृत का लोप हो जाता अथवा साधारण जनता इस रीति से मजी हुई सस्कृत भाषा को वोलने लग जाती। सस्कृत भाषा को इस अर्थ मे लेने पर यह भाव उस अर्थ ही मे प्रविष्ट है कि वह साधारण जनता की भाषा न थी। ऐसी दशा मे जनता की जीती जागती और चलती भाषा मूल प्राकृत ही रही और उसी के रूपो मे धीरे धीरे परिवर्तन होते हुए वह माध्यमिक काल की उन १८ प्राकृतो मे विभक्त हुई जिनकी चर्चा सस्कृत और प्राकृत साहित्य मे मिलती है। यदि हम हिंदी भाषा की धारा पर ऊपर की ओर चढ़ते जाय, तो हमे सस्कृत का स्रोत कही नही मिलेगा। किंतु अपभ्रश भाषा, फिर प्राकृत और फिर मूल प्राकृत तक हम पहुच जाएगे। संस्कृत स्वय वहुत ऊचे पर जाकर मूल प्राकृत से निकलती हुई एक धारा दिखाई पड़ेगी, जो वहुत दूर तक पृथक् प्रवल वेग से वहती है, और अन्त मे ऐसे रेगिस्तान मे पहुच जाती है, जहा उसका जल सर्वथा लुप्त तो नही हो जाता किंतु एक गहरे कुण्ड मे गिरकर और इकट्ठा होकर आगे वढने का सामर्थ्य खो वैठता है। परतु आप यह भी देखेंगे कि कुड मे गिरने से पहले उसकी प्रवल धारा अपनी वहुत सी छोटी छोटी शाखाओ से इधर उधर भूमि को उर्वरा करती है और उनसे कतिपय शाखाए फिर भाषा के मूल प्रवाह मे, जिस पर आप अपनी कल्पना मे चढते हुए जा रहे हैं, आकर मिल जाती है। मैं जानता हू कि मेरी इस उपमा पर कुछ सज्जन अप्रसन्न हो सकते

है। किंतु भाषा के प्रश्न पर विचार करते हुए, मेरा उनमे निवेदन है कि वे केवल तत्व पर ध्यान रक्खें। यह अवश्य है कि हम बहुत दिनो से सुनते चले आए हैं कि हिंदी तथा देश की अन्य भाषाए सस्कृत की पुत्री हैं और मेरे कथनानुसार वह सस्कृत की पुत्री नही कही जा सकती, किंतु भाषा के मर्मज्ञो को पक्षपात मे पड़ने से बचना कठिन न होना चाहिए।

हिंदी शौरसैनी प्राकृत की पुत्री है, यह प्राय सभी मानते हैं, किंतु शौरसैनी मूल प्राकृत की पुत्री है अथवा सस्कृत की, इसी मे विवाद है और यह विवाद जैसा मैंने अभी वर्णन किया है, प्राय शब्दो के अर्थ मे स्पष्टता न होने के कारण है। सस्कृत को केवल सस्कार की हुई भाषा मान लेने से हिंदी प्राकृत के कुटुम्ब मे से है यही कहना पडेगा। उसी परिष्कृत भाषा का रूपातर प्राकृत हुआ और उसमे से हिंदी का प्रादुर्भाव हुआ, ऐसा मानना मुझे नितात अस्वाभाविक प्रतीत होता है। पडित बदरीनारायण चौधरी ने तृतीय सम्मेलन के भाषण मे, इस बात को पुष्ट करने के लिए कि सस्कृत से प्राकृत के द्वारा हिंदी निकली, कुछ शब्दो के उदाहरण दिये हैं, जिनसे सस्कृत शब्द का विगड कर प्राकृत बनना और प्राकृत का बिगड कर हिंदी बनना प्रकट किया गया है। यह दलील साधारणत और भी विद्वानों ने दी है। मैं उदाहरण के लिये थोडे ही से शब्द चौधरी जी की सूची से उद्धृत करता हू —

सस्कृत	प्राकृत	भाषा
अहम्	अम्भि	हम, मैं
त्वम्	तुअ	तुम, तू
व्रातुलम्	बाउलो	बावला
शैय्या	सेज्जा	सेज
उपाध्याय	उपजझओ	ओझा
मृत्तिका	मट्टिया	मट्टी
घृतम्	घियम्	घी
यष्टि	लट्ठी	लाठी

इस प्रकार उदाहरणो से यह अवश्य स्पष्ट है कि सस्कृत और प्राकृत शब्दो का घनिष्ठ सबध है। यह सभव है कि इनमे बहुत से शब्द सस्कृत से बिगड कर प्राकृत हुए हो। सस्कृत भाषा तो शिष्ट समुदाय की भाषा थी ही और उसका प्रभाव साधारण भाषा पर पडना अथवा उसके कुछ शब्दो का बिगडकर साधारण भाषा मे आ जाना स्वाभाविक ही था, किंतु सपूर्ण प्राकृत भाषा का सस्कृत भाषा से निकलना इन उदाहरणो से प्रमाणित नही होता। सबध स्थापित होता है, किंतु मातृत्व नही। इन उदाहरणो से मातृत्व मान लेना तर्क का दोष है, क्योकि जो

संबंध हमे दिखाई देता है, वह इस प्रकार से भी हो सकता है कि जिन रूपो को माज कर सस्कृत के रूप हमे ग्रंथो मे दिखाई देते हैं, उन्ही आदि रूपो से यह प्राकृत के रूप वंश-परंपरा से आये हो और फिर हमे उन प्राकृत शब्दो के समूह को न भूल जाना चाहिए जिनका किसी प्रकार सस्कृत शब्दो से सबध स्थापित नही हो सकता। ये शब्द न तत्सम हैं और न तद्भव, किंतु देश्य है। यह शब्द तो कुछ ऐसे ही शब्दो से वश-परंपरा-बद्ध होकर आए है जिनकी उत्पत्ति सस्कृत के अतिरिक्त जो साधारण बोल चाल की भाषा थी उसी से हो सकती है। ऊघना, पेट, बाप कोट इत्यादि शब्दो का मेल ढूढ़ने पर भी किसी सस्कृत शब्द से नही मिलता, इन शब्दो के आदि रूप प्राकृत मे मिलते है। केवल इतना कह देने से ही कि यह शब्द पीछे से प्राकृत मे जुड़ गये होगे, न इस विषय का समाधान होता है और न परिष्कृत सस्कृत-भाषा से प्राकृत का निकलना ही प्रमाणित होता है।

नाश और विकास

यहा पर, भाषा के विकास क्रम के सबध मे, मैं एक विशेष बात और कहना चाहता हूं जो संस्कृत, प्राकृत और हिंदी के पारस्परिक सबध के स्थिर करने मे विचारणीय है। इस ससार मे जीवन और मृत्यु का कार्य-कारण सबध है। जीव मृत्यु के सहारे ही जीवित हैं। यही सिद्धांत जीवित भाषाओ के सबध मे भी लगता है। जिस प्रकार हमारे शरीर मे प्रति दिन कितने ही जीवित कृमि मरते है और सहस्रो नये बनकर उनका स्थान लेते हैं और इसी अटूट सग्रामका नाम ही जीवन है, उसी प्रकार जीवित भाषा मे भी शब्दो का बिगडना और बनना प्रकृति सिद्ध है। मरे हुए शब्दो के शव से नये शब्द उत्पन्न होकर भाषा-प्रवाह मे तीव्र गति से तैरते हैं, और यदि इस प्रकार से शब्दो का बिगड़ना और नये शब्दो का बनना बद हो जाय तो जीवधारी के शरीर के समान भाषा का शरीर भी नष्ट हो जाता है। अर्थात् उसमे से प्रगति-स्वरूप जीव निकल जाने से वह निर्जीव पत्थर के समान हो जाती है। इसीलिये गति-शून्य ऐसी भाषाओ को मृत भाषाए कहने का जो चलन है वह सर्वथा उपयुक्त है। मृत्यु और जीवन जहा बराबर है वही वास्तविक जीवन है। नाश और विकास मे घनिष्ठ सबध है। जहा नाश नही, वहा विकास भी बद हो जाता है। जब तक भाषा के रूपो का नाश बराबर होता रहता है, तब तक उसका विकासक्रम भी चलता रहता है। शारीरिकी जानने वाले वैज्ञानिक हमे बताते है कि हमारे शरीर के भीतर लगातार परिवर्तन होता रहता है, जितना ही हम शरीर को काम मे लाते हैं उतना ही शीघ्र शरीर के ततुओ का नाश होता है उतना ही शीघ्र स्वस्थ और बलिष्ट नव ततु उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार नाश और उत्पत्ति के क्रम से मनुष्य स्वस्थरूप से बलिष्ठ और जीवित रह सकता है। बच्चे को जितना ही आप दौडाते है, उतना ही उसके ततुओ का नाश

करते हैं और उतनी ही नये ततुओ की सृष्टि करते है। इसी गति से उसके शरीर की वृद्धि और पुष्टी होती है और जब तक उसमे जीवन है तब तक यही क्रम चला जाता है। विज्ञानवेत्ता हमे बताते हैं कि प्रत्येक सात वर्ष मे शरीर के प्रत्येक तंतु का परिवर्तन हो जाता है। यदि आप इस मोह से कि बच्चे के शरीर-ततु नष्ट न हो उससे शारीरिक काम न कराए और उसे प्रकृति के आगन मे कल्लोल करने के लिए न छोड दें, तो वह विकसित न होकर धीरे धीरे मुरझा जाएगा। ठीक यही शैली जीवित भाषा के ततुनाश और विकास की होती है। प्रकृति के आगन मे खेलती और दौडती हुई भाषा अपने सैकड़ो ततुओ का प्रतिदिन नाश करती है और उन्ही नष्ट ततुओ के मसाले से तथा प्रकृति की अन्य शक्ति से नए शब्द-ततुओ का निर्माण करती रहती है। यदि आप इस भय से कि कही भाषा-शरीर के कुछ शब्द-ततु विकृत अथवा नष्ट न हो जाए, उन्हे व्याकरण के नियमो की आज्ञा से जहा के तहा बैठा दें तो परिणाम वही होगा कि धीरे धीरे शरीर कुम्हला जाएगा और वे अपरिवर्तनशील शब्द, जिनकी आपने रक्षा की थी, जीवित शरीर से अलग होकर स्तभित रूप मे आपको दिखाई पड़ेंगे। मेरी इस उपमा मे कुछ अतर हो सकता है, किंतु जिस सिद्धात को मैंने आपके सामने इस उपमा द्वारा उपस्थित किया है, वह आप बराबर भाषा के विकास मे देखेंगे। सस्कृत भाषा के सबध मे भी मुझे तो यही भासता है कि साधारण जनता की भाषा से उसे अलग करने का ही यह परिणाम हुआ कि वह ठिठक गई और उसकी वृद्धि रुक गई। नियमो से बधकर उसके शब्द-रूपो का विकृत और नाश होना बद हो गया, और उसके साथ ही उसके शरीर की गति भी धीरे धीरे बद हो गई। किंतु वह आदि प्राकृत, जो जनता की भाषा थी, अपने पुराने शब्द-समूहो का नाश और नये शब्द-समूहो की उत्पत्ति करती आई। इस प्रकार नाश के रूप मे उसका विकास होता चला आता है। उस आदि प्राकृत से स्वभावत स्थानीय भेदो के कारण कई प्रकार की प्राकृत भाषाए निकली।

प्राकृत, अपभ्रश और हिंदी

वररुचि ने चार प्रकार की प्राकृत भाषाओ का व्याकरण दिया है, अर्थात् महाराष्ट्री, शौरसैनी, मागधी और पैशाची। पीछे आकर इन मुख्य चार प्राकृतो के और भी रूपातर हुए, जो भिन्न भिन्न स्थानीय नामो से विख्यात हुए। मराठी और शौरसैनी प्राकृत के दो एक उदाहरण मैं आपके सामने रखता हू —

"निय आये चिय वा आयापि, अत्तणो नाख निवेसयता।
जै यति पसम चिय, जयति इह तै महा कइणो॥

इसे भाण्डारकर महाशय ने इस प्रकार सस्कृत में परिवर्तित किया है —

निजयैव वाच आत्मनो गौरव निवैशयन्त.।

ये यातिप्रशसामेव जयति ते महाकवय ॥

एक और उदाहरण शौरसैनी प्राकृत का उपस्थित करता हू—

कघ अणु महीदम्हि। इश्वमालिंगामि। दसण उण पियसह ए वाहु षीडेण णिरुद्धम् ण लभीअदि ॥

सस्कृत मे इसका रूपांतर यह है—

कयमनुगृहीतास्मि। इयमालिंगामी। दशन पुन पिय सख्या वाष्पोंत्पीडेन निरुद्धम् न लभ्यते।

अधिक समय लेने के भय से मैं और अन्य प्रकार की प्राकृत के उदाहरण नही देता। इन्ही उदाहरणो से आप कुछ अनुमान प्राकृत के स्वरूप का कर सकते है।

इन्ही प्राकृतो से रूपांतर और रूपनाश के क्रमानुसार अपभ्रश भाषा का विकास हुआ। वररुचि ने तो अपभ्रश भाषा की 'प्राकृत-प्रकाश' मे कोई चर्चा नही की है, किंतु हेमचद्र ने उसको भी प्राकृत का एक रूप माना है और उसका व्याकरण दिया है। इस भाषा मे आप आधुनिक हिंदी का रूप पहचान सकते हैं। अपभ्रश भाषा मे आपको आधुनिक हिंदी के वहुत छद भी मिलते है। मैं दो एक उदाहरण इस भाषा के भी आपके समुख रखता हू—

एत्तहैं तैत्है वारिघरि लच्छि विसठुल घाई।
पिअ पव्मट्ठव गौरडी निश्चल कहिवि न ठाई॥
जा गुण गौवह अप्पणा पथडा करहू परस्स।
तसु हउ कलजुगि दुल्लह हौ वलि किज्जव सु अणस्सु।

इन रूपो मे आपको चद की भाषा और छद से भी कुछ मेल मिलता है। वास्तव मे यह अपभ्रश भाषा शौरसैनी प्राकृत और पुरानी हिंदी के वीच मे आती है, और दोनो ही से उसकी समानता है। आपको यह जान पडता है कि आप मारवाड और व्रज के पुराने कवियो के समीप पहुंच गये हैं। हिंदी भापा के भावी रूप की छटा आपको यही दिखाई पडने लगती है। इस अपभ्रंश भाषा के साथ मिलान के लिए चद के छदो के दो एक उदाहरण दिये विना मैं नही रह सकता—

पुच्छत वयन सु वोले, उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये।
कवण नाम तुअ देस, कवण मन्द करय परवेस ॥१॥
हसम हयन्गय देस अति, पति सायर मृज्जाद।
प्रवल भूप सेवहिं सकल, घुनि निसान वहु साद ॥२॥
सवा लष्ष उत्तर सयल, कमऊ गढ़ दूरग।
राजत राज कुमोद मनि, हयगय द्रिव्व अभग ॥३॥

आगे भापा का किस प्रकार से रूप-परिवर्तन हुआ, उसके उदाहरण मैं इस

स्थान पर न दूगा, क्योकि इसके पश्चात् हम तुरत ऐसे समय मे आ जाते है, जो प्रतिदिन के पठन-पाठन से इस समय भी हमारी आख के सामने है। इन सब परिवर्तनो मे आप भाषा के विकास का वही सिद्धात पाएगे, अर्थात् दिन पर दिन कुछ शब्दो का नाश और उन्ही के शरीर से नवीन शब्दो का प्रादुर्भाव। यह परिवर्तन अब भी बराबर हिंदी भाषा मे जारी है, और उसका जारी रहना ही उसकी सजीवता का कारण और द्योतक है।

प्राचीन ग्रथो की रक्षा

प्राकृत और अपभ्रश तथा अपभ्रश से मिली हुई पुरानी हिंदी के ग्रथो का प्राय लोप सा हो रहा है। जो ग्रथ नष्ट हो गए और अब अप्राप्य हैं उनके सबध मे सिवाय शोक के और हम कर ही क्या सकते हैं। किंतु मुझे तो ऐसा विश्वास होता है कि अब भी यदि पूर्ण रूप से खोज की जाय तो बहुत से भाषा-रत्नो का उद्धार हो जाय। अन्य देशो मे ऐसे महत्त्व के काम राज्य की ओर से लाखो रुपये व्यय कर किए जाते है। हमारे देश मे दुर्भाग्य से सैकडो वर्षो की राजनैतिक स्थिति के कारण उन ग्रथो का पठन पाठन उड गया और वे कही देखने मे भी नही आते। हिंदी साहित्य सम्मेलन और हिंदी की अन्य सस्थाओ तथा हिंदी-सेवियो का एक बडा कर्त्तव्य मुझे यह जान पडता है कि इन ग्रथो के लिए गहरी खोज की जाय और एक विशाल सग्रहालय बनाया जाय जहा देश भर से इकट्ठी कर ऐसी पुस्तकें सुरक्षित की जायं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से इस ओर जो कुछ काम हुआ है उसके लिए वह धन्यवाद की पात्र है, किंतु जो काम करना है उसको देखते हुए जो अब तक काम हुआ है वह बहुत ही कम प्रतीत होता है। हिंदी साहित्य सम्मेलन की सार्थकता इस प्रकार की महती आवश्यकताओ के पूरा करने मे ही है। यदि इस वर्ष सम्मेलन के कार्य-कर्ताओ और सहायको की सघटित शक्ति इसी काम मे लग जाय, तो न केवल हिंदी भाषा का किंतु देश भर का, ऐतिहासिक खोज की दृष्टि से, बडा उपकार हो जाय। क्या हिंदी जैसी विस्तृत भाषा को मातृभाषा कहने वाले सहस्रो धनाढयो के लिए यह असभव है कि वे तुरत दो चार लाख की पूजी इकट्ठा कर इस काम मे हाथ लगाए।

पुरानी हिंदी, ब्रजभाषा और खडी बोली

हिंदी भाषा के क्रम-विकास के सबध मे एक और बात मैं कहना चाहता हू। प्राय साधारण जनो की यह धारणा सी जान पडती है कि जो भाषा खुमान रासो अथवा पृथ्वीराज रासो मे पाई जाती है वही से हिंदी का आरभ समझना चाहिए, और वही हिंदी का आदि स्वरूप है, उसी से ब्रजभाषा निकली और ब्रजभाषा मे धीरे-धीरे आधुनिक खडी बोली का प्रादुर्भाव हुआ। मेरा निवेदन यह

है कि यह बात भाषा-क्रम-विकास के विरुद्ध है, और हमे हिंदी के जो भिन्न भिन्न रूप अपने पुराने ग्रंथो मे दिखाई पडते है, वह इस विचार के सर्वथा विपरीत प्रमाण है। मुझे तो ऐसा जान पडता है कि चद की भाषा मे अधिकतर प्रातीय भाषा का मिश्रण है। जिस समय चद राजस्थान मे कविता कर रहे थे, उसी समय व्रज अथवा अवध मे वही चद की भाषा बोली जाती थी, अथवा उसी भाषा मे यहा के भावुक रसिक जन अपने आनदोत्सव के गीत गाते थे अथवा उसी भाषा के द्वारा माताए अपने बच्चो को पालने पर झुलाती हुई लोरिया गाती थी, ऐसा होना प्रमाणित नही है। जो बातें ज्ञात है वह इसके प्रतिकूल हैं। यह भी नही जान पड़ता कि खड़ी बोली व्रजभाषा मे से ही सीधी निकलती है, क्योकि यदि ऐसा होता तो व्रज मे, जो व्रजभाषा का केंद्र है, आज भी आप खडी बोली का प्रचार देखते। वास्तव मे आप देख यह रहे हैं कि आज भी राजपूताने की भाषा व्रजभाषा की अपेक्षा चंद की भाषा के अधिक समीप है और जहा व्रजभाषा का साम्राज्य है वहा खडी बोली साधारण जनता की भाषा नही है। खडी बोली का प्रचार केवल बोली की रीति से दूसरे ही स्थानो मे है। इससे मुझे तो यही प्रतीत होता है कि इन भाषाओ का क्रम-विकास अपभ्रंश भाषाओ से पृथक् पृथक् हुआ है। अपने पुराने साहित्य पर दृष्टिपात कीजिए तो भी यही बात प्रकट होती है। चद का समय विक्रम की तेरहवी शताब्दि के प्राय मध्य मे माना गया है। अमीर खुसरो का जन्म सवत् १३१२ सिद्ध है, अर्थात् चद के अत और खुसरो के जन्म मे केवल ६४ या ६५ वर्ष का अतर था। किंतु आपको खुसरो की भाषा और चद की भाषा मे कितना भारी अतर दिखाई पडता है जो कदापि ऐसी दो भाषाओ मे नही हो सकता जिनमे से पहिली से दूसरी निकली हो। चद के कुछ नमूने मैं ऊपर दे चुका। खुसरो की कुछ कविताए यहा उपस्थित करता हू—

(१)

सरकडो के ठट्ठ बधे और बद लगे हैं भारी।
देखी है, पर चाखी नही लोग कहैं है खारी॥

(२)

खडा भी लोटा पडा भी लोटा,
है बैठा और कहे है लोटा।
खुसरो कहै समझ का टोटा॥

(३)

सर पर जटा गले मे झोली, किसी गुरु का चेला है।
भर भर झोली घर को धावै उसका नाम पडेला है॥

(४)

सेज पडी मेरी आखो आया, डाल सेज मुहि मजा दिखाया।
किससे कहु मजा मैं अपना, ऐ सखि साजन ना सखि सपना ॥

खुसरो की दोसखुनी हिंदी प्रसिद्ध है, दो एक उदाहरण देता हू—

(१)

प्रश्न—रोटी जली क्यो ?
घोडा अडा क्यो ?
पान सडा क्यो ?
उत्तर—फेरा न था ।

(२)

प्रश्न—दीवार क्यो टूटी ?
राह क्यो लूटी ?
उत्तर—राज न था ।

खुसरो के इस रसीले दोहे पर भी तनिक ध्यान दीजिये—

खुसरो रैनि सुहाग को, जागी पिय के सग ।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भये इक रग ॥

खुसरो की वनायी हुई 'खालिक वारी' अब भी उर्दू मकतवो मे कही कही बच्चो को विद्याभ्यास के प्रारभ मे याद करायी जाती है । कुछ नमूने देखिये—

खालिकवारी सिरजनहार । वाहिद एक विदा करतार ॥
मुश्क काफर अस्त कस्तूरीकपूर । हिंदवी आनन्द शादी औ सरूर ॥
गदुम गेहू नरकद चना शाली है धान । जरत जौन्हरी अदस मसूरवग है पान ॥

क्या यह भाषा चद के भाषा का ६० वर्ष पश्चात् परिवर्तित रूप जान पडती है ? ६०० वर्ष वाद भी यह खुसरो की कविता आज हमारी आधुनिक खडी वोली की कविता सी ही है । व्रजभाषा का उत्कर्ष-काल खुसरो के वहुत पीछे का है । हिंदी काव्य के सिरमौर कवीरदास की भी कविता का वहुत अश खडी वोली से ही मिलता जुलता है, यद्यपि व्रज, अवधी और विहारी भाषाओ का भी उसमे समावेश है ।

क्या यह भापा चद के भाषा का ६० वर्ष पश्चात् परिवर्तित रूप जान पडती है ? ६०० वर्ष वाद भी यह खुसरो की कविता आज हमारी आधुनिक खडी वोली की कविता सी ही है । व्रजभापा का उत्कर्ष-काल खुशरो के वहुत पीछे का है । हिंदी काव्य के सिरमौर कवीरदास जी की भी कविता का वहुत अश खडी वोली

से ही मिलता जुलता है, यद्यपि व्रज, अवधि और विहारी भाषाओ का भी उसमे समावेश है।

इन साहित्यिक उदाहरणो से भी यही बात सिद्ध होती है जो मैं ऊपर कह आया हूं, अर्थात् यह कि चंद की भाषा, व्रजभाषा और खड़ी वोली का स्रोत अपभ्रश भाषाओ सेअलग-अलग निकला और अलग-अलग प्रवाहित हुआ। स्रोत की उपमा पूरी घठित नही होती, क्योकि एक स्रोत दूसरे स्रोत से अलग होकर प्राय फिर एक दूसरे से नही मिलते, किंतु उपमा के मुख्य अग को सामने रखते हुए भी भाषाओ के सवध मे हमे यह न भूल जाना चाहिए कि इसका एक दूसरे पर प्रभाव वरावर पड़ता रहता है। जिस प्रकार चद की भाषा का जन्मस्थान राजपूताना और व्रजभाषा का व्रजकहा जा सकता है, उसी प्रकार खडी वोली का जन्मस्थान व्रज के आस-पास मेरठ जिले की भूमि कही जा सकती है। सदा काव्यो से जनता की भाषा का अनुमान भी नही हो सकता, क्योकि काव्य प्राय प्रथानुसार कृत्रिम भाषा मे भी रचे जाते हैं। उदाहरण के लिए यही देखिये कि जिस समय व्रजभाषा का उत्कर्ष था, प्राय उन कवियो ने भी जिनकी मातृभाषा व्रजभाषा नही थी उसी भाषा को काव्य-भाषा मान कर उसी मे कविता की। व्रजभाषा यद्यपि एक प्रकार से हिंदी भाषा-भाषी मात्र की वहुत दिनो तक कविता की भाषा मानी हुई थी, तथापि सिवाय व्रज के वह वोल-चाल की भाषा कही नही हुई। वोलचाल की भाषा के सवध मे आदर्श खडी वोली की ओर ही झुकता गया। इसमें मुसलमानो का भी वहुत हाथ था। मुसलमानो ने हिंदी के साचे मे ढालकर जो फारसी और अरवी शव्दो की सहायता से एक नये प्रकार की भाषा का ढग निकाला और चलाया, उसका साचा खडी वोली का ही था। उस भाषा ने भी हिंदी के रूप को स्थिर होने मे सहायता दी।

हिंदी और उर्दू

आज हिंदी और उर्दू दो भिन्न सभ्यता की सूचक भाषाए वन गई हैं। उनका धार्मिक प्रोत्साहन भी भिन्न उपमाओ और रूपको और भिन्न दिव्य पुरुषो द्वारा होता है। किंतु वास्तव मे भाषा का आधार एक ही है, और अभी यह दोनो स्रोत इतनी दूर एक दूसरे से नही हुए है कि फिर मिलकर एक प्रवल धारा मे परिणत हो भारतवर्ष भर मे अपनी शक्ति से भूमि उर्वरा कर सुसज्जित न कर दें। मुझे तो आधुनिक हिंदी और उर्दू भाषाओ के पोषक देश-भक्तो का यही तात्कालीन कर्त्तव्य जान पड़ता है। कुछ हिंदी प्रेमी मेरे इस कथन को सुनकर सभव है भय-भीत हो और समझें कि मैं हिंदी भाषा के रूप को विकृत करने की सम्मति दे रहा हू, और यह कहे कि इस प्रकार के विकृत रूप मे न हिंदी भाषा का माधुर्य, न प्रसाद और न प्रौढता ही रह जाएगी। मैं ऊपर नाश और विनाश का सिद्धात कह आया हू। हिंदी भाषा के आधुनिक रूप के विकृत होने से उसकी गति रुक जाएगी,

यह मैं नही मानता। प्रतिभाशाली कवि और प्रौढ लेखक उस हिंदी और उर्दू की मिली हुई भाषा मे वही शक्ति उत्पन्न कर देंगे जो सदा आपको अपभ्रष्ट किंतु जीवित भाषाओ मे मिलती आई है।

साहित्य

यहा तक मैंने कुछ भाषा-सबधी मीमासा की। अब मैं कुछ शब्द हिंदी साहित्य के विषय मे निवेदन करूगा। साहित्य क्या है? मनुष्य के भावो का शाब्दिक चित्र। ईश्वरीय शक्ति की सबसे अनूठी रचना, जो ससार मे हमे दिखाई पडती है, स्वय मनुष्य है। मनुष्य मे सबसे उत्तम और विचित्र वस्तु उसके भाव हैं। भावो को व्यजित करने के कई मार्ग है, किंतु उनके लिए सब से श्रेष्ठ दर्पण शब्द ही हैं। शब्द सृष्टि का आधार है और जितने ही अश मे मनुष्य उस मुख्य शक्ति का सहारा लेने का सामर्थ्य रखता है, उतना ही वह श्रेष्ठ है और सृष्टि के केंद्र के समीप पहुचता है। शब्द के बारे मे बाइबिल मे कहा है कि 'वह ईश्वर के साथ था और स्वय ईश्वर था।' हमारे देश के महात्माओ ने भी शब्द ही को सृष्टि का मूल तत्व माना है। शब्द के सहारे ही समस्त ब्रह्माड का विकास बताया है। इसीलिए मनुष्य जितना ही अधिक शब्द की शक्ति का परिचय पाता है उतना ही वह ज्ञानी होता है, जितना ही अधिक उसके रहस्यपूर्ण अमृत को वह चखता है उतना ही श्रेष्ठ कवि होता है। ससार मे यो तो हम प्रतिक्षण शब्द कहते है और सुनते हैं, किंतु उसके वास्तविक रहस्य की ओर हमारा ध्यान नही जाता। इतना तो फिर भी हम बाह्यरूप से देख ही सकते हैं कि हमारे इस आधिभौतिक जगत् का वर्त्तमान रूप, उसका कई लाख वर्षों का उत्थान, उसकी सारी स्थिति शब्द ही के सहारे है। जो महात्मा इस आधिभौतिक जगत् के परे का हाल जानते हैं उनकी वाणी से तो शब्द की महिमा पग-पग पर प्रगट होती ही है, किंतु हम साधारण जन भी, जिनकी परिमित बुद्धि और नेत्रो की ज्योति इस भूमडल के स्थूल पदार्थों के अन्धकार मे से ऊपर की कुछ भी बातें नही देख सकती, इतना अवश्य देखते है कि अपने बुद्धिक्षेत्र की सीमा के भीतर भी हमारा सब कार्य तथा कार्यों के कारण और परिणाम शब्द की ही शक्ति पर निर्भर हैं। इसलिए पृथ्वी के आदि काल से जिन महापुरुषो ने शब्द अथवा वाणी की उपासना की, उन्होने ही अपने तपोबल से इस जगत् के उत्थान मे सब से अधिक सहायता की है और वे ही जनता के पूज्य और प्रेम-पात्र होते आए हैं। हमारे यहा तो स्वत शब्द को प्राचीन ऋषियो ने इतना पवित्र माना कि ब्रह्म को भी शब्द अथवा नाद-स्वरूप बताया। शब्द की पवित्रता को ही अछूत रखने के लिए उन्होने वेदो को मनुष्य के मुख से निकला हुआ नही किंतु 'स्वत शब्दित' बताया। हमारे महापुरुषो मे जिनकी वाणी मे असाधारण शक्ति थी वही अवतार कहलाये। इसमे भी सदेह नही कि महापुरुषो के अतिरिक्त

भी कुछ निम्न श्रेणी के मनुष्यो की वाणी मे शक्ति हो सकती है और होती है। ईश्वरीय अंश तो सभी मे विराजमान है, साधारण मनुष्य के हृदय से भी वह कभी-कभी विचित्र और अलौकिक रीति से प्रगट हो जाती है। इन्ही महापुरुषो और साधारण पुरुषो के गंभीर शब्दो के समूह का नाम साहित्य है। साहित्य मे डूबना मानो सृष्टि के आदि स्रोत मे डूबना है। किंतु हरेक अपनी शक्ति के अनुसार ही उस स्रोत मे विहार का आनद और लाभ उठा सकता है। मधुकर सुगंधित वृक्षो के वन मे नित्य पराग चखते हुए भी वन के समस्त पुष्पो का आनद नही उठा सकता। उसकी तृप्ति तो थोडे ही फूलो से हो जाती है। ससार साहित्य भी अपरिमित और अखडित उच्च सुगंधित भावो का कानन है। उसके कुछ ही अशो मे मनुष्य पैठ सकता है। वह आनद तो थोडे ही अश से उठता है, किंतु उसके तारतम्य का वह अनुभव कर सकता है। इस अनुभव मे भी एक अद्‌भुत आनद है। इस बात का ज्ञान कि जिस वन मे हम विहार कर रहे हैं वह अपार है, उसमे हमारे से लाखो जीव हरदम विहार करते हैं, हमसे पहिले असख्य जीव वहा विहार कर चुके हैं और हमारे पीछे भी करेंगे, इसमे भी एक अद्‌भुत चमत्कार है। हम अकेले नहीं हैं, एक महान कुटुंव के वशज है, हमारा सबध सृष्टि के आदि से आज तक है और जो आगे आवेगा उसमे भी रहेगा, हममे ही भूत और भविष्य का मिलान होता है, इसमे भी अद्‌भुत आत्मगौरव है। इसीलिए सचमुच वह भाग्यवान् है जो इस अपार साहित्यवन के किसी भी भाग मे किल्लो करता है। जिस शिक्षा ने इस अद्‌भुत् वन मे प्रविष्ट ही न कराया वह निरर्थक है। जिस मनुष्य ने इसका दर्शन न किया और जो इसके सुरभित फूलो की महक से मस्त न हुआ उसका जीना वृथा है।

साहित्य-कानन

हिंदी साहित्य भी ससार साहित्य का एक अग है। वही हमारे समीप और हमारे विहार-स्थल है। चिर परिचय के कारण उसके अनेक स्थल हमे अति प्रिय हैं, और हमारे जीवन मे समय-समय पर हमे शीतलता देते रहते हैं। यहा सभी प्रकार के चित्र-विचित्र वृक्ष है और कुछ तो ऐसे हैं कि यदि आपको इस हिंदी के अश के अतिरिक्त साहित्य-वन के अन्य अशो मे घूमने का सौभाग्य हो तो वहा भी उनकी तुलना न हो सकेगी। अहह ! क्या सुदर समूह है ! एक ओर कबीर, मीरा, दादू, सुदरदास का वाणी-विकास है, पास ही सूर, तुलसी, नददास, हितहरिवश की पवित्र ध्वनि गूज रही है। आइये, दिव्य दृष्टि की भिक्षा लेकर थोडी देर के लिए तो आइये। देखिये, कितने भक्त-जनो के वृ द इन वाणियो के साथ आनद मे मतवाले होकर नृत्य कर रहे हैं और स्वय उनके स्वर मे स्वर मिलाकर इस देवीगान को कितना विशाल बना रहे है। क्यो आपको भी कुछ सुनाई पड रहा है? ध्यानावस्थित होइए तभी सुन पडेगा। अथवा आपका ध्यान कुछ दूसरे ही स्वरो पर मुग्ध

है, जो देव, बिहारी मतिराम, सेनापति, पद्माकर, ठाकुर, पजनेश के समूह से आ रहे है ? इन स्वरो मे भी अद्भुत आकर्षण है। वधिक की वीणा के समान हमारे मन-मृग को स्तभित कर घसीटे लिए जा रहे हैं, किंतु रोकिए अपने को सम्हालिए ! अभी दूसरी ओर की दैवी वाणी का आनद आपने समझा ही नही। यदि आप कबीर और सूर के समूहो की ध्वनि मे मस्त नही हो सकते, तो भी अपने को देव और मतिराम के स्वरो मे भुला न दीजिये। इधर भी क्या आपकी दृष्टि पडी ? देखिये, भूषण, लाल और सूदन का कैसा गभीर रणनाद हो रहा है ! क्यो, क्या इससे आप भयभीत हो रहे है ? बहुत दिनो से आप इधर आए ही नही। इस नाद मे क्या ही आनद है ! यह नाद है तो कर्कश, किंतु इसमे भी अद्भुत आनद है। मैं देखता हू, आप बार-बार देव और मतिराम ही की ओर झुकते है। बहुत पुराना अभ्यास पड गया है। आप ने तो इस साहित्य वन मे, जान पडता है, केवल इन्ही के स्वरो मे आनद लेना सीखा है। किंतु अभी आपने इस वन के उत्तुग गगनस्पर्शी वृक्षो के दर्शन ही नही किये अथवा उधर आख गई भी तो उनकी स्थिति को पहचान ही न सके। अच्छा, दूसरी ओर देखिये। रहिमन, वृद, गिरिधर—इनकी तो सूक्तिया आपको अवश्य रिझा सकती है। ओहो ! किधर-किधर देखें, चारो ओर रगीलापन, माधुर्य और अनद ही तो दिखाई पड़ता है। हम तो चलते-चलते थोडी दूर चले गये थे। यहा तो हमारे पास ही हरिश्चद्र, प्रतापनारायण, पूर्ण और सत्यनारायण अपनी मस्तानी तान सुना रहे हैं। क्यो, थोडी देर बैठ क्यो न जाए।

वाह वाह ! यह तो कुछ एक और ही गुल खिल गया। हमारे साथ ही भ्रमण करने वाले मित्रो ने इस साहित्य-वन मे प्रतिभावित हो कैसा मनोहरण और ओजस्वी गान आरभ कर दिया ! पूज्य पाठकजी को इस वन का एक उजडा हुआ कोना ही पसद है। वही एकात मे बैठे हुए वह भारतगीत से श्रोताओ का मनोविनोद कर रहे हैं। श्रद्धेय अयोध्यासिहजी हममे कुछ अलग ही हट कर अपने प्रवासी प्रियतम की खोज मे करुणा-नाद कर हमारे चित्त को विह्वल कर रहे हैं। पास ही शकर जी अपने डमरू के स्वरो के साथ ससार की जितनी कुरीतिया हैं, उनको भस्म करने के लिए अपना तीसरा नेत्र खोले नृत्य कर रहे हैं। साधारण आदमी तो उनके पास जाते भयभीत होता है, किंतु पास से देखिये तो, इस तेजस्विता मे भी सहृदयता और कोमलता है। और भी पास दीनजी सूक्ति-सर मे लीन हो रहे हैं, और वियोगी हरि जी अपने प्रियतम के वियोग से दुखी करुणस्वर मे उस का गान करते अष्टछाप के कवियो की याद दिलाते हैं। किंतु हैं ! यह क्या ध्वनि आई ! यह तो बिलकुल ही विचित्र है। यह तो किसी नई रागिनी की उत्पत्ति जान पड़ती है। वाह ! इसमे तो अधिकतर हमारे निजी चित्रगण ही सम्मिलित हैं। एक ओर मैथलीशरण जी भारत-भारती की आरती उतार रहे हैं। इसी समूह मे दूसरी ओर रामनरेश जी ईश्वर से भारतवर्ष मे ऐसे पथिक

भेजने की प्रार्थना कर रहे है जो केवल अपने सतोगुण से, विना रजोगुण और तमोगुण का सहारा लिए, भारत का उद्धार करे। ईश्वर ने तो अपनी प्रकृति मे तीनो गुणो का ही मिश्रण किया है और इस पृथ्वी-स्थल को तो, जान पडता है रजोगुण व्याप्त ही बनाया है। वह त्रिपाठी जी के गान से मोहित हो कहा तक अपने नियमो को वदल देगा, इसका मुझे कौतूहल है। तो भी तान तो अद्‌भुत ही छेडी। इन्ही मित्रो के पास माखनलालजी भारतीय आत्मा की करुणा और ओज भरी गाथा से और त्रिशूल जी अपने प्रवल शस्त्र का सहारा दे सोई हुई जनता को जगाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसी प्रयत्न मे माधव शुक्ल जी भी उनका साथ दे स्वतत्रता देवी का यशकीर्तन कर रहे है। भारतवर्ष के नवयुवक आज इसी गान को ध्यान से सुन रहे हैं। किंतु कुछ चुप से हैं। मैंतो ध्यान लगाए आसरा देख रहा हू कि वे कव इसी गान के स्वर मे स्वय स्वर मिला इसी शक्ति शालिनी देवी के उपासक वनेंगे।

यहा तक का विचित्र दृश्य है। इस वन मे तो चारो ओर जीवित वाणिया हैं। किधर देखें, किधर सुनें, यहा तो आनद मे नाचने का जी चाहता है।

किंतु वाह ! इस वन के एक अश पर तो मेरा ध्यान ही नही गया। यहा तो गान करने वालो के अतिरिक्त गभीर विचार मे लीन, अपने ओजस्वी शव्दो मे शिक्षा देने वाले अथवा ब्रह्माड का अन्वेषण तथा प्राचीन इतिहास का वर्णन करने वाले विद्वज्जन विराजमान हैं। कुछ विद्वत्जन ऐसे भी हैं, जो इस साहित्य-वन के गान का आनद उठाते हुए इसी की कथा औरो को सुना रहे हैं। यहा शिवसिंह सेगर, लल्लू लालजी, राजा शिवप्रसाद, वालकृष्ण भट्ट, तोताराम, सुधाकर द्विवेदी अविकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास आदि प्रतिभाशाली व्याख्याता गभीर, किंतु आनद पूर्ण, भाव से उपस्थित हैं निकट ही श्रद्धेय महावीरप्रसाद द्विवेदी, गोविंद नारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी के दर्शन हो रहे है। अहा ! द्विवेदी जी किस प्रकार गभीर शव्दो से सरस्वती का आह्वान कर हिंदी-भाषी युवक-मंडली को उसके दर्शन करने का निमत्रण दे रहे हैं। और भी पास मिश्रवधु इस वन के अन्वेषण की कथा सुना लोगो को यहा भ्रमण करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं, और मेरे मित्र रामदास गौड़ समस्त ब्रह्माड के वैज्ञानिक रूप का दिग्दर्शन करा रहे हैं। समीप ही जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु, अविकाप्रसाद वाजपेई इस साहित्य-वन की रचना-शैली पर आश्चर्य के साथ विचार कर रहे हैं। यही माधवराम सप्रे, अमृतलाल चक्रवर्ती इस महा वनके अन्य अशो का फोटो लिए हुए हिंदी-भाषियो को दिखा रहे हैं।

वाह ! यहा तो घूमते-घूमते श्यामसुदर दास जी भी आ गये। आपको इस वन के दर्शन मात्र के आनद से ही तृप्ति नही हुई, आप यहां के न केवल इन हिंदी अश का किंतु अग्रेजी अश का भी आलोचन कर ओजस्वी शव्दो मे अपने मत की व्याख्या कर रहे हैं। हैं ! यह तो आज एक नया आनंद हुआ। पद्मसिंह जी

भी यहा आ विराजे। आप तो विहारी पर लट्टू हो रहे हैं। विहारी का इसी वन मे गान सुनते-सुनते, जान पडता है, आपको यह भ्रम हो गया कि विहारी की वाणी की शक्ति कुछ क्षीण हो गई। इसीलिए आप तुरत दौडकर सजीवनी बूटी लेकर आए है, और स्वय भी विहारी की तान पर ताल देकर उसको अधिक रोचक रूप मे दरशाने का प्रयत्न कर रहे है। किंतु वाह! आप ने कैसी गूज डाल दी! लोग तो एक क्षण के लिए इस रागिनी को भी भूल साजिंदे के बाजे को ही सुन रहे हैं। धन्य है वह साज़िंदा! उसका आज सत्कार उचित ही है।

इस वन की आज दौडा-दौड मे, अणुमात्र को ही सही, दर्शन तो हो गया। वहुत-सी माधुर्य-पूर्ण कुजो और बहुत से गभीर व्याख्याताओं के आश्रमो में तो मेरी आख भी नही गई। इस भागा-भाग मे देख ही क्या सकता था? यह तो ससारी झझटो से अच्छा अवकाश मिलने पर ही सतोष के साथ हो सकता था किंतु मुझ ऐसे कीच मे पडे हुए मनुष्य को क्षणमात्र का भी दर्शन बहुत है। इसके पास आकर चित्त तो यही चाहता है कि यही की लता-कुजो मे घूमता रहू और यहा के गभीर दैवी-गीत तथा शिक्षा-प्रद सदुपदेश सुना करू। सब समूहो को देखकर भी वार वार कबीर और दादू, सूर और तुलसी—इन्ही के अलौकिक नाद सुनने को जी चाहता है। मुझे तो इनके ओजस्वी नाद के समान, न केवल वन के इस अश मे किंतु अन्य अशो मे भी, जिनका किसी समय मे अवलोकन किया है, कोई सुनाई न दिया। और फिर कवीर का तो कहना ही क्या! अन्य कवि तो सासारिक बातो की चर्चा करते है, शब्द चातुरी और स्वकल्पित रस-माधुरी मे मुग्ध होते हैं अथवा कुछ ऊपर की कहते हैं तो सुनी सुनाई, किंतु कबीर के नाद को तो सुनते-सुनते यह जान पडता है कि आख के देखे हुए रहस्य की कोई वार्ता कर रहा है। एक वार इस वन के दूसरे अश मे मौलाना रूम के दर्शन हुए थे। उनके गान से भी मैं दंग हो गया था, क्योकि उस ओर की वनवीथिया मेरी अधिक परिचित न थी और न वहा उस प्रकार के गान सुनने की कभी मुझे आशा थी, किंतु मौलाना रूम के 'नय' के स्वरो ने मुझे अपने पूर्व परिचित कवीर की आकाश से उतरी हुई ध्वनि की याद दिला दी थी। आपका झुकाव कदाचित् किसी और ही तरफ है। खैर! जाने दीजिये। आप तो मुझसे हर तरह से श्रेष्ठ हैं और भाग्यवान् हैं कि आप इस आनद-कानन मे विहार तो करते रहते हैं। मेरे तो भाग्य मे इस आनंद का वहुत ही कम अश लिखा है। इस समय भी अपने को भूलकर सुचित हो सैर नही कर सकता। इस कानन से विदा होकर शीघ्र ही साधारण काम मे प्रस्तुत होता हू। किंतु इसी कानन मे घूमते हुए एक ज्योतिर्मय मूर्ति ने, जिसे मैं पहचान नही सका, आपको सुनाने के हेतु एक सदेशा भेजा है, उसे पहले सुना देता हू—

संदेश

'साहित्य-काकन के इस अश मे वडे-वडे तेजस्वी पुरुषो की वाणी की झनकार हो रही है, किंतु अव भी वहुत स्थान ऐसे है जहा नये-नये प्रतिभाशाली गायको और व्याख्याताओ के वसने की आवश्यकता है। यह समय भारतवर्ष के लिए महा परिवर्तन और वडे महत्व का है। यही आपका अवसर है। मनुष्य के और देश के भाग्य मे ऐसे अवसर वार-वार नही आते, जव वह अपने विचारो और कृत्यो से संसार का मानसिक प्रवाह वदल दे। आपको वड़े सौभाग्य से यह अवसर प्राप्त हुआ है। आप न केवल साहित्य-कानन के इस अश के इन रिक्त स्थानो को ले सकते हैं, किंतु यहा नितात नये नादो से विप्लव मचा सकते हैं। सव से पहली वात यह स्मरण रखिये कि यो तो इस वन मे सभी तरह की मोहिनी ध्वनिया गूज रही है, किंतु वास्तविक आदर उन्ही को मिलता है जो अकृत्रिमत रूप से व्रह्माड के नैसर्गिक सगीत के स्वरो मे मिलकर ध्वनित होती है। कृत्रिमता छोडिए, भावुकता सग्रह कीजिए। सूर्य सी नैसर्गिक ज्योति का सौदर्य पहाडो और जगलो मे स्वत. दिखाई पडता है। हरे, लाल और पीले काच के टुकड़ो की उसे आवश्यकता नही। विजली की ज्योति को सुदर वनाने के लिए आप भले ही अपने काच के टुकड़े भिन्न भिन्न रगो से रगे और उनको भिन्न-भिन्न आभूपणो से भूपित करें, किंतु सूर्य की ज्योति इन कृत्रिम आभूषणो का तिरस्कार करती है। आभूषणो की आवश्यकता, कवियो के चलन के अनुसार भी, परकीया नायिका को ही अधिक होती है। स्वकीया सती का शृगार आभूषणो पर न निर्भर है और न उससे वढता ही है। स्वाभाविकता ही उसका जौहर है—

पतिवरता मैली भली, गले काच की पोत।
सव सखियन मे यो दिपै, ज्यो रवि शशि की जोत॥

वाणी की सार्थकता इसी मे है कि वह आकाश मे सीढी वाध कर मनुष्य को उस स्थान पर चढा दे जहा से वाणी का उद्गार हुआ है। यदि वाणी ने मनुष्य को लुभाकर नीचे कीच मे घसीट कर डाल दिया तो उसका सौदर्य कुलटा का सौंदर्य है, जो भोग-लिप्सको के हृदय को क्षण भर के लिए भले ही लुभा ले, किंतु जो उच्च पुरुषो के सामने आदर नही पाता। आप अपनी वाणी का ऊचा आदर्श रखें। वह पवित्र कुल की पुत्री है, उसका शृगार नैसर्गिक मालती और मल्लिका से ही कर उसका पूजन करें। सुनारो के भडकीले आभूपणो को दूर ही रखें। भारतवर्प के इस परिवर्तन-काल मे ऐसे उपासको की आवश्यकता है जो अपनी वाणी से स्वतत्रता का नाद देश मे भर दें। नगर, ग्राम, जंगल और पहाडों से घृणित दुर्वलता और निर्वीर्यता को निकाल महाशक्ति की मूर्ति जनता के हृदय मे स्थापित कर उसके पवित्र पूजन के लिए नत्य और गान करें। निस्सार नीचे

गिराने वाले रसो और उन्ही के समान पोच सचारी भावो, विभावो और अनुभवो को छोड दिव्य नये रसो का प्रादुर्भाव कीजिए, उनके उपयुक्त सचारी भावो से उनको सचरित कीजिए, उनके उपयुक्त विभावो मे उनका पोषण कीजिए और तब उनके परिणाम-स्वरूप महत अनुभवो का दर्शन कर कृतार्थ होइए। इस साहित्य कानन मे रिक्त स्थान हैं, वहा इस समय ऐसे ही वीर प्रतिभा-सपन्न आकाश-मार्ग-गामी कवियो की आवश्यकता है।'

प्रयाग
चैत्र शुक्ला चतुर्दशी
सवत् १९८०

पुरुषोत्तमदास टंडन

११

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के सन् १९३९ के उपाधि वितरण समारोह पर दिया गया भाषण

आज जिन विद्यार्थियो और विद्यार्थिनियो को उपाधि और प्रमाणपत्र मिले हैं, सबसे पहले उन सबको मैं वधाई देता हू। हम सव देश सेवा के उद्देश्य से प्रेरित होकर हिंदी प्रचार के काम मे लगे है। स्नातको और स्नातिकाओ से मेरा कहना है कि आज से इस पवित्र काम मे आपकी जिम्मेदारी वढ गई है।

हिंदी साहित्य सम्मेलन का कार्य आरभ से ही राष्ट्रीय नीव पर खडा हुआ है। राष्ट्रीय भाव से भाषा का महत्त्व सदा उसके सामने रहा है। देश से अत्यत प्रेम रखते हुए भी हमारे देश के कार्यकर्ता किस रीति से देश के कार्यों मे अग्रेजी भाषा की प्रवृत्ति को स्वीकार कर स्वय उसके प्रचारक वन जाते थे और अपने कामो मे अग्रेजी भाषा को महत्त्व देते थे, इसका वुरा परिणाम देखकर सम्मेलन ने आरभ से ही अपनी दृष्टि मे राष्ट्रभाषा के प्रश्न को सामने रखा है। हिंदी साहित्यिको का और हिंदी प्रेमियो का यह सम्मेलन है। हिंदी के विस्तृत क्षेत्र के समान ही उसकी दृष्टि विस्तृत रही है। हमारे देश मे हिंदी जैसी व्यापक भाषा के होते हुए भी हमारे देश के काम परभाषा मे हो, इससे स्वभावत देशाभिमानियो के हृदय मे ठेस लगती है। और इसमे केवल अभिमान की ही वात नही है। यह तो व्यावहारिक दृष्टि से स्पष्ट ही हानिकर है कि हम ज्ञान और राष्ट्रीयता के प्रचार के सुलभ साधन को छोडकर एक ऐसा साधन ग्रहण करें जो हमारी जनता से वहुत दूर है। वर्षों तक अग्रेजी भाषा द्वारा पोषित होकर हमारे देश के नेता देश को आगे वढाने मे कहां तक समर्थ हुए, यदि इस पर आज भी ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट जान पडता है कि हमने अपनी पिछली भूल से कितनी हानि उठाई है। सम्मेलन का ध्यान वरवस आरम्भ से इसी ओर गया। सम्मेलन के कार्यकर्ताओ को दिखाई पडता था कि अग्रेजी ढाचे मे ढले और

अंग्रेजी विचारो और अंग्रेजी भाषा मे पले लोग देश के हृदय तक पहुच ही नही सकते। इसीलिए राष्ट्रीय भावो को जगाने और सच्चा ज्ञान फैलाने के लिए पहली सीढी यह थी कि अंग्रेजी भाषा का जो जादू चढ रहा था, वह देश पर से हटाया जाय और जनता अपने स्वरूप को समझे। अंग्रेजी का महत्त्व अंग्रेजी राज्य के कारण कुछ न कुछ रहना तो स्वाभाविक है, किंतु हमारी भूल तो यह थी कि उन लोगो मे, जहा उसकी कुछ भी आवश्यकता न थी, हम उसको लाकर सम्मान की गद्दी पर आसीन करते थे और स्वय उसके सामने सर झुकाकर अपने को शक्तिहीन बनाने मे सहायक होते थे। दवी हुई जातियों मे अकसर यह कमजोरी आ जाती है कि वे अपने शिकारी को ही अपने लिए पिजरा वनाने मे मदद देने लगते हैं। ठीक यही बात आज डेढ सौ वर्षों से हम अंग्रेजी भाषा के सबध मे करते आए है। मेरा यह आशय नही कि हमे अंग्रेजी नहीं पढनी चाहिए, किंतु एक ही वस्तु मात्रा भेद और अवस्था भेद से अमृत और विष दोनो का काम कर सकती है। जिस अंग्रेजी भाषा को हम केवल वाह्य देशो से ज्ञान प्राप्ति का साधन वना सकते थे, उसे हमने अपने को अपनी जनता से पृथक् करने का औजार वना लिया। इसका परिणाम वडे वडे अक्षरो मे हमारे पिछले इतिहास मे लिखा है। हिंदी और प्रातीय भाषाओ ने अग्रसर होकर इस हानि मे कुछ कमी की है, किंतु जो विष अंग्रेजी भाषा द्वारा हम फैला चुके है उसको पूरी तरह से हटाने के लिए विवेकी और दृढप्रतिज्ञ नेताओ और साहसी कार्यकर्त्ताओ की इस समय भी बहुत आवश्यकता है। हिंदी ही इस फैले हुए विष को हमारी भूमि से निकली स्वाभाविक औषधि देकर दूर कर सकती है। सबसे बड़ी जिम्मेदारी इस विषय मे हिंदी भाषियो की है। इसी कारण जन्मकाल से ही सम्मेलन के काम का दृष्टिकोण राष्ट्रीय रहा है।

सन् १९१८ मे सौभाग्य से सम्मेलन को महात्मा गाधी का सभापतित्व प्राप्त हुआ। दक्षिण अफ्रीका से आने के बाद महात्मा गाधी ने भाषा के प्रश्न पर जो विचार कभी-कभी प्रकट किए, उनको देखकर सम्मेलन के कार्यकर्ताओ की यह धारणा हुई कि सभापतित्व के लिए उनका आह्वान करे।

गाधीजी का पदार्पण और प्रेरणा

गाधीजी ने सम्मेलन का निमत्रण स्वीकार कर अपनी अनुपम शक्ति द्वारा हिंदी के उस युग का आरभ किया जिसके पदार्पण के लिए ही सम्मेलन इतने वर्षों तक अपने छोटे उद्योगो द्वारा प्रार्थी था। सभापति बनने से पहले ही उन्होने एक पत्र मे मुझे एक वाक्य लिखा था जिसने मेरे और मेरे साथियो के हृदय पर गहरी छाप लगा दी थी। उनका एक छोटा सा वाक्य लगभग इस प्रकार था "मेरे लिए हिंदी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।" इस वाक्य मे जो बात गर्भित थी उसने हमे

बता दिया कि जिस दृष्टिकोण को अपने नेताओ मे हम देखने को तरस रहे थे, वह गाधीजी के पास प्रचुरता से है। उनकी महान शक्ति का उपयोग इस बड़े भाषा के प्रश्न पर हम कर सकें, इसी गहरी आशा और प्रार्थना से सम्मेलन गाधीजी की ओर झुका था। उसका एक परिणाम आपकी दक्षिण भारत सभा है।

उनके सभापतित्व में और उनकी प्रेरणा से यह कार्य सन् १९१८ मे आरंभ हुआ। सम्मेलन की सीधी देखरेख मे दक्षिण भारत मे हिंदी प्रचार का कार्य सन् १९२७ तक होता रहा। उसके बाद दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा को, जो सम्मेलन की सबद्ध संस्था है, यह कार्य सुपुर्द किया गया। सभा ने उस काम को जिस योग्यता और उत्साह से चलाया है वह हम सबके लिए सुख और बधाई की बात है। मुझको सन् १९२५ मे सम्मेलन की ओर से अपने मित्र श्री हरिहर शर्मा के साथ दक्षिण भारत मे हिंदी प्रचार करने के लिए भ्रमण का अवसर मिला था। उस समय तक भी जो काम हो चुका था उससे मैं देख सकता था कि हिंदी सीखने की ओर किस अभिलाषा से दक्षिण भारत के लोग जा रहे है। भविष्य की भी कुछ रूप रेखा मैं देख सकता था। इस समय तो उस कार्य का स्वरूप बहुत ही स्पष्ट है। आपका काम अच्छा हुआ है और बराबर बढ रहा है। किंतु अपने मन की एक बात कहनी मेरे लिए आवश्यक है।

आरभ काल से मेरी यह धारणा थी कि हिंदी-प्रचार का एक परिणाम यह होना चाहिए (वास्तव मे हिंदी प्रचार की आवश्यकता मुख्यत इसी दृष्टि से है) कि राष्ट्रीय कामो मे और राष्ट्रीय सभाओं मे जो अप्राकृतिक रूप से अग्रेजी का स्थान रहा है उसे हिंदी ले ले। हमारे प्रचार कार्य की सफलता की इसी मे परीक्षा है। क्या आप और हम आज सतोष के साथ कह सकते हैं कि अपने राष्ट्रीय कार्यों मे भाग लेने वालो को हमने इतनी हिंदी सिखा दी कि उन्हे अग्रेजी का सहारा न लेना पडे ? इसका उत्तर तो स्पष्ट है। १८ वर्ष के काम के बाद भी जहा परीक्षाओ मे बैठने वालो और हिंदी जानने वालो की सख्या बढी है, वहा उन अग्रेजी प्रेमी लोगो पर, जो दक्षिण भारत से राष्ट्रीय और अन्तर्प्रान्तीय कामो मे भाग लेते है, हमारा प्रभाव इतना नही पडा कि वे हिंदी सीखकर हिंदी मे भाषण देते और अपना काम करते। अब भी उन्हे अग्रेजी का ही सहारा लेना पडता है। इसमे मेरी आशा अब तक निराशा रही है और यह मेरे प्रेम का उलाहना आप सबसे है।

भाषा का महत्व

भाषा सबधी मनोवृत्ति मे तो चारो ओर अन्तर स्पष्ट है। वास्तव मे आज जो जनता की जागृति हम देखते हैं उसमे एक मुख्य प्रेरक शक्ति भाषा के महत्त्व की पहचान है। जब से हमारा आदोलन अग्रेजी की वक्तृताओ की सकुचित शैली ने

हटकर प्रातीय भाषाओ और राष्ट्रभाषा हिंदी द्वारा उन झोपडो के भीतर घुसा है, जहा अग्रेजी का प्रवेश नही है, तभी से हमारी जनता ने अपना कुछ स्वरूप पहचाना है और वह अपने मे शक्ति का सचार कर रही है। फिर भी राष्ट्रीय कामो मे अब भी अग्रेजी के महत्त्व को बनाए रखने वाले हमारे दक्षिण के भाई हैं। उनकी कठिनाइयो को तो हम लोग देख सकते हैं, किंतु यह अवश्य मुझे कहना पडता है कि यदि पूरी तरह से वे इस प्रश्न के महत्त्व पर ध्यान दें, तो दक्षिण के कुशाग्र बुद्धि भाइयो को हिंदी का प्रयोग करने मे अधिक विलब नही लग सकता। जिस प्रकार प० हरिहर शर्मा या श्री सत्य नारायण हिंदी लिख, पढ़ और बोल सकते हैं, उस प्रकार हिंदी मे सिद्धहस्त होकर काम करना हमारे राष्ट्रीय नेताओ की शक्ति के बाहर कदापि नही हो सकता। फिर इसके सिवाय क्या कहू कि हमारा दुर्भाग्य है जो राष्ट्रीयता की आतरिक प्रेरक शक्ति का स्वरूप देखते हुए भी उनमे इच्छा की कमी है।

राष्ट्रभाषा के लिए प्रयास

मुझे स्मरण है कि सन १९१९ मे अमृतसर मे हमारी राष्ट्रीय महासभा काग्रेस का अधिवेशन हुआ था। पूज्य गाधीजी से मैंने यह बात छेडी थी कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से महासभा की भाषा हिंदी या हिंदुस्तानी होनी चाहिए। महात्माजी मुझसे सहमत थे। उन्होंने एक प्रस्ताव भी महासभा मे पेश करने के लिए लिखकर मुझे दिया था, जिसका अभिप्राय यह था कि महासभा की कार्यवाही मुख्यत हिंदी मे की जाय। दक्षिण भारत के हमारे एक नेता को यह प्रस्ताव दिखाया गया। उन्होंने कहा कि अभी तो हिंदी-प्रचार सभा का काम आप लोगो ने केवल एक वर्ष के लगभग किया है। अभी हमे कुछ और समय दीजिए, इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने से दक्षिण भारत वालो को बडी असुविधा होगी। इस पर महात्माजी की राय हुई, अभी यह प्रस्ताव स्थगित कर दिया जाय। इस बात को आज लगभग १७ वर्ष हो गए।

कानपुर कांग्रेस में पुनः प्रयास

सन १९१९ के बाद राजनीतिक आदोलन की हमारे देश मे जो प्रगति हुई, उसके कारण राष्ट्रीय महासभा के कर्णधारो मे भाषा का प्रश्न कुछ पीछे पड़ गया। सन् १९२५ मे यह प्रश्न फिर कानपुर के अधिवेशन मे उठा और उस अवसर पर पहले-पहल महासभा की नियमावली मे यह बात कही गई कि महासभा की भाषा हिन्दुस्तानी है और साधारणतया उसकी और उसके अतर्गत समितियो की कार्यवाही हिंदुस्तानी मे ही होनी चाहिए। इसको भी ११ वर्ष हो गए। पश्चिमी लोग पूरब के सबध मे कहा करते हैं कि हम पूरब के रहने वाले हाथी के समान

वहुत धीरे चलने वाले है। इस प्रश्न पर ही यदि हम विचार करें तो मानना पडता है कि हम लोग कितनी सुस्त और धीमी चाल से चलने वाले हैं। इतने वर्षों मे तो इस प्रश्न को हमे समूचे तौर से हल कर देना चाहिए था। अब भी यही निवेदन करूगा कि इस प्रश्न मे हमारी राजनीतिक गंभीरता, व्यावहारिक बुद्धि और निष्ठा की परीक्षा है। इस विषय में हम लोगो मे मतभेद नही है। केवल कार्य-कुशलता की कमी है। जितना ही हम विवाद करते है उतना ही हम अपने दूसरे उद्देश्यो को, जिनकी पूर्ति मे राष्ट्रभाषा सहायक होगी, दूर रखते हैं। मौखिक सहानुभूति के तल से ऊपर चढिए। कार्य मे अग्रसर होकर राष्ट्रीय सभाओ का कार्य हिंदी मे करने के मार्ग का अनुसरण कीजिए, और राष्ट्र के लिए पथ-प्रदर्शक वनिए।

नये विधान की भाषा नीति

भारतवर्ष के नये विधान की चर्चा इस समय देश मे फैली है। नये चुनावो मे राष्ट्रीय कर्यकर्त्ताओ को सफलता मिली है। हमारी राष्ट्रीय महासभा काग्रेस के प्रतिनिधि पदग्रहण करें या न करें, इस पर दिल्ली मे अभी वाद-विवाद होकर जो फैसला हुआ उसकी गूज अब तक हमारे कानो मे है। राष्ट्रीय दृष्टि से काग्रेस ने पदग्रहण करने की नीति मानी है। इस निर्णय के सवध मे जो कुछ भी मतभेद हो, यह स्पष्ट है कि जो लोग पदग्रहण करेंगे, उनकी दृष्टि सवल और राष्ट्रीय तथा गवर्नमेंट आफ इडिया कानून की बुरी व्यवस्थाओ का अत करने की ओर होनी चाहिए। इस व्यवस्था मे जहा और हानिया हमारे राष्ट्र के लिए हैं और जहा इगलैंड की गवर्नमेंट ने अपनी शक्ति की दृढता के और उपाय रखे है, वहा भाषा सवधी व्यवस्था भी हमारे देश के गौरव के विरुद्ध है और अग्रेजी विचारो का प्रभाव रखने के उद्देश्य से है। सव सूवो की व्यवस्यापिका सभाओ के लिए साधारण भाषा अग्रेजी रखी गई है। केवल उन लोगो को, जो अग्रेजी भाषा मे अपना अभिप्राय प्रकट नही कर सकते, अपनी प्रांतीय भाषा मे भाषण देने का अवसर दिया गया है। यह व्यवस्था हमे कदापि स्वीकार नही हो सकती। यदि इस नये कानून के विरुद्ध और कोई वात न होती, तो भी यही एक भाषा का प्रश्न ऐसा था जिसके कारण हम इस कानून को स्वीकार नही कर सकते थे। इगलैंड और दक्षिण अफ्रीका के 'वुअरो' का जो युद्ध सन् १९०४ मे हुआ, उसकी तह मे एक वडा प्रश्न भाषा का था। वुअर लोग अग्रेजी भाषा स्वीकार न कर अपनी डच भाषा चाहते थे। वुअर और अग्रेज तो योरोपीय हैं। उनका एक दूसरे का भाषा संवधी अधिक सामीप्य था। हमारे देश मे अग्रेजी भाषा से जनता का क्या सवध ? इसमे केवल थोडे से अग्रेजो को सुविधा है। यदि अग्रेज हमारे देश मे रहना चाहते है तो उनका कर्तव्य है कि हमारे देश की भाषा सीखें। अग्रेजों के

दूसरे राजनीतिक विशेष अधिकारो की समाप्ति के पहले ही हमे उस भाषा संबंधी नीति को समाप्त करना है, जिसके द्वारा उनके साथ पक्षपात और हमारे देश की रुचि, लाभ और सम्मान का निरादर किया जा रहा है। यह भाषा का प्रश्न वास्तव मे इतना बडा है कि हमे उसके लिए तब तक निरन्तर लडना पड़ेगा, जब तक अग्रेजो के प्रभुत्व को हम पूर्णतया समाप्त और स्वनिर्णय और स्वतत्रता के सिद्धात को स्थापित नही कर लेते। मेरा तो विश्वास है कि इस प्रश्न पर लडकर हम बहुत शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

किंतु फिर स्वय जब हम अपनी ओर देखते हैं तब जान पड़ता है कि भाषा के प्रश्न के महत्त्व को कार्यरूप देने मे अभी हममे ही कमी है। जब तक हम अपनी राष्ट्रभाषाओ की कार्यवाही मे, जो हमारे हाथ मे है, अग्रेजी की शरण लेते हैं, तब तक गवर्नमेंट आफ इडिया की भाषा सबधी नीति का विरोध करने का बल हममे कहा से आएगा? वास्तव मे सभी चीजो मे हम अपने भाग्य के स्वयं विधाता हैं। अपने ही कर्मों का फल हमे दूसरो के कर्मों के स्वरूप मे दिखाई पड़ता है। कवि की एक उक्ति मे हमारी कितनी करुणाजनक कथा भरी है—

"अपने मिन्कारो से हलका कस रहे हैं जाल का।
तायरो पर सहर है सज्जाद के इकबाल का॥"

एक बात इस सबंध मे और कहना चाहता हू। इस कानून को बदलवाने का काम तुरत ही काग्रेस के प्रतिनिधियो को अपने हाथ मे लेना उचित है ही, साथ ही बदलने के पहले भी व्यवस्थापिका सभाओ की कार्यवाही मे प्रांतीय भाषाओं को महत्त्व देना राष्ट्रीय प्रतिनिधियो का कर्त्तव्य है।

हिंदी और प्रांतीय भाषाओ का सबध

प्रातीय भाषाओ का और हिंदी का क्या सबध है इस पर यहा कुछ कहना उचित होगा, क्योकि मुझे मालूम हुआ है कि कभी कभी इस विषय मे कुछ लोगो को भ्रम उत्पन्न हुआ है और कुछ लोगो को ऐसा जान पड़ा है कि हिंदी के प्रचार से प्रातीय भाषाओ को हानि पहुचने की सभावना है। कुछ मित्रो ने यह बात मुझसे भी पूछी है कि हिंदी की और प्रातीय भाषाओ की क्या सीमा है? मेरे विचार मे हिंदी व्यापक और हमारे देश की सार्वभौम भाषा है, किंतु प्रातीय भाषाओ के अधिकार पर वह तनिक भी आघात नही करती। प्रातीय भाषाओ का कार्य अपनी अपनी सीमाओ मे जनता की सेवा और उन्नति करना है और हिंदी राष्ट्रजननी होकर देश भर की सेवा और सभाल करने के लिए है। उसका प्रांतीय भाषाओ से स्वाभाविक प्रेम है। उनके अधिकार छीनने का तो उसे स्वप्न भी नही हो सकता। यह तो स्पष्ट ही है कि प्रातीय भाषाओ के अतिरिक्त हमारे बीच एक ऐसी भाषा चाहिए जिसके द्वारा हम अंतर्प्रान्तीय काम कर सकें। ऐसी

हमारे देश मे हिंदी भाषा है। आज हमने उसको राष्ट्रभाषा वनाया हो, यह वात नही है। वह प्राचीन समय से भिन्न भिन्न रूपो मे देश के सास्कृतिक ऐक्य की द्योतक रही है। हिंदी के क्षेत्र मे जो काम करने वाले है, उनसे तो प्रातीय भाषाओं को भी सहायता मिलती है, क्योकि वे अस्वाभाविक अग्रेजी भाषा को हटाकर जनता के काम मे प्रातीय भाषाओ का महत्व वढाते हैं और अतर्प्रातीय कार्यो मे हिंदी को स्थान दिलाते हैं। प्रांतीय साहित्यो का ज्ञान भी दूसरे भाषा-भाषियो को हिंदी के ही द्वारा हो सकता है। इस दृष्टि से भी हिंदी प्रांतीय भाषाओ की सहायक है। वह तो हमारे देश की भाषाओ की वड़ी वहिन है और अपनी तथा अपनी छोटी वहिनो की रक्षा दूसरे देश के आक्रमण से करती है। वास्तव मे आक्रमण को रोकने मे सभी वहिनो को मिलकर यत्नवान होने की आवश्यकता है।

राष्ट्रभाषा का नामकरण

कभी कभी कुछ लोग हमारी राष्ट्रभाषा के नाम का प्रश्न ले वैठते हैं। मुझे तो यह विलकुल अनावश्यक जान पडता है। कुछ समय पहले हमारे कुछ हिंदी प्रेमी भाई हिंदी को आर्य-भाषा कहते थे और अव भी कभी कभी इस शव्द का प्रयोग करते हैं। कुछ दिनो से हिंदुस्तानी शव्द का भी प्रयोग होने लगा है। यह भी आप जानते हैं कि फारसी और अरवी के शव्दो से भरी हुई हिंदी उर्दू कहलाती है। साधारण वोलचाल मे 'हिंदी' शव्द सैकड़ो वर्षों से हमारी भाषा के लिए प्रयुक्त है। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने भी उसी शव्द को लिया है, हमारा देश हिंद कहलाता है। उसी का यूनानी भाषा द्वारा अग्रेजी मे इडिया वना है। हिंद से हिंदी स्वाभाविक है। जो लोग भाषा पर मुसलमानी प्रभाव देखने के विरुद्ध हैं वे हिंदी नाम हटाकर आर्य भाषा शव्द पसन्द करते हैं। उसी प्रकार हमारे कुछ भाइयो को हिंदी शव्द मे विशेष हिंदूपन दिखाई पड़ने लगा है। इसलिए वे इसे हिंदुस्तानी कहना चाहते हैं। वास्तव मे आर्य भाषा और हिंदुस्तानी, ये दोनो शव्द हाल के गढे हुए हैं। हिंदी का हिंदी नाम पड़ने से पहले यह केवल भाषा या नागरी ही कहलाती थी। "अतर्वेदी नागरी" की पुरानी चर्चा मिलती है। पुराने मुसलमान कवि और लेखक हिंदी या हिंदवी शव्द प्रयुक्त करते थे। खुसरो से लेकर वरावर सैकडो वर्षो तक हिंदी या हिंदवी का प्रयोग आपको मुसलमान लेखको मे मिलेगा। जिसे पीछे उर्दू का नाम मिला वही पहले हिंदी कहलाती थी। जव उन लोगो ने, जो फारसी और अरवी का प्रयोग हिंदी मे अधिक करते थे, एक नया शव्द उर्दू वना लिया तव हिंदी शव्द उन्ही लोगो के लिए वच गया, जो साधारण वोल-चाल की भाषा वोलते या लिखते थे। उर्दू मुसलमानी दृष्टिकोण मे ज्यादा सभ्य लोगो की जवान समझी जाने लगी और हिंदी ठेठ हिंदुओ और सभ्यता मे पिछडे हुए लोगो की। इसलिए यद्यपि हिंदी का नाम स्वय मुसलमानो ने प्रचलित किया

था, वे धीरे धीरे अपनी जबान की तराश-खराश की दृष्टि से उस नाम से खिचने लगे। पुराने मुसलमानो मे आप भाषा का यह अतर न पाएगे। उनकी भाषा बोलचाल की भाषा के अधिक समीप थी और यद्यपि वे फारसी लिपि मे लिखते थे, फिर भी अरबी और फारसी के शब्दो का प्रयोग अधिक नही करते थे। मैं यहा पर पुरानी भाषा के नमूने नही दूगा। वह एक अलग विषय है। "हिंदी" का प्रयोग कितने मुसलमानो ने किया है, इसकी भी विशेष चर्चा मैं न करूगा। कहीं कहीं तो आप यह देखेंगे कि जिस फारसी-अरबी मिश्रित जबान को आज उर्दू कहते हैं, उसे भी हिंदी ही कहते थे। बच्चो को अपनी भाषा द्वारा फारसी पढाने के लिए जो किताबे आरभ मे बनाई गईं, उनमे यद्यपि भाषा अरबी फारसी मिश्रित होती थी, पर वह हिंदी कहलाती थी।

मसदर फ्यूज के लेखक ने अपनी भूमिका मे फारसी के नियम सिखाने के सबध मे कहा है—

"करू बाद इसके ब-हिंदी जबा।
कई कायदे फारसी के बया।"

एलोर के बाकर आगा ने जो ग्रथ कई सौ वर्ष पहले "दीवाने हिंदी" नाम से लिखा था उसके सबध मे मुहम्मद अब्दुल कादिर सर्वरी साहब ने एक लेख लिखते हुए इस प्रश्न पर जो राय दी है वह बिल्कुल ठीक है। मेरे मित्र प० अबिका प्रसाद बाजपेई ने हाल मे एक पुस्तक "Persian Influences on Hindi" के नाम से प्रकाशित की है। उससे उक्त सर्वरी साहब की राय नीचे देता हू। अप्रैल सन् १९२९ के 'रिसाला उर्दू' से बाजपेईजी ने यह राय उद्धृत की है।

"दीवान अर्थात् दीवाने हिंदी के सरैवरक पर और खुद अशयार मे भी कही कही हिंदी का ही लफ्ज इस्तेमाल किया गया है। ताहम यह मालूम रहे कि इससे मुराद उन शायरो की उर्दू से होती थी, क्योकि वे उर्दू को हिंदी से जुदा चीज नही समझते थे। हिंदी या हिंदवी इसका कदीम तरीन नाम था। उर्दू और दखनी के लिए भी यह लफ्ज बिना तकल्लुफ इस्तेमाल होता था। गोया 'उर्दू', 'हिंदी' और 'दखनी' एक ही जुबान के मुखतलिफ नाम थे।"

हिंदी या हिंदुस्तानी

ऊपर जो मैंने कहा उससे स्पष्ट है कि हिंदी नाम मे किसी हिंदू सप्रदाय का प्रभाव नही है। आज इस नाम को, जो अच्छी तरह चल गया है, बदल कर इसकी जगह हिंदुस्तानी कहने मे मुझे कोई विशेष लाभ नही दिखाई पडता। यह कहना कि आजकल हिंदी शब्द केवल उस भाषा का द्योतक है जिसमे सस्कृत का प्रवेश अधिक होता है, ठीक दलील नही है। लिखने की शैली अपनी अलग अलग होती है। राजा शिवप्रसाद ने अपनी शैली मे फारसी शब्दो का अधिक प्रयोग

किया, किंतु वह भी हिंदी कहलाती है। अदालत के कामो मे, जहां जहा नागरी अक्षरो का चलन है, फारसी शब्दो की भरमार रहती है, किंतु वह भापा भी हिंदी ही कहलाती है। ग्वालियर राज्य की भाषा यदि आप देखें तो उसके फारसी शब्दो को समझने मे आपको कुछ कठिनता होगी, किंतु वह भी हिंदी ही कहलाती है।

जो सज्जन हिंदुस्तानी शब्द प्रयोग करते हैं उनसे मेरा विरोध नही है। विशेष अवस्थाओ मे उसका प्रयोग भी हो सकता है। मैं स्वय भी उसका प्रयोग कभी-कभी गलत फहमी वचाने के लिए करता हू, किंतु मेरा निवेदन है कि इस सैंकडो वर्षों के चले हुए शब्द 'हिंदी' को आज वदलने की चेष्टा वेजा है। उस चेष्टा के भीतर राष्ट्रीय दृष्टि कीकमी है।

भाषा का स्वरूप और लिपि

असल सवाल भाषा के स्वरूपऔर लिपि का है, नाम कानही। जहा तक हमारे देश के उन लोगो का संवध है जिनकी मातृभाषा हिंदी नही और जो हिंदी राष्ट्रीयता की दृष्टि से सीखते है, उनके लिए हिंदी का वही स्वरूप स्वभावत अधिक ग्राह्य होगा जो उनकी मातृभाषा के समीप है। उस हिंदी भाषा मे जो हम उत्तर भारत के मुसलमान भाइयो के लिए लिखेंगे, ऐसे शब्दो का प्रयोग हमे लाना ही पड़ेगा जिन्हे वे समझ सकें। मद्रास मे जव हम भाषण देते हैं तव अधिक फारसी के शब्दो से अनावश्यक कठिनाई उपस्थित नही करते। इसी प्रकार दिल्ली मे वोलते समय हमे यह याद रखना पडेगा कि वहा की जनता सस्कृत प्रेमियो को कम समझती है। यह आवश्यक नही कि मद्रास की 'इडली' हम दिल्ली मे भी लोगो को खिलाएं अथवा दिल्ली का कठिनता से हजम होने वाला 'पुलाव' हम मद्रासी भाइयो को उनकी इच्छा के विरुद्ध परोसें। हा, ऐसी सभाओ मे, जहा दिल्ली और लखनऊ, वगाल और मद्रास, गुजरात और आसाम के प्रतिनिधि उपस्थित हो, हमे अवश्य शब्दो की ऐसी खिचडी वनानी पडेगी, जिसे मिलजुल कर सव स्वीकार कर सकें। यह कोई वडी कठिन वात नही है। ज्यो ज्यो सव प्रकार के लोग राष्ट्रीय कार्यो मे मिलकर काम करेंगे, त्यो त्यो इस प्रकार की भाषा का उत्थान आप से आप हो जाएगा। आप दक्षिण भारतीयो से मेरा निवेदन है कि आप इस शाब्दिक झगडे मे न पकड़कर हिंदी के जिस स्वरूप के द्वारा आपको राष्ट्रभाषा के प्रचार मे सुगमता जान पड़े, उसी का प्रचार करते जाइये। जानवूझ कर शब्दो का वहिष्कार न कीजिए। यह वात तो मैं उत्तर-भारतीयो से भी कहता हू। सरलता, उपयोगिता और भापा के वल पर ही ध्यान दीजिए। मै तो यह भी पसन्द करूगा कि आप दक्षिण भारत के कुछ विशेप शब्दो

को अपनी हिंदी मे सुघडता के साथ लाकर हिंदी-कोश की सम्पत्ति बढाने मे सहायक बनिए।

राष्ट्रभाषा के प्रश्न के साथ लिपि का प्रश्न बधा हुआ है। इस विषय पर आप बहुत कुछ सुन चुके है। मुझे पिष्टपेषण नही करना है। सम्मेलन के आरभ काल मे ही प्रथम सम्मेलन के बाद आपके प्रात के प्रसिद्ध नेता स्वर्गीय व कृष्णा-स्वामी ऐय्यर की अध्यक्षता मे इलाहाबाद मे एक बडी सभा लिपि के सबध मे हुई थी। बगाल के प्रसिद्ध विद्वान् श्री शारदा चरण मित्र भी उसमे उपस्थित थे। मित्र महाशय ने एक 'लिपि विस्तार परिषद्' बनाकर अपने 'देवनागरी' पत्र द्वारा एक लिपि का जो प्रचार किया था वह हमारे इतिहास की बात है। आप मे से कुछ उससे परिचित होगे। उस सभा मे श्री व० कृष्णा स्वामी ऐय्यर ने एक लिपि के सबध मे दक्षिण भारतीयो से अपील की थी कि वे राष्ट्रीय दृष्टि को सामने रखकर और स्थानीय मोह को कुछ त्याग कर अपनी भाषा के लिए भी नागरी लिपि स्वीकार करें। उन्होने यह भी सलाह दी थी कि नागरी अक्षरो मे ऐसे नये चिन्ह जोडे जाए जो दक्षिणी भाषाओ के विशेष उच्चारणो को व्यक्त कर सकें। सन् १९१९ मे दिया हुआ उनका वह भाषण आज भी आप लोगो के पठन और पाठन के योग्य है। सिद्धात रूप से तो एक लिपि की बात मान ली गई है, आवश्यकता यह है कि जिन्हें हम सिद्धात रूप मे स्वीकार करते हैं उन बातो को दृढता के साथ कार्य मे बरतें।

नागरी लिपि के सबध मे विचार करने और आवश्यक सुधार करने के लिए इदौर के सम्मेलन मे एक समिति श्री काका कालेलकर की अध्यक्षता मे बनाई गई थी। नागपुर सम्मेलन मे भी इस समिति को अपना कार्य जारी रखने का आदेश और स्थायी समिति को इसके निर्णय पर विचार कर कार्य करने का अधिकार दिया गया था। हाल मे १४ मार्च को स्थायी समिति ने नागरी-लिपि-सुधार समिति की रिपोर्ट पर अपना विचार कर कुछ ऐसे निर्णय किये हैं जिनका लिपि पर गहरा प्रभाव पडेगा। जो निर्णय अभी तक हुआ है वह आपके सामने आ जाएगा। यहा पर मैं उन निश्चयो का ब्योरा दू इसकी आवश्यकता नही है। इस विषय को इतना कह कर समाप्त करता हू कि दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का एक यह काम हो कि नए विधान के अनुसार वह न केवल अपने हिंदी ग्रथ छपाए, किंतु दक्षिण भारतीय भाषाओ—तमिल, तेलगू, कन्नडी और मलयालम—के साहित्य रत्नो को नागरी लिपि मे प्रकाशित कर अन्य भाषा-भाषी प्रातो मे लिपि सबधी एकता का प्रसार करें।

दक्षिण भारतीयो को हिंदी के सीखने मे कुछ विशेष कठिनाइया होती हैं। व्यावहारिक दृष्टि से मैं इसके सबध मे कुछ निवेदन करता हू। मुख्य कठिनाई क्रिया और विशेषण के लिग की है। हिंदी मे क्रियाओ का और प्राय विशेषण का

स्वरूप संज्ञा शब्दो के अनुरूप होने के कारण परिवर्तित होता है। यदि उसमे कोई निश्चित नियम हो तो विद्यार्थी सीख ले, किंतु जहां व्यवहार और चलन ही नियम है, वहां उन लोगो को, जिनकी मातृभाषा हिंदी नही है, इस कठिनाई का खूब परिचय है। क्रियाओ के गण भेद और सज्ञाओ के लिंग भेद के कारण जो कठिनाई सस्कृत के लिखने और बोलने मे होती है, वह उसको जीवित भाषा की श्रेणी से हटा देने में एक मुख्य कारण रही है। जीवित भाषा बहुत नियमो से जकड जाय यह मैं नही कहता, किंतु यदि सरल नियम हो और अपवादो की भरमार न हो, तो भाषा का प्रचार अच्छा होगा और उसकी शैली भी सुधरी हुई होगी। भाषा मे नियम तो होना आवश्यक ही है। नियमो द्वारा ही हम भाषा की सृष्टि करते हैं। देखना यह चाहिए कि नियम इतने अधिक न हो और इतने कठिन न हो कि उनके जानने मे बहुत समय लगे। जिस विषय मे नियम बिल्कुल न हो अथवा नियमो के बहुत कुछ अपवाद हो, वहा जटिलता होगी और सीखने वाले के समय का नाश होगा। सस्कृत मे कौन शब्द किस लिंग का है इसके जानने का कोई पक्का नियम नही है। इसी प्रकार हिंदी के शब्दो का लिंग व्यवहार पर ही निर्भर है। निश्चित नियम नही है। 'किवाड' क्यो पुंलिंग है और 'दीवार' क्यो स्त्रीलिंग है, इसमे कारण स्पष्टता से नही बताया जा सकता। हिंदी भाषा के स्वरूप के अध्ययन से मेरे ध्यान मे कई वर्ष पहले यह बात आई थी कि लिंग के सबंध मे भाषा के मुख्य झुकाव को देखकर हम इस प्रकार से निश्चित नियम बना लें, जिनसे वर्तमान चलन मे कम से कम अंतर पडे और जिन्हे सीखकर मनुष्य भरोसे के साथ शुद्ध बोल सके, तो हम भाषा के प्रचार मे सहायक होंगे।

व्याकरण समिति की योजना

इसी बात का विचार कर मैंने सन् १९३४ के दिल्ली अधिवेशन मे इस विषय की अपने एक भाषण मे चर्चा की थी। मेरी बात पर ध्यान देकर सम्मेलन ने इस विषय मे एक निश्चय भी किया और लिंग भेद के नियत्रणार्थ उचित मार्ग ग्रहण करने के लिए एक समिति नियत की। विषय एकदम नया था। समिति उस समय विशेष काम नही कर सकी। फिर नागपुर के पिछले सम्मेलन मे यही विषय उठाया गया और पुरानी समिति मे दो नाम जोड़कर उससे सिफारिश मागी गई। नागपुर के सम्मेलन मे मुझे इस समिति का सयोजक नियत किया गया था। मैंने एक रिपोर्ट दी है। उस पर स्थायी समिति और सम्मेलन विचार करेंगे, इसका मुझे निश्चय है। मुझे पूरा भरोसा है कि इस विषय के महत्व को देखकर और हिंदी सीखने वाली बहुसख्यक जनता की सुविधाओ को सामने रख सम्मेलन इस विषय मे पथ-प्रदर्शन करेगा। मैंने जो रिपोर्ट अभी दी है उसके कुछ आवश्यक अग परिशिष्ट के रूप मे देता हू। उससे आप यह देखेंगे कि मैंने ऐसे नियम रखने का

उद्योग किया है, जिनसे वर्तमान चलन मे वहुत ही कम अतर पडेगा और वे इतने सरल हैं कि उन्हे जानने के वाद प्रारभिक कक्षाओं का विद्यार्थी उसी भरोसे के साथ शुद्ध लिग का प्रयोग कर सकेगा, जिस भरोसे के साथ वह वोली हुई भापा को शुद्ध नागरी मे लिखता है। हिंदी मे दो ही लिग हैं—पुलिग और स्त्रीलिग। सजीव और निर्जीव पदार्थ दोनो ही इन दोनो लिगो में विभक्त हैं। मैंने दो मुख्य सिद्धात सामने रखे हैं। एक तो यह कि सजीव पदार्थों मे जिन शब्दो का लिग उनके अर्थ से स्पष्ट है उनका वही लिग क्रिया और विशेपणो मे भी रहे। निर्जीव पदार्थों मे अथवा उन जीवधारियो मे, जिनका लिग शब्द से स्पष्ट नही होता, शब्द की अतिम ध्वनि पर लिग भेद स्थिर किया जाय। ये सिद्धात मैंने हिंदी के वर्तमान झुकाव को देखकर ही रखे हैं। केवल अपवादो को हटा देना चाहता हूं। किस ध्वनि का किस लिग से सवध है इसका व्योरा आपको रिपोर्ट मे मिलेगा।

आपके मार्ग मे यह लिग विपयक वडी कठिनाई है। इसको यदि हम लोग हल कर सकें, तो हिंदी का क्षेत्र हम सव मिलकर निस्सदेह अधिक विशाल कर सकेंगे।

राष्ट्रभापा यज्ञ

आप और हम सव एक वडे यज्ञ मे लगे है। कठिनाइयां स्वाभाविक हैं। जहा कठिनाई नही वहां यज्ञ नही। यदि हमारे काम सरल होते, तो फिर हमारे काम की अधिक आवश्यकता ही क्या होती? हमारा देश हजारो वर्पो की प्रणालियो मे वधा है। प्रणालियो मे जहा नियत्रणका गुण है और वे हमे रास्ता दिखा सकती हैं, वहा यदि विवेक की कमी हो तो वे हमारे गले का पत्थर वनकर हमे डुवा भी सकती हैं। मैं भी प्रणाली और प्राचीन मर्यादा का माननेवाला हूं, परतु समय के अनुसार प्रणाली वदलती है और वुद्धि एव विवेक सव प्रणालियो के ऊपर हैं। यदि यह जीवित सिद्धात हम भूल जाएं तो हम समाज की मौत के कारण होगे। विचार और प्रस्तार जीवन का लक्षण है। विचार छोडकर वातो को ग्रहण करना और सकुचित दायरो मे रहना मनुष्यता के तल से नीचे उतरना है। 'अवस्था भेदेन धर्मभेद' यह धर्म और कर्त्तव्य के सवध मे सदा लागू है। इस छोटे से सिद्धात को वार-वार भूल जाने के कारण ही हमारे समाज के ऊपर वहुत ऐतिहासिक मुसीवतें आई हैं। उन्नति का मार्ग सदा परिवर्तन का मार्ग होता है। हमे और आपको भी अपने देश को ऊचा करने के लिए विवेक सिद्ध आवश्यक परिवर्तन करने मे हिचक न होनी चाहिए। यदि दक्षिण के और उत्तर के लोग मिलकर ही इस सिद्धात को स्वीकार करेंगे तो हम सफल होंगे। राष्ट्रभापा का महत्त्व समझ कर आप अपने पूर्व सस्कारो को और मोह की आदतो को ढीला करें और हिंदी दत्तचित्त होकर सीखें। केवल मौखिक सहानुभूति न करें। जहा आपको राष्ट्रीय काम करना हो, वहा साहस के साथ हिंदी वोलें और वुलवाए, अग्रेजी की शरण न

लें। इसी प्रकार उत्तर भारत के साहित्यिक भाषा सवधी अपने सस्कार को, भविष्य की ओर ध्यान देकर, नया मार्ग देने के लिए तत्पर हो। इस प्रकार विवेक और साहस दोनो के मिश्रण से हम समस्त भारतवर्ष मे बहुत शीघ्र वह समय ला सकेंगे, जब हमारे कामो मे विदेशी भाषा का प्रयोग स्वप्नवत् रह जाएगा और हमारी राष्ट्रभाषा उस पद पर आसीन होगी, जो हमारी और आपकी दुर्वलता के कारण उससे आज छिना हुआ है। मुख्य काम आपका और हमारा अपने भाइयो मे ही है। यदि हम उनकी मनोवृत्ति वदल सके तो विदेशी गवर्नमेंट से भाषा के बारे मे लडने का काम बहुत आसान हो जाएगा। अपने भाइयो की उदासीनता और अदूरदर्शिता ही हमारी मुख्य कठिनाई है इसको हटाते हुए हम अपने ध्येय की ओर बढते जायें, यही मेरी प्रार्थना है। मैं भविष्य अच्छा ही देखता हू। मेरी आंख के सामने तो वह दृश्य है जव दिल्ली के किले पर हमारे देश का झडा फहराएगा, उन मकानो मे जहा वायसराय रहते हैं हमारे देश के प्रतिनिधियो का अधिकार होगा, उस व्यवस्थापिका सभा मे जो देश भर का सचालन करती है, अपनी राष्ट्रभाषा मे आप और हम सब भाषण करते होंगे। दिल्ली के सब दफ्तर जो आज अंग्रेजी मे हैं हिंदी मे रखे जाएगे, वे अंग्रेज जो हमारे देश मे काम करना चाहेंगे हिंदी मे प्रवीणता प्राप्त कर हमारे प्रतिनिधियो के अधीन काम करेंगे और दूसरे देशो के रहने वाले विद्यार्थी तथा राजनीतिज्ञ हमारे देश की भाषा सीखने और उसके द्वारा काम करने तथा ज्ञान प्राप्त करने मे गर्व समझेंगे, तब कवि अकबर को अपनी कब्र से यह कहने का अवसर न मिलेगा—

महफिल उनकी साकी उनका,
आखें अपनी वाकी उनका।

और जव महफिल अपनी होगी, अपना फागुन का राग और अपना ही होली का रग होगा और अपने उन्मत्त भावो का सरूर होगा।

मद्रास
फाल्गुन पूर्णिमा, सवत् १९९३,

पु दा टडन

बन्दर सभा महाकाव्य

(वाइसराय की कौंसिल पर
सन् १९०५ मे लिखी कविता)

तीन चुटकिन मां

पहिल चुटकी

एक बात अद्भुत हम कहही। यारो सुनियो कान लगाय।
इतने दिन वहिका मे बीते। अता पता कोउ सकै न पाय ।।१।।

कलियुग द्वापर त्रेता सतयुग। इन सब से पहिले की बात।
भये न ईश पयम्बर देवा। और रही नहि जात अरु पात ।।२।।

लाख लाख जोजन कै बसती। बने बहुत बडवार मकान।
बडे बडे ऊचे तरु जामे। टीले विकट पहाड महान ।।३।।

यही पेड टीलन कै चोटी। बसत रहे बन्दर बलवान।
नाम देस कै गढ बन्दर औ। मल्लूसा राजा कै नाम ।।४।।

सारा देस उजाड पडा रह। दीखत कछू न कहू निसान।
ऊची चोटी थलन माहि बस। बनी इमारत आलीसान ।।५।।

इनहि घरन के बीच बीच मह। लबे लबे बास दिखाय।
वाही ऊपर हवा खान को। घूमन सिगरे बन्दर जाय ।।६।।

घर में टेबुल मेज सजे हैं। उन पै चुने अनेक गिलास।
तामे टूटे फूट बहुत हैं। और धरी बोतल हैं पास ।।७।।

भांत भात सज धज के कमरे। तितिर बितिर पै सबै समान।
यहि ते एक निमिख मे जानो। यहा बसै बन्दर बलवान ।।८।।

चिलमन परदे रग ढग के। खिचे द्वार द्वार के बीच।
फटे चिथे पै बहुत ठौर वे। देत गवाही आदत नीच ।।९।।

यक मैदान म भारी तखता। वापै चुनी रकावी पास।
कुर्सिन पै वहु वानर वैठे। कलछिन लै लै खावै मास ॥१०॥

यह कौतुक अचरज हम देखा। पूछा एक बानर से जाय।
वोला वानर सुनो विदेसी। यह सव केवल मासै खाय ॥११॥

घासौ पत्ती खाय लेत है। कवहू लोहू करै अहार।
वानर मिलै वहू का खावै। खान पान को नही विचार।
यह वातै कोउ विरला समझै। यह की लीला अपरपार ॥१२॥

दूसर चुटकी

हिया की वातै हियनै रह गईं। अव आगे कै सुनो हवाल।
गढ वन्दर के देस वीच मा। पड़ा रहा एक खेत विसाल ॥१३॥

सौ जोजन लवा अरु चौडा। अरवन वानर जाए समाय।
तामे वानर भये इकट्टा। जौन वचे वै आवें धाय ॥१४॥

जव सगरा मैदनवा भरिगा। पूछैं टोपी लगी दिखाय।
सव के सव कुरसिन से उछले। हाय पाव से ताल वजाय ॥१५॥

इतने मे मल्लूसा आये। वदरी और मुसाहव साथ।
वदरी वडी चमक चटकीली। थामे मल्लूसा को हाथ ॥१६॥

ओढे गउन लगाये टोपी। हीरे जडे पात के पात।
मटकत आवत भाव दिखावत। आखिर मेहरारु की जात ॥१७॥

मल्लूसा झट कुर्सी चढ़िगे। धरी एक ऊचे मस्तूल।
रानी भी दुम झाड़ वगल भई। तव वोले वातें निरमूल ॥१८॥

तीसर चुटकी

"सुनो मुसाहव सवै सभ्यगन। अरु राजे फौजी कपतान।
न्याय धर्म उद्यम कौंसिल के। शस्त्र विदेस कार मे वरान ॥१९॥

हम राजा इस गढ वन्दर के। कैसर किङ्ग जार सुलतान।
हमरै हुकम हियन पर चालै। जानो हमे ईस रहिमान ॥२०॥

आज वरस दिन फेर मिले हम। तुम्हे सुनावें निज करतूत।
कठपुतरी सम प्रजा नचावे। फैलावें स्वारथ के दूत ॥२१॥

यह तुम सव तो जानत हइहौ। अपन एकै यही उसूल।
जौन भात से रुपया आवे। वही धर्म न्याय को मूल ॥२२॥

येहू वात विदित ससारै। एक जात रहती यहि ठौर।

१२

बन्दर सभा महाकाव्य

(वागसराय की कौंसिल पर
सन् १६०५ मे लिखी कविता)

तीन चुटकिन मा

पहिल चुटकी

एक वात अद्भुत हम कहही। यारो सुनियौ कान लगाय।
इतने दिन वहिका मे वीते। अता पता कोउ सकै न पाय ॥१॥

कलियुग द्वापर त्रेता सतयुग। इन सब से पहिले की वात।
भये न ईश पयम्वर देवा। और रही नहि जात अरु पात ॥२॥

लाख लाख जोजन कै वसती। वने वहुत वडवार मकान।
वडे वडे ऊचे तरु जामे। टीले विकट पहाड महान ॥३॥

यही पेड टीलन कै चोटी। वसत रहे बन्दर वलवान।
नाम देस कै गढ बन्दर औ। मल्लूसा राजा कै नाम ॥४॥

सारा देस उजाड पडा रह। दीखत कछू न कहू निसान।
ऊची चोटी थलन माहि वस। बनी इमारत आलीसान ॥५॥

इनहि घरन के वीच वीच मह। लवे लवे वांस दिखाय।
वाही ऊपर हवा खान को। घूमन सिगरे वन्दर जाय ॥६॥

घर मे टेवुल मेज सजे हैं। उन पै चुने अनेक गिलास।
तामे टूटे फूट वहुत हैं। और धरी बोतल हैं पास ॥७॥

भात भात सज धज के कमरे। तितिर वितिर पै सवै समान।
यहि ते एक निमिख मे जानो। यहा वसै वन्दर वलवान ॥८॥

चिलमन परदे रग ढग के। खिचे द्वार द्वार के वीच।
फटे चिथे पै वहुत ठौर वे। देत गवाही आदत नीच ॥९॥

आपन देव एक रुपय पै। जासे वाढै हमरा साज ॥३७॥
तीसर उद्यम भाग गिनाऊ। एकर केवल मनसा येह।
जितना धन अन पैदा होवै। सव ढोइ आवै हमरे गेह ॥३८॥

जितने वेद्रुम के हैं वानर। उन का हरी हरी दिखलाय।
चूनी भूसी उन्हे फेंक दे। वढिया माल लेंय गठियाय ॥३९॥

यही भाग उद्यम का ऐसा। जेहि मा रचै किताबी जाल।
और देंस के वानर जेहि से। नहि जाने हमरा अहवाल ॥४०॥

ऊपर से यह परगट करही। सगरी परजा वड़ी अमीर।
लीन लगोटी छीन दीन कै। हम जानहि वे फिरैं फकीर ॥४१॥

मरै भूख से जाडे से वा। हमसे यहि से कुछ नहि काम।
हम का खाली मिलै रुपैया। हम घर वैठ करै आराम ॥४२॥

चौथा वडा डिपार्टमेंट है। करै विदेसन को व्यवहार।
रीछ स्यार सूकर वसते जह। हम सन जिनके हैं सरदार ॥४३॥

कवहु आख दात दिखलावै। लें डराय वस काम निकाल।
कवहू नम्र होय सीख सुनावै। रचै वात कै जाल कराल ॥४४॥

ऐसे वैसे तो डर जावें। वा फस जावै हमरे जाल।
जो भे तनकु अकडने वाले। तिनके लिए अनेकन चाल ॥४५॥

जासूसी मे निपुण सिपाही। तव छूटैं साधन को कार।
दगा झूठ विष मद मेहरारु। और छिपी तीखी तलवार ॥४६॥

एते सरजाम हैं पूरे। पै येहू जो खाली जाय।
पचवा भाग करै तव हलचल। नये शस्त्र तव ही दिखलाय ॥४७॥

सवसे वडी शस्त्र की कौंसिल। यहै राज्य को हमरे मूल।
यहि के विगडे सवै चातुरी। एकै छन मे जावै भूल ॥४८॥

याही ते जे लडने वाले। उन कै हम वहु करते मान।
सव से चूस रुपैया लावें। इनही को वस देते दान ॥४९॥

वडे वीर हमरे यह सैनिक। पहिले दुम से करै प्रहार।
दुम जो कटै भाज फिर जावैं। गढ मे घुस करवै ललकार ॥५०॥

पत्थर की तलवार वनी है। मट्टी की गोली वारूद।
जहा चलै यह सैन्य हमारी। और लगावै पैकी दूक ॥५१॥

विरवन पेडन तुरतहि नासैं। धूम मचावैं लूटैं माल।
सीधे जीवन मारै काटैं। हमहू सुन सुन होय निहाल ॥५२॥

जिन के दुम उन तनिकौ नाही। हमरा लाल रग उन और ॥२३॥

येही ते दुइ न्याय धर्म दुइ। दुहरी सगरी वात हमार।
मुह कुछ धरे पेट कुछ धारै। दगा झूठ को करै अहार।
येहू से जो काम न निकलै। तो फिर कैद मार फिटकार ॥२४॥

पाच वड्ड वड्ड भागन मा। देस भार की भई तकसीम।
पहिले न्याय वनाया अचरज। पी अफीम सव नीम हकीम ॥२५॥

गणना करी कहा यह कलकी। रुपया असकै खीचै पास।
धनी दीन पडित अरु मूरख। सवही फस गए याके फास ॥२६॥

तेही पर वेदुम के जे वानर। उनका अस कै जकडा जाय।
तनिकौ हाथ पाव फटकारे। हनकै थप्पड़ दिया लगाय ॥२७॥

यह तो वन्दर न्याय वखाना। एक और कुजी है हाथ।
न्याय वाय सवही के ऊपर। सवहि घुमावे अपने साथ ॥२८॥

ओकर नाम गुपुत राखैगे। वह तो भीतर मन की वात।
ऊपर हमरी खुली कचहरी। रुपया देत न्याय लै जात ॥२९॥

दूसर धर्म वडा—फन्दा यह। जो जो हमसे करै विरोध।
जहा ग्लास एक हम से लेवै। आवै तुरतहि उनकह वोध ॥३०॥

सवहि लडाई छूट जात है। लेकचर देन जाय सव भूल।
झूठी दुमहु लगाय लेत है। औरहु वातै करै फजूल ॥३१॥

जूठहु खाय नही सकुचावे। पूजहि खर जो हमारा देव।
खरही खर चिल्लात फिरत है। लेव स्वर्ग मुफतै लै लेव ॥३२॥

विना कसाले का विहिस्त है। ऐसन अवसर फिर नहिआय।
हमरो खर जो चढा अकासा। सवकोउ पूछ थामचढि जाय ॥३३॥

जो नहि माने वात हमारी। ऊ वस सीधा नरकहि धाय।
चार पाव से चलन न पइहै। दुइयै से घिसलावत जाय ॥३४॥

हुआ न कूदन को तरु मिलि है। और न मिलिहै वदरी सग।
कपडौ चीथै का नहि मिलि है। नही घास मास कै रग ॥३५॥

मरन वाद इन सुख कह चाहौ। हमरी वात करौ विस्वास।
पढनौ लिखनौ पूजन छाडौ। हमरे खर की धारौ आस ॥३६॥

यही भात हम धरम चलावा। दूसर के सिखवन के काज।
धन स्त्री अरु मान लोभ दे। फासा जेहि नहि सकता भाज।

कुछ महत्वपूर्ण तिथियां

जन्म —अधिक श्रावण मास, कृष्ण पक्ष द्वितीया, मगलवार, सौर १८ कर्क, सम्वत् १९३९ विक्रमी, तदुन १ अगस्त सन १८८२ ई० ।

विवाह—आयु के १५ वें वर्ष मे, हाई स्कूल परीक्षा के उपरान्त ज्येष्ठ मास मे ।

१८९९ के कांग्रेस लखनऊ-अधिवेशन मे स्वयसेवक ।

प्रथम सतान : सन १९०० मे ।

सन १९०५ में काशी-कांग्रेस के अध्यक्ष श्री गोखलेजी के अंगरक्षक ।

सन १९०६ मे कलकत्ता की कांग्रेस मे प्रतिनिधि ।

वकालत : १९०६ से छोटी अदालत मे, १९०८ से इलाहावाद हाईकोर्ट मे । हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री १० अक्टूवर, १९१० को सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन काशी मे हुआ । उसी मे आप सम्मेलन के प्रधानमंत्री चुने गए । सन १९१४ मे नाभा रियासत के कानूनी सचिव तथा विदेशमत्री हुए । वहां १९१६ तक रहे ।

सन १९१८ मे इलाहावाद मे हिंदी विद्यापीठ की स्थापना की ।

इलाहावाद म्यूनिसपल वोर्ड के चेयरमैन : १९१९ मे ।

७ दिसम्वर, १९२१ मे कांग्रेस स्वयसेवको के प्रवन्धक होने के अपराध मे गिरफ्तार हुए और डेढ वर्ष की सजा हुई ।

सन १९२३ मे प्रातीय कांग्रेस के गोरखपुर-अधिवेशन के अध्यक्ष ।

१९२३ मे कानपुर मे हुए सम्मेलन के १३ वें अधिवेशन के सभापति ।

पजाव नेशनल वैंक से सवध : पजाव केसरी लाला लाजपतराय के कहने पर मई, १९२५ मे लाहौर स्थित प्रधान कार्यालय मे सयुक्त सेक्रेटरी । कुछ समय वाद सेक्रेटरी तथा जनरल मैनेजर अगस्त १९२९ तक ।

लोक सेवक मंडल के अध्यक्ष जनवरी १९२९ में ।

१९३० मे केंद्रीय 'किसान सघ' की स्थापना की ।

१९३० मे वस्ती जेल मे, ३ मास की सजा तथा जुर्माना ।

१९३१ मे गोंड़ा जेल मे रहे ।

१९३२ मे गोरखपुर जेल मे रहे ।

अब हम लेकचर खतम करत हैं। बैठे अपनी कुर्सी जाय।
तबही ताली ऐसी बाजी। कानों की चमडी उडि जाय ॥५३॥

फिर एक मोटा बानर बोला। धन्यवाद हम देय पुकार।
मल्लूसा को जिन की परजा। जो धन राखै औरन मार।
जेहि मे हम कह पालै पोखै। और बढै हम कुल परिवार ॥५४॥

इतना कह वह बानर बैठा। सभा उठी भागी चहू ओर।
मैं हू आल्हा गावत भाग्यो। जे जे सुनिन कीन्ह सग मोर ॥५५॥

प्रयाग, २४ जुलाई १९०५ A.S.

□

१६३७ मे युक्तप्रातीय विधान सभा के अध्यक्ष।
अप्रैल, १६४० मे गिरफ्तार व नजरवन्द, नैनी व फतहगढ जेल मे।
साल भर वाद रिहाई और ६ अगस्त, १६४२ को पुन गिरफ्तार।
लगभग २६ महीने वाद सन १६४४ मे अस्वस्थता के कारण रिहा।
१६४६ मे प्रातीय विधान सभा के सदस्य चुने गए और वाद मे अध्यक्ष।
१६४७ मे हिंद रक्षक दल की स्थापना की।
जुलाई, १६४८ मे प्रातीय काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष।
१६५० मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष।
१६५१ मे उसी काग्रेस-अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दिया।
२३ अक्टूवर को १६६० अभिनदन ग्रथ का समर्पण।
२७ अप्रैल, १६६१ भारत रत्न की उपाधि।
१ जुलाई को १६६२ स्वर्गारोहण।

कुछ विशेष घटनाएं

१६०५ मे वगभंग आदोलन के समय विदेशी वस्तुओ के वहिष्कार के सिल-सिले मे चीनी खाना छोड दिया और खांडसारी का प्रयोग करने लगे। कुछ वर्ष वाद खाडसारी का उपयोग भी छोड दिया और केवल गुड़ तथा लाल शकर का उपयोग करने लगे।
१६०७ मे चमडे का जूता पहनना छोड दिया।
सन १६२१-२२ मे लखनऊ जेल मे नमक खाने का परित्याग।
१६०७-८ मे इलाहावाद के 'अभ्युदय' का अवैतनिक सम्पादन।
१६१८ मे इलाहावाद मे हिंदी विद्यापीठ की स्थापना और उसके प्रथम आचार्य।

□